लोकसंस्कृति और साहित्य माला

तमिलनाडु : लोकसंस्कृति और साहित्य

तमिलनाडु
लोकसंस्कृति और साहित्य

एस. एम. एल. लक्ष्मणन चेट्टियार

अनुवादक

कृष्णगोपाल अग्रवाल
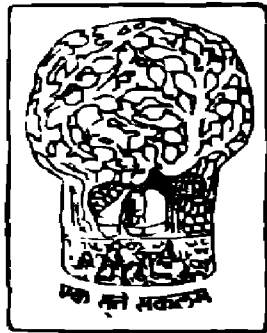
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली

प्रथम संस्करण 1975 (शक 1896)
द्वितीय आवृत्ति 1988 (शक 1910)

रु० 21.00
Folklore of Tamil Nadu (Hindi)
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय-सूची

1 प्रदेश और लोग

तमिलजनों का व्यक्तित्व उनके इतिहास, भूगोल और धर्म संस्कारों का परिपाक है जिसे तमिलनाडु में व्यापारार्थ आने वाले विदेशी यात्रियों के सांस्कृतिक प्रभावों ने संपन्न बनाया है।

वर्तमान युग में तमिलनाडु के भद्रसमाज और विद्वज्जनों के आचार-विचार, लोकव्यवहार और संस्कृति यद्यपि पश्चिम की विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं, तथापि प्रेरणा के स्रोत के रूप में वे अब भी अपने बीते हुए स्वर्णयुग और अतीत की गौरवान्वित विरासत की ओर ही मुड़ते हैं। इतना ही नहीं, तमिलनाडु के ग्रामीण जनों के दैनिक व्यवहार में तो उस चिर प्रतिष्ठित युग के बहुत से रस्मोरिवाज़, खानपान, तौरतरीके, विचारधाराएं और जीवनमूल्य आज भी ज्यों के त्यों सुरक्षित पाये जाते हैं, जिसे शायद तमिल संस्कृति का व्यवच्छेदक लक्षण माना जा सकता है।

भारत के अन्य भागों के साथ तुलना करके देखा जाय तो तमिलनाडु को भाग्य के उलटफेर कुछ कम ही देखने पड़े हैं। पश्चिमोत्तर सीमा से शताब्दियों तक होने वाले विदेशी आक्रमणों के दुष्प्रभावों से यह प्रदेश प्रायः अछूता ही रहा। इसीलिए इसके इतिहास में, विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में, राजनीतिक स्थैर्य और आर्थिक सुव्यवस्था के लंबे कालखंड पाये जाते हैं जिनके कारण उस गौरवमय अतीत से लगाकर आज तक परंपराओं की अविच्छिन्नता संभव हो सकी है। सुबह-शाम भगवान की प्रार्थना, सादा भोजन और सादे वस्त्र से अधिक की आकांक्षा न करने वाली एक अकृत्रिम जीवन प्रणाली युगों से लगाकर आज तक प्रायः अपरिवर्तित ही रही है।

तमिल में एक कहावत है : रामन अंदल येन्न ? रावणन अंदल येन्न ? (चाहे राम का राज्य हो, चाहे रावण का, कोई फर्क नहीं पड़ता।) जो तमिलनाडु के

ग्रामीण समाजों के दैनिक जीवन में शताब्दियों के राजनीतिक परिवर्तनों के बावजूद दिखाई देने वाली शांतिपूर्ण स्थितियों के सातत्य को ध्वनित करती है। (उक्त कहावत में हिंदी की 'कोउ नृप होय हमें का हानि ?' से मिलती-जुलती भावना देखी जा सकती है।)

भौगोलिक स्थिति

तमिलनाडु भारत के दक्षिण सीमांत में स्थित त्रिकोणाकृति प्रदेश है। एशिया के मानचित्र में भारतीय उपमहाद्वीप का स्थान निर्धारित करें तो दिखाई देगा कि हिंद महासागर को मध्य में ले कर एक महराबनुमा विस्तृत भूगाग फैला हुआ है जिसके पश्चिम में अफ्रीका और अरब के विशाल प्रदेश एवं पूर्व में ब्रह्मदेश, इंडोनेशिया का द्वीपसमूह और आस्ट्रेलिया महाद्वीप के प्रदेश आते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप इस अर्धवृत्त के बीच में मेरुमणि के समान स्थित है। केरल में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक श्री. सुंदरम् पिल्लइ ने बड़े कवित्वमय ढंग से भारतीय उपमहाद्वीप को पृथ्वीमाता का भाल और तमिलनाडु को उसे शोभायमान करने वाले तिलक के समान माना है।

सीमाएं

तमिलनाडु की परंपरागत सीमाएं उत्तर में वाडवेंकटम् (तिरुपति-तिरुमलै) और दक्षिण में कन्याकुमारी रही हैं। आंध्र प्रदेश का अलग राज्य बन जाने के कारण अब तमिलनाडु का उत्तरी छोर तिरुत्तनि माना जाता है। अन्य सीमाएं हैं पूर्व में बंगाल का उपसागर, दक्षिण में हिंद महासागर और पश्चिम में पश्चिमी घाट। पश्चिम घाट से लगा कर समुद्र तक का प्रदेश नवस्थापित केरल राज्य का भाग बन गया है।

तिरुत्तनि का पर्वतीय कस्बा कुमारन सुब्रह्मण्य (कार्तिकेय) का स्थान है जो तमिलनाडु के सबसे प्रिय देवता रहे हैं। दक्षिण की अधिष्ठात्री हैं चिरकन्या देवी कन्याकुमारी। इस प्रकार तमिलनाडु का प्रदेश युद्ध और प्रेम के देवता कुमारन के निवास स्थान से लगा कर चिरकौमार्य और पवित्रता की देवी कन्याकुमारी के धाम तक फैला हुआ है।

किंवदंती है कि पांड्य राजाओं द्वारा शासित, तेन कुमारी नामक नदी से

सिंचित और कपटपुर नामक राजधानी वाला। तमिलनाडु के दक्षिणी छोर का एक विस्तृत भूप्रदेश किसी प्रागैतिहासिक काल में समुद्र गड़प हो चुका था।

क्षेत्रफल और जलवायु

1,29,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले तमिलनाडु की तुलना ग्रेटब्रिटेन के साथ की जा सकती है। जलवायु की दृष्टि से तमिल प्रदेश में रामेश्वरम् के उत्तप्त रेतीले इलाकों से लगाकर नीलगिरि और कोडइकनाल की आरोग्यप्रद, शीतल पहाड़ियों तक की विविधता पायी जाती है।

पचरंगी विभाजन

प्राचीन कवियों ने तमिल प्रदेश के पचरंगी वर्गीकरण के गीत गाये हैं। अभिजात तमिल काव्य के संकेत इस विभाजन के साथ अभिन्न रूप से एकरस हो गये हैं। ये पंचप्रदेश अपने-अपने क्षेत्र के जनजीवन को प्रतिबिंबित करते हैं और उनका नामकरण उन प्रदेशों की विशिष्ट वनस्पतियों के आधार पर हुआ है। पर्वतीय प्रदेश का प्रतीक है 'कुरिंजी'; निर्जल सूखे प्रदेश का प्रतीक है 'पलै'; हरी घास की गोचरभूमियों का प्रतिनिधि है 'मुलै'; नदीसिंचित प्रदेशों का प्रतीक है 'मरुदम्' और समुद्रतटीय वेलाभूमियों का चिह्न है 'नैदल'।

पर्वत

पूर्वीय और पश्चिमी घाटों के दक्षिणी छोरों का तमिलनाडु में मिलन हुआ है। इसलिए स्वास्थ्य वर्धक पर्वतीय स्थानों की इस प्रदेश में इफरात है। ये ग्रीष्मावास विभिन्न रुचि के लोगों के लिए मनोरंजन के साधन जुटा कर उनकी आवश्यकताएं पूरी करते हैं। योरप जैसी ठंडी आबहवा पसंद करने वालों के लिए (उटाकामंड) है जिसे 'पर्वतीय ग्रीष्मावासों की रानी' कहा जाता है। शांति और एकांतप्रिय लोगों के लिए कोडाइकनाल है। कम खर्च करना चाहने वाले और कमजोर हृदय के लोगों के लिए नीलगिरि में कुनूर और कोटा गिरि हैं तो अन्नामलै पहाड़ियों में टापस्लिप और वालपरै हैं। सेलम के पास का भेरकाड और उत्तरी आर्कट जिले का येलगिरि भी सुंदर स्थान हैं। इन सारे ग्रीष्मावासों में बारहों महीने ऊनी कपड़ों की आवश्यकता पड़ती है। कोर्तालम के गरम

पानी के सोते इनसे कुछ भिन्न प्रकार का मनबहलाव प्रस्तुत करते हैं। तमिलनाडु के प्राय हर जिले में कोई न कोई ग्रीष्मावास या समुद्रतटीय आरोग्यस्थान पाया जाता है।

पोल्लाची और पालघाट के बीच की उर्वरा वादियां और कंबम की उतनी ही उपजाऊ घाटियां अपने प्राकृतिक दृश्यों के लिए ही नहीं, बल्कि खेती की घनी पैदावार के लिए भी प्रसिद्ध हैं।

वनसंपत्ति

तमिलनाडु के प्रमुख वन्य पशु हैं हाथी, जंगली भैंसे और जंगली सूअर। इनमें के अधिकांश मुदुमलै के आरक्षित अभयारण्य में पाये जाते हैं। वेदांतंगल प्रव्राजी पक्षियों का प्रिय केंद्र है। पाइंट कलमीर के पास के विस्तृत दलदलों में सारस, रंगीन बगुले और पेलीकन पाये जाते हैं।

वनस्पति में बारह वर्ष में एक बार खिलने वाला कुरिंजी पुष्प उल्लेखनीय है। एक और महत्वपूर्ण वृक्ष है सिन्कोना जिसकी छाल से कुनैन बनायी जाती है। तिरुनेल वेली जिले में समाज के निम्नवर्गों को आजीविका के विविध साधन जुटा देने वाला पंखिया-ताल वृक्ष लाखों की संख्या में पाया जाता है।

कन्याकुमारी जिले में बढ़िया किस्म का रबड़ पैदा होता है। यहां की आबहवा मलयेशिया की जलवायु से बिलकुल मिलती-जुलती है। नीलगिरि की पहाड़ियों में वनरोपण योजनाओं के अंतर्गत अनुकर्पूर (यूकलिप्टस) वृक्ष बड़ी संख्या में लगाये गये हैं। उत्तरी आर्कट जिले की जावड़ी पहाड़ियों में चंदन की पैदावार होती है। पलनी की गिरिराजियों और कोर्तालम में विभिन्न प्रकार की औषधीय जड़ी बूटियां उत्पन्न होती हैं।

नदियां

आग्नेय और नैऋत्य, दोनों मानसूनों से पोषित होकर बारहों महीने बहने वाली एकमात्र सदानीरा नदी है कावेरी जो तमिलनाडु को दो लगभग समान भागों में बांट देती है। कावेरी के उत्तर में पलार और पेन्नार नदियां हैं और दक्षिण में वइगै और ताम्रपर्णी। व्यावसायिक और धार्मिक महत्व वाले नगरों का विकास नदियों या बड़े तालाबों के किनारों पर ही हुआ है, जिनमें से

प्रत्येक के साथ कोई न कोई दंथकथा जुड़ी हुई है।

उदाहरणार्थ एक ऐसी जनश्रुति है कि मधुरांतकम् जलाशय जब फूटने ही वाला था और अधिकारीगण जब लोगों को सुरक्षित स्थान पर हटाने की तैयारी कर रहे थे कि हाथ में धनुषबाण लिये हुए श्री रामचंद्र और लक्ष्मण वहां प्रकट हुए और उन्होंने जलाशय की रक्षा की। इस किंवदंती की कोई-न-कोई बुनियाद अवश्य रही होगी क्योंकि चिंगलपुट के तत्कालीन अंग्रेज कलेक्टर ने वहां कोदंड राम और सीता का मंदिर बनवाया था। कहा जाता है कि कलेक्टर ने यह चमत्कार अपनी आंखों से देखा था। इस आशय का एक शिलालेख भी मंदिर में पाया जाता है।

पीने का पानी अकसर अरुनि नामक छोटे तालाबों से प्राप्त होता है जब कि बड़े सरोवरों के पानी का उपयोग एकांतिक रूप से सिंचाई के लिए किया जाता है। पहाड़ों में पानी के प्राकृतिक और कृत्रिम जलाशयों का उपयोग बिजली पैदा करने के लिए होता है।

सूखे बंजर प्रदेश

तिरुनेलवेलि जिले में कायामोझी के पास कुछ निर्जल बंजर प्रदेश है जो 'तेरी' कहलाता है। परंतु इस रेगिस्तान जैसे इलाके में भी अब बड़े परिवर्तन हो रहे हैं। इस पिंगलवर्णीय बालू में होनेवाला हरित-क्रांति का प्रयोग निश्चित ही भविष्य की लोक कथाओं का विषय बनेगा।

बंदरगाह

ईस्वी सन के आरंभ में कावेरीपूमपत्तनम् और अन्य बंदरगाहों में विदेशी व्यापार और नौकानयन का इतना अधिक विकास हुआ था कि तमिलनाडु में खरीदे गये माल की कीमत चुकाने के लिये यूनानियों को उस प्रदेश में टकसालों की स्थापना करनी पड़ी थी। कोरक्कै और आदि चनल्लुर में पाये गये रोमन-यूनानी सिक्के, तत्कालीन सिंहली दस्तावेजों में पाये जाने वाले उल्लेख, उस प्रदेश में उपलब्ध पुरातत्त्वीय साक्ष्य और यूनानी एवं इबरानी भाषाओं में पाये जानेवाले तमिल के व्यापार-विषयक शब्द इस तथ्य का समर्थन करते हैं।

उस युग के किसी पांड्य राजा ने रोम के सम्राट् आंगस्टस के दरबार में

राजदूत भेजे थे। तमिलनाडु के लोक-नाट्य में इस घटना का उल्लेख आज तक होता है। बाहर के देशों में बहुत अधिक मांग होनेवाली वस्तुएं थीं चंदन, चावल, काली मिर्च, सोंठ, इलायची, दालचीनी, हल्दी, हाथीदांत, मोती, कुरुविंद और फीरोजा, पन्ना, वैडूर्य आदि कीमती पत्थर एवं मणियां।

मद्रास और तूतिकोरिन आजकल राष्ट्रीय महत्व के बंदरगाह हैं। मत्स्योद्योग तमिलनाडु का एक बहुत महत्वपूर्ण व्यवसाय है जिसके लिए बहुत से छोटे बंदरगाहों का विकास किया जा रहा है।

तमिल मछियारे नदी-तालाबों की मछलीमारी के साथ-साथ गहरे समुद्र से मछलियां पकड़ने में भी निपुण होते हैं। इसके लिए नयी-नयी तकनीकों का विकास हो रहा है। प्राचीन युग में मत्स्यनौकाओं का नामकरण उनके अग्र भागों की आकृति के अनुसार किया जाता था। उदाहरणार्थ अरिमुख नम्बी, गजमुख नम्बी और परिमुख नम्बी नामक नावों के पोताग्र क्रमश: शेर, हाथी और घोड़े की शकल के होते थे।

समुद्र में से मोती और शंख निकालने के लिए डुबकी लगाना समुद्रतटीय प्रदेशों के निवासियों का पारंपरिक व्यवसाय रहा है। वलम्पुरी (दक्षिण मुख) शंख आज भी ऊंची कीमत पर बिकते हैं। पांड्य तट पर पाये जानेवाले मोती अपनी चमक और आकार के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध हैं। इन मोतियों की सराहना बहुत से लोकगीतों में की गयी है। उदाहरणार्थ :

मुत्तान मुत्तु
मुतिरा इलमुत्तु
कारमडै रंगरुक्कु
कड्रुतिलिडम् रानी मुत्तु
अयिरम् मुत्तिले
आराइंतु एडुत मुत्तु
श्रीरंगनाथ रुक्कु
सिरसिल इडम् रानी मुत्तु
तोलायिरम् मुत्तिले
तुलावी एडुत मुत्तु

मदुरै मीनाक्षीक्कु
मार्बिलिडम् मुत्तु

अर्थ

मोतियों में मोती
अनबिंध मोती
मोतियों के राजा
माला में गुंथते हैं
कारमडै के भगवान रंगनाथ
के कंठ की शोभा बढ़ाने को।
हजारों में से छांटी हुई
मोतियों की रानियां
भगवान श्री रंगाधिपति के
भाल की शोभा बढ़ाती हैं।
नौ सौ मोतियों में से
एक-एक कर बीने हुए
मोतियों की माला
जगप्रसिद्ध मदुरै की
मीनाक्षी देवी के
उर को सजाती हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इतिहास, साहित्य और पुराणकथाओं ने मिलकर परंपरा और पुरातत्त्व के अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है। सिंधुघाटी में बसने वाली आर्य पूर्व जातियों और तमिलजनों के जीव-क्रम में बहुत अधिक साम्य पाया जाता है। प्रागैतिहासिक काल में आनेवाली किसी भीषण बाढ़ के कारण शायद यह कड़ी टूट गयी। पुरातत्त्ववेत्ता और प्राच्यविद्याविद् सिंधु संस्कृति के प्रतीकों, चिह्नों और चित्रलिपि का अर्थ आंशिक रूप में ही लगा पाये हैं। जितने अंशों की व्याख्या हो चुकी है, उनका साम्य तमिल संस्कृति के साथ ही अधिक पाया जाता है।

इसके अलावा बलूचिस्तान की एक बोली ब्राहुइ में तमिल भाषा के अवशेष आज भी स्पष्ट रूप से मिलते हैं। यह बात अब सामान्यतः मान ली गयी है कि किसी प्राचीन युग में भारत के पश्चिमोत्तर प्रांतों में या तो तमिलों का निवास रहा था या फिर वे उन प्रदेशों के लोगों के साथ इतने घनिष्ठ संपर्क में आये थे कि वहां की बोली भाषाओं पर तमिल का प्रभाव इतने सुस्पष्ट रूप में इतने लंबे समय तक रह पाया। भारत की भावनात्मक एकता की दिशा में यह तथ्य सहायक होना चाहिये।

संगम युग

तमिल साहित्य का अभिजात काल संगम युग कहलाता है, जिसकी व्याप्ति ईसा के जन्म से कुछ पहले से लगा कर तीन या चार शताब्दियों बाद तक मानी जाती है। उस युग के आठ काव्य-संकलन (एट्टुतोगै) और आख्यानात्मक ग्रामगीतों के दस संग्रह (पत्तपट्ट) तमिल के लिखित काव्य-साहित्य के प्राचीनतम अवशेष माने जाते हैं।

परंपरागत रूपकों की सहायता लेकर कहें तो उस स्वर्ण युग में तमिलनाडु में दूध-घी की नदियां बहती थीं। धनधान्य और मांस-मछली का तो यह प्रदेश अक्षय भंडार था। पश्चिम का चेर राज्य दुधार भैंसों, काली मिर्च, हल्दी और कटहल के लिए प्रसिद्ध था। कावेरी की लीलाभूमि चोलप्रदेश को दक्षिण का धान्य-कोठार माना जाता था और दक्षिण सीमांत में स्थित पांड्य राज्य मोती, मधु और वल्लीकंद से समृद्ध था।

वंशानुगत राज्यसत्ता उस युग की प्रचलित शासन-प्रणाली थी। राजा यद्यपि सारी सत्ता का एकाधिपति होता था, तथापि वह विद्वानों की राय को मानकर चलता था। लोग उससे आदर्श शासक होने की अपेक्षा रखते थे। अतः वैयक्तिक आचरण और नैतिक नियमों के पालन में अत्युच्च मानदंड स्थापित करना उसके लिए आवश्यक हो जाता था। सूर्यास्त के बाद नगरों में चौकी-पहरे की व्यवस्था होती थी। कभी-कभी राजा खुद भी भेष बदलकर नगरचर्चा सुनने के लिए निकल पड़ते थे। इसके उल्लेख लोकगीतों में आज भी पाये जाते हैं और लोकनाट्य में इन अनुश्रुतियों का अभिनय आज भी होता है।

नृत्य और संगीत की कलाओं ने अत्यंत विकसित रूप प्राप्त किया था।

सुप्रसिद्ध भारत नाट्यम का विकास तमिलनाडु में ही हुआ था। शिकार, कुश्ती, घूंसेबाजी और पासों के खेल बहुत लोकप्रिय थे। स्त्रियां मकानों की छतों पर गेंद के खेल खेलती थीं। स्त्री-पुरुषों के सम्मिलित स्नान और वन-विहार की प्रथाएं भी प्रचलित थीं। बच्चे विभिन्न प्रकार के खिलौनों के उपरांत खेल में छोटे-छोटे धनुष-बाण का भी प्रयोग करते थे।

पल्लव वंश

पल्लव वंश के अधिकांश राजा कुशाग्र बुद्धि वाले बहुश्रुत शासक थे। अपने व्यक्तित्व में वे कुशल शासक के उपरांत उच्चकोटि के नाट्यकार, संगीतकार, वास्तु शिल्पकार, धर्मतत्त्वज्ञ और योद्धा के गुणों को संजोये रखते थे जो उन्हें अपने युग का परिपूर्ण मनुष्य बना देते थे। उनका राज्य उत्तर सीमांत से लगाकर कावेरी के तट तक फैला हुआ था जिसमें उन्होंने धर्म, साहित्य और कला का गौरवास्पद विकास किया। संस्कृत को उन्होंने प्रबल प्रोत्साहन दिया। उस युग के शिलालेखों का आदेशात्मक अंश तो साहित्यिक तमिल में होता है लेकिन राजा की स्तुति करनेवाला अंश निरपवाद रूप से संस्कृत में पाया जाता है। संस्कृत ग्रंथलिपि में लिखी जाती थी जिसका प्रचलन केवल तमिलनाडु मेंही रहाहै।

पल्लव काल में हिंदू धर्म की दोनों शाखाओं—शैव और वैष्णव का सर्वांगीण पुनरुत्थान हुआ। उस युग के स्तोत्रकारों—शैवों के नायनमार और वैष्णवों के आलवार संतों की वाणी और क्रियाशीलता ने दक्षिण में बौद्ध और जैन प्रभाव को कुंठित कर दिया। तीन महान् नायनमार संत संबंदार, सुंदरार और अप्पार के 'तेवरम् नामक भक्तिगीतों को और आलवार संतों द्वारा रचित 'प्रबंधम्' नामक स्तोत्रों को संसार के धार्मिक साहित्य में वैशिष्ट्यपूर्ण योगदान मानना होगा। उन्होंने भक्तिकाव्य के रूप में एक नये प्रकार की कविता का ही नहीं, बल्कि एक नूतन उपासना-पद्धति का भी प्रचलन किया। श्रुति मधुर पण्णों में रचित गीतों द्वारा गायक को आत्मविभोर कर देनेवाले इन स्तोत्रों ने भारत के भक्ति-साहित्य में बहुत ऊंचा स्थान अर्जित किया है। संत माणिकवाचकार के 'तिरुवचकम्' ने तो धार्मिक पुनर्जागरण को बहुत अधिक गति प्रदान की। इन गीतों ने उस प्राचीन काल से लगाकर आजतक जनसाधारण को प्रेरणा दी है और उनका गायन घरों में वैयक्तिक रूप से और देवालयों में सामूहिक रूप से अब तक चलता आ रहा है।

पल्लवों ने पहली बार देवालयों के निर्माण में पत्थर के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया। उससे पहले पत्थर का प्रयोग केवल स्मारकों और समाधियों में ही किया जाता था। महेंद्र पल्लव पहला राजा था जिसने ठोस चट्टान को तराशकर विशाल शिवालय बनवाया। विशाल शैलखंडों को कोर कर उनमें से पूरे के पूरे मंदिर और मूर्तियों का निर्माण करने की प्रथा शायद तभी से चली।

चेर वंश

चेरों का राज्य पश्चिमी तट पर था। इन प्रदेशों में विदेशों के साथ हाथीदांत और मसालों का विस्तृत व्यापार होता था। चोल और पांड्य प्रदेशों की अपेक्षा इस राज्य के पास पानी के स्रोत बहुत अधिक थे। आजकल इस प्रदेश की गणना केरल राज्य के अंतर्गत होती है।

चोल वंश

इस वंश में तो निर्विवाद रूप से लोकोत्तर रजा-रानियों ने जन्म लिया जिनके व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा से ओतप्रोत थे। इन्हें सौंदर्यानुभूति, बौद्धिक जिज्ञासा और धार्मिक निष्ठा की अलौकिक विरासत मिली थी। चोल वंश के राजाओं का नाम दक्षिण भारत के महान् देवालयों के निर्माता के रूप में सदा अमर रहेगा। उन्होंने अनगिनत नये मंदिर बनवाये और पुराने का जीर्णोद्धार करवाया राजराजा प्रथम (दशवीं शताब्दी) द्वारा निर्मित तंजाउर का भव्य देवालय और गंगा की घाटी के राज्यों पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में उसके पुत्र राजेंद्र (प्रथम) द्वारा गंगैकोंड चोलपुरम् में बनवाया गया विशाल मंदिर नितांत मनोरम वास्तुरचनाएं हैं। अपने भव्य स्थापत्य और वैशिष्ट्यपूर्ण शिल्पकला के लिये दोनों देश भर में प्रसिद्ध रहे हैं। कांसे की मूर्तियां ढालने में तो चोल युग में इतनी प्रगति हुई थी कि आजतक उस शिल्प कौशल का मुकाबला कहीं नहीं हो पाया और वह कारीगरी अब तक अपने ढंग की अनुपम और अद्वितीय उपलब्धि रही है।

चोल शासकों ने गांवों के प्रशासन में नया जीवन फूंका और पंचायतों को व्यापक अधिकार देकर उन्हें अधिक कार्यक्षम और दायित्वपूर्ण बनाया। पानी के स्रोतों की ओर अधिक ध्यान देकर जगह-जगह तालाब खुदवाये, बांध बनवाये

और नहरों द्वारा पानी को दूर-दूर के गांवों में पहुंचाया। तिरुचिरापल्ली जिले का जयमुकुंदन तालाब और तंजाउर जिले का प्रचंड बांध चोलयुगीन यंत्रशास्त्रीय कौशल के जीवंत स्मारक हैं।

आग्नेय एशिया में तमिल भाषा और संस्कृति का प्रसार भी चोल शासकों के द्वारा ही हुआ था। आज भी थाईदेश के राजाओं के राज्याभिषेक के समय तिरुप्पवै और तिरुवेम्भवै नामक तमिल गीत गाये जाते हैं। बहासा इंडोनेशिया और मलय भाषा में तमिल के सैंकड़ों शब्द पाये जाते हैं। तमिल संस्कृति और परंपराओं से संबंधित अनेक शिलालेख भी इन देशों में पाये जाते हैं।

मंदिरों के स्थापत्य के क्षेत्र में जग प्रसिद्ध अंगकोर वाट और आग्नेय एशिया के अन्य मंदिरों को तमिल प्रणाली ने प्रभावित किया था। मदुरै मुआर, आदि तमिलनाडु के नगरों के नाम वाले स्थान इंडोनेशिया और मयेलशिया में भी पाये जाते हैं। मलक्का में तमिल शैवों के छोटे-छोटे उपनिवेश अब भी बसे हुए हैं।

चोल राजाओं की प्रजा की शिकायतों का तुरंत निवारण करने के लिए बड़ी ख्याति थी। उनके महलों के बाहर एक घंटा (अरैचि-मनि) लटका रहता था। जिसे बजाने पर किसी भी संकटग्रस्त प्रार्थी की राजा से तुरंत भेंट हो सकती थी और वह आवश्यकतानुसार निवेदन या फरियाद दर्ज कर सकता था। एक जनश्रुति है कि सम्राट मुनिनिधि चोल के पुत्र ने अपने रथ से कुचलकर एक बछड़े को मार डाला था। शोकग्रस्त गाय ने जैसे ही घंटा बजाया कि राजा ने तहकीकात की और अपने पुत्र को रथ के नीचे कुचलवाकर न्याय का कठोरता से पालन किया। परंतु तब भगवान रंगनाथ ने मध्यस्थी करके बछड़े और राजकुमार दोनों को जीवित कर दिया।

हर देवालय के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ देवता का रथ तमिलनाडु के धार्मिक क्षेत्रों का एक चिरपरिचित और लोकप्रिय वैशिष्ट्य रहा है। देवता के रथ को खींचने में बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी अप्रतिष्ठा का अनुभव नहीं करते थे। चोल राजा रथयात्रा के समय रथ खींचने में खुद अग्रस्थान पर रहते थे। आज भी रथयात्रा के उत्सवों में रथ खींचने के लिए लोग लाखों की संख्या में उपस्थित रहते हैं। मुहावरों में लोगों की भारी भीड़ की तुलना अकसर 'रथ खींचनेवालों की-सी भीड़' के साथ की जाती है।

पांड्य और चोल कुलों के राजवंशी देवालय-निर्माताओं ने संगतराशों,

मूर्तिकारों और अन्य कारीगरों को बड़ा प्रोत्साहन दिया था। वे वैयक्तिक तौर पर उनकी सुख-सुविधा का ख्याल रखते थे। एक आख्यायिका है कि किसी मंदिर के संगतराश को पान की पीक थूकने के लिए बार-बार बाहर जाना पड़ता था जिसके कारण उसके काम में व्यत्यय पड़ता था। इसे टालने के लिये किसी चोल राजा ने हाथ में पीकदान लिये मिस्त्री के पास खड़े होकर टहलूए की भूमिका निबाही थी।

पांड्य वंश

पांड्य राजाओं का शासन-क्षेत्र तमिलनाडु के दक्षिणी सीमांत में था। इन्होंने तमिल साहित्य का सर्वांगीण विकास करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कझुगमलै का चट्टान में से तराशा हुआ प्रस्तर-मंदिर इन्ही राजाओं के कला प्रश्रय का स्मारक है। लोकसाहित्य में पुरखों का उल्लेख अकसर पांड्य कहकर किया जाता है, (उदा. पांड्यारो उंगलप्पन) जो इन राजाओं के प्रति जनसाधारण के नि:सीम प्रेम और आदर का प्रतीक है।

विजयनगर का आधिपत्य

अपने सेनापतियों की निपुणता के कारण विजयनगर साम्राज्य की अधिसत्ता दक्षिण भारत में सभी जगह स्थापित हो गयी थी। तमिलनाडु के उत्तरी जिले भी इसके प्रभाव में आये, किंतु यहां वह सत्ता नाममात्र की ही रही और जनजीवन उससे अधिक प्रभावित नहीं हुआ।

विजयनगर के इन सेनानायकों ने सार्वजनीन पर्वों के आशय को स्पष्ट करके उनके कार्यक्षेत्र का विस्तार किया। देवालयों में उन्होंने सोलह खंभों से लगाकर सौ-सौ खंभोंवाले विशाल सभागारों का निर्माण करवाया। उन्होंने आंध्र प्रदेश में से ब्राह्मणों और कारीगरों के निष्क्रमण को प्रोत्साहित किया और उन्हें तमिलनाडु में बसाया। श्रीवल्लीपुत्तुर और अन्य कई स्थानों पर तेलुगु भाषियों की बस्तियां बस गयीं। तालीकोटा के युद्ध में विजयनगर साम्राज्य का पतन हो जाने के बाद गिंजी, तंजावर और मदुरै के सूबेदार स्वतंत्र हो गये और वे अपने-अपने प्रदेशों के 'नायक' कहलाने लगे।

नये मंदिरों के निर्माण और पुरानों के जीर्णोद्धार एवम् सजावट के कार्य को

इन नायकों का विवेकपूर्ण प्रोत्साहन मिलता रहा। इस कालखंड में निर्मित तिरुमलै नायक के सर्वांग सुंदर महल और मदुरै की मनोहारी कमल-पुष्करिणी आज भी पूरे देश में प्रसिद्ध है।

मराठा शासन

सन 1677 में शिवाजी के कर्णाटक-विजय अभियान की निष्पत्ति-स्वरूप तंजावर में मराठों की रियासत स्थापित हुई।

राजा सर्फोजी तंजावर के अत्यंत प्रबुद्ध मराठा शासक थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा डेनिश धर्मप्रचारकों की देख-भाल में हुई थी। इस कारण से मराठों की अधिसत्ता के कालखंड में तंजावर के समुद्री तट पर श्वार्ज, डेनिश, डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यावसायियों द्वारा व्यापारी पेढ़ियों और कल-कारखानों की स्थापना हुई। आगे चलकर इसकी परिणति इन यूरोपीय प्रजाओं की परस्पर विनाशकारी प्रतिस्पर्धा और कलह में हुई जिसके फलस्वरूप पांडीचेरी में फ्रांसीसियों और फोर्ट सेंट जार्ज (मद्रास) में इस्ट इंडिया कंपनी (अंग्रेजों) की अधिसत्ता स्थापित होकर वह प्रायः ढाई शताब्दी तक चलती रही।

मुस्लिम शासन

हम देख चुके हैं कि आरंभिक मुस्लिम आक्रमणों से तमिल प्रदेश प्रायः अछूता रह गया था। परंतु अठारहवीं शताब्दी में हैदरअली और टीपू सुल्तान के आक्रमणों ने तमिलनाडु में बड़ी खलबली मचा दी। तमिल में उस समय की रची हुई एक कहावत है: 'हैदरअली एनराल अड़ुल पिल्लइयम् वै मूडूम' (हैदरअली का नाम लेते ही बच्चे भी रोना बंद कर देते हैं।) उसी समय उत्तरी आर्कट जिलों में मुसलमानों का उपनिवेश स्थापित हुआ जिसके शासक नवाब कहलाये। बाद में आर्कट के ये नवाब राजनीतिक दृष्टि से बड़े शक्तिशाली सिद्ध हुए। इन नवाबों ने तत्कालीन जनजीवन को किस हद तक प्रभावित किया था। इसका अंदाजा आज तक चली आने वाली कतिपय लोकोक्तियों द्वारा लगाया जा सकता है। कोई आदमी गर्व-गरूर की बात करे तो उसे तुरंत टोका जाता है कि 'तुम तो आर्कट के नवाब के नाती की तरह बात कर रहे हो।' नवाब की सेनाओं के सिपाही शायद बहुत बढ़िया किस्म के जूते पहनते होंगे। अतः एक वाक्यप्रचार

चल निकला कि 'जूते अगर खाने ही पड़ें, तो वह कम से कम आर्कट के नवाब के तो हों।' इसी प्रकार यह व्याजोक्ति भी बड़ी लोकप्रिय रही है कि 'आर्कट का नवाब उतना ही निर्धन है जितना बाघ विनम्र होता है।' (नवाब अत्तनै एड़ै पुलि अत्तनै साधु)।

ब्रिटिश शासन

अंग्रेजों के संपर्क के आरंभ काल में ही तमिलनाडु मे अंगरेजी भाषा और ईसाई धर्म का प्रचार होने लगा था। आधुनिक काल में पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति और योरोपीय मनीषियों के प्रभाव ने तमिल भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में तमिलनाडु के लोग संसार भर में फैले हुए ब्रिटिश और फ्रांसीसी उपनिवेशों में बड़ी संख्या में जा बसे हैं।

स्वातंत्र्य संग्राम

देश के स्वातंत्र्य आंदोलन में तमिलनाडु का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। स्वातंत्र्य-संग्राम के आरंभिक कालखंड में कट्टबोम्मन का ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध संघर्ष, शिवगंगा के मुरुदुप बंधुओं का अंग्रेजों के खिलाप रक्तरंजित संग्राम, वेलु तंपी और पुलि तेवर के साहस और वेलोर के विप्लव की बड़ी धूम रही। इन सारी घटनाओं की यशोगाथा लोक साहित्य में गायी गयी है।

भारतीय राजनीति में गांधीजी के पदार्पण के बाद तमिलनाडु में होने वाली पहली महत्वपूर्ण घटना थी नमक-कानून तोड़ने के लिए राजाजी के नेतृत्व में की गयी वेदारण्यम् की नमक-कूच। 'कत्ति इनरि रतमिनरे' (शस्त्रों और रक्तपात के बिना लड़ाई) जैसे गीतों द्वारा इस आंदोलन के अहिंसक स्वरूप पर बल दिया गया था। इसके बाद श्री वी. ओ. चिदबरम् द्वारा एक पूर्णतः स्वदेशी नौका वहन निगम की स्थापना, सन् 1942 का 'भारत-छोड़ो' आंदोलन, कुलशेखरपट्टनम्, तिरुवंदनै, देवकोट्टै, तिरुपुर आदि में उसकी हिंसक प्रतिक्रियाएं और जापान द्वारा आक्रांत मालाया और ब्रह्मदेश में नेताजी सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद फौज में हजारों तमिलजनों की भर्ती, ये स्वातंत्र्य-संग्राम के अंतिम कालखंड की अन्य महत्वपूर्ण घटनाएं थीं।

इससे पहले दक्षिणी अफ्रीका में बसे हुए युवा तमिल स्त्री-पुरुषों ने अपनी

सादगी से गांधीजी को बहुत प्रभावित किया था और उन्हीं के शब्दों में कहें तो इन दीनहीन जनों ने अनेक 'सिद्धांतगठन में सहायक' होते हुए अनेक 'उद्देश्य की सफलता में महत्वपूर्ण योगदान' दिया था।

प्रजातीय आधार-सामग्री

तामिलनाडु की प्रजा का बहुत बड़ा भाग भूखंड-निवासी है। द्वीप-निवासियों की संख्या नाममात्र की है। कुछ आदिम वन्य कबीलों में हब्शी वंश के लक्षण पाये जाते हैं। अन्यथा पूरी प्रजा द्रविड प्रजाति की है। तमिलजनों की आकृति छोटी और शारीरिक गठन अकसर कमजोर होता है।

प्रजातीय दृष्टि से विचार करें, तो तमिल प्रजा में वंशसूचक लक्षणों का बड़ा उलझा हुआ संमिश्रण पाया जाता है। गंदुमी से लगा कर गहरा काला वर्ण, सिर के बाल अपेक्षाकृत विरल और घुंघराले, शरीर की रोमावली मध्यम घनता की, चौड़ा और कुछ ढलता हुआ ललाट, घनी धनुषाकृति भौंहें गढ़े की तरह धंसी हुई कनपटियां, मध्यम या कुछ बड़ी आकृति की भूरी आंखें, बिना सलवट की ऊपरी पलक, नीचे बांसे वाली सरल या किंचित् बाह्यगोल नाक, चौड़े और किंचित् मोटे सिरे वाले नथुने।

नीलगिरि के टोड भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीनतम आदिवासी माने जाते हैं। उनका कद सामान्यतः लंबा होता है।

यहां द्रविड संस्कृति का उल्लेख भी प्रसंगोचित होगा। डा. सुनीतिकुमार चटर्जी के मतानुसार "हिंदू धर्म और संस्कृति की बुनावट में ताना तो द्रविड मालूम देता है और बाना आर्य। भारतीय ढंग से बात करें तो यह मानना ही पड़ेगा कि हमारी संस्कृति के रुपये में बारह आने (तीन चौथाई) उपादानों का उद्गम आर्येतर स्रोतों से हैं।"

डाक्टर गिल्बर्ट स्लेटर का कथन है कि "भाषा के क्षेत्रों में जहां द्रविडों का आर्यीकरण हुआ वहां संस्कृति के क्षेत्र में आर्यों का द्रविडीकरण हुआ।"

कबायली बस्तियां

आधुनिक परिभाषा में किसी प्रजाति विशेष के आवास स्थान को बस्ती या उपनिवेश कहा जाता है।

तोलकाप्पियार का कहना है कि मनुष्य जाति का विचार एक अंत:प्रज्ञायुक्त प्राणीविज्ञानीय जीव के रूप में होना चाहिये। इस विद्वान ने पूरी जीवसृष्टि को छह विभागों में बांटा है। प्रथम विभाग में वनस्पति सृष्टि आती है जिसमें केवल स्पर्श की संवेदना होती है। द्वितीय वर्ग में स्पर्श और स्वाद की संवेदना वाले घोंघे, खाद्यशुक्तियां, सजीव सीपियां, सजीव समुद्री घास आदि जीव आते हैं। तीसरा वर्ग चिउंटी, दीमक आदि झिल्ली सदृश पंख वाले कीटकों का है जिनमें स्पर्श, स्वाद और गंध, ये तीन बोध होते हैं। चौथे वर्ग के प्राणियों में चार संज्ञाएं होती हैं स्पर्श, स्वाद, गंध और दृष्टि। इस वर्ग के प्रतिनिधि हैं केकड़े और झींगे। पांचवां वर्ग स्पर्श, रस, रूप, गंध और श्रुति की पंचज्ञानेंद्रियों वाले पशु-पक्षियों का है। छठा और सर्वांग-विकसित वर्ग है मनुष्य प्राणी का जिसे इन पंच ज्ञानेंद्रियों के अलावा प्रकृति ने बुद्धि और विवेकशक्ति रूपी एक छठी इंद्रिय भी दी है। इसी के साथ जुड़ी हुई शक्ति है सहजप्रज्ञा या अंतर्ज्ञान। तमिल मनीषियों ने सारी सुविकसित चेतन सृष्टि के इस एक व्यवच्छेदक लक्षण के आधार पर दो विभाग किये हैं। जिनमें यह छठी इंद्रिय सुषुप्त या निष्क्रियावस्था में रह गयी है, वे हैं माक्कल अर्थात् यंत्रवत् स्वचालित प्राणी और जिनमें यह वृत्ति पूर्णरूपेण जागृत और क्रियाशील है, वे हैं मक्कल अर्थात् परिष्कृत मनुष्य प्राणी।

प्राचीन तमिल विद्वानों ने प्रादेशिक आधार पर भी मनुष्य प्राणी का विभाजन किया था। इस वर्गीकरण के अनुसार कबीले के मुखिया या नायक और उसकी पत्नी को बड़ा सम्मानित पद दिया जाता था। उदाहरणार्थ, पलनी पहाड़ियां, नीलगिरि और पश्चिमी घाट के पाहाड़ी प्रदेशों में सम्माननीय कबायली सरदारों को पोरुप्पन, वेरप्पन और चिलम्पन कहा जाता था और उनकी पत्नियों को कोटिच्ची या कुरट्टी। पोरुप्पन नायकों के इलाके कबीले कनवर और कुख नामक दो विशिष्ट बिरादरियों में बंटे हुए थे। उनकी पत्नियों को कुरट्टियार कहा जाता था।

तंजाउर के नंदीमुख के दोआबी प्रदेशों में बस्तियों के मुखिया माकिलनन या उरन कहलाते थे और उनकी पत्नियां मनाइवी या किलट्टी। कृषियोग्य जमीनों के संपन्न नायक पति-पत्नी उलवर-उल्लटियार या कटैयर-कटैच्चियार कहलाते थे।

समुद्रतटीय प्रदेश के कबायली सरदार चेरप्पन या पुलम्पन कहलाते थे और उनकी पत्नियां परट्टी या नुलाइच्ची।

सांस्कृतिक संकुलता

प्रादेशिक आधार पर किया गया संस्कृति का उपरोक्त पचरंगी विभाजन, जिसका प्राचीन कवि गुणगौरव गाया करते थे, अब अतीत के गर्भ में विलीन हो गया है। वर्तमान तमिल समाज स्वभावतः बहुरंगी और सम्मिश्रित हो गया है। आधुनिक युग के आर्थिक और राजनीतिक आलोडनों के कारण उसकी पुरानी कड़ाई शिथिल होती जा रही है।

तमिलनाडु के नगरों और कस्बों की नगर-रचना में मकानों, वीथियों और सार्वजनीन केंद्रों का स्थान, रचनाविन्यास एवम् खाका- ढांचा सब जगह एक-सा पाया जाता है। हर कस्बे की रचना केंद्रस्थित किसी देवालय के इर्द-गिर्द या ओर-पास ही हुई है। मंदिर के पुजारी-पुरोहित, जो निरपवाद रूप से ब्राह्मण हुआ करते थे, मंदिर के सबसे समीपवर्ती, अग्रहारम् कहे जाने वाले स्थान में रहते थे। उसके इर्द-गिर्द पिल्लइ, मुदलियर आदि व्यवसायी वर्गों के मकान होते थे। इसके भी बाहर वाले दायरे में व्यापारियों और छोटे-मोटे काम-धंधे और मेहनत मजदूरी करने वालों के निवास-स्थान होते थे। अछूतों की बस्तियां नगर या गांव के बाहर होती थीं।

मदुरै जैसे ऐतिहासिक नगर में भी भिन्न-भिन्न व्यवसाय करने वाली जातियां अपने-अपने गिरोह बनाकर अलग-अलग मुहल्लों में रहती हुई पायी जाती हैं। उदाहरणार्थ, मदुरै के प्रायः सभी स्वर्णकार और जौहरी अवनी मूल नामक मुहल्ले में रहते हैं। कांच का काम और चूने का व्यवसाय करने वालों के मकान जिन बाजारों में हैं, उनका तो नाम ही क्रमशः 'कन्नाडीकार थेरु' (कन्नाडी= कांच), और 'चुन्नम्बुक्कार थेरु' है। इसी प्रकार कुआं खोदने वालों के मुहल्ले का नाम है 'तोट्टियन किनवु संथु' (तोट्टि=कुआं)। लेकिन इस रूढ़िनिष्ठता और पुराणप्रियता का स्थान अब बुद्धिवाद लेता जा रहा है और गांवों और शहरों का नक्शा बड़ी तेजी से बदलता जा रहा है। कई मंदिरों के अग्रहारम् में अब ब्राह्मणेतर जातियों के लोग भी रहने लगे हैं। पहले सनातन हिंदू धर्म को छोड़कर अन्य धर्मों पर आस्था रखने वाले लोग गिरोह बनाकर नगरों के बाहर या नगर के भीतर अपने विशिष्ट मुहल्लों में ही रहते थे। अब ऐसी कोई पाबंदी नहीं रही और सहजीवन का रिवाज प्रचलित होता जा रहा है। सामाजिक पर्वों के दरमियान

सारी जातियों और अनेक धर्मावलंबियों के एकत्र होने के दृश्य अधिकाधिक दिखाई देने लगे हैं। इन पर्वों के संचालन में हर जाति को अपनी विशिष्ट भूमिका अदा करनी पड़ती है।

जाति-अनुसार मुहल्ले बसाने की प्रथा को एक अन्य कारण से भी ठेस पहुंची। उन्नीसवीं शताब्दी में व्यापार में आने वाली तेजी और सरकारी प्रश्रय के कारण बहुत सी ब्राह्मणेतर जातियां धनवान बन गयी थीं। इन संप्रदायों के प्रभावशाली लोगों ने उच्च जातियों के आवास-स्थानों में जरूरतमंद लोगों की टोह लगाना शुरू किया और फिर उन्हें मंहमांगी और बेहिसाब कीमत देकर उनके मकानों को खरीदना शुरू किया। इस तरह उनका उन मुहल्लों में पांव जम गया। यह प्रक्रिया लंबे समय तक लगातार चलती रही तो धीमी पर अनिवार्य गति से सहजीवन को प्रोत्साहन मिलना स्वाभाविक है और समय बीतते उसकी परिणति सर्वजातीय बस्तियों के विकास में होना अवश्यंभावी है। तमिलनाडु में भी यही हुआ। दिलचस्पी की बात केवल यह रही कि इन प्राथमिक 'आक्रांताओं' को मकानों की जो बेहद कीमत चुकानी पड़ती थी, और उसके कारण उनका जो नुकसान होता था, उसे पूरी जाति के लोग चंदा एकत्र करके पूरा कर देते थे।

इस्लाम और ईसाइयत के अभ्युदय और ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ-साथ आने वाली बुद्धि-प्रामाण्यवादी विचारधाराओं के कारण धार्मिक त्यौहारों की चकाचौंध अब कम होती जा रही है। एक दृष्टि से देखा जाय तो कई शताब्दियों तक समूचे हिंदू धर्म को रक्षात्मक रुख धारण करना पड़ा था। इस वातावरण में शिकागो में होने वाले विश्वधर्म सम्मेलन में हिंदूधर्म की तर्कसंगत व्याख्या करके स्वामी विवेकानंद ने पश्चिम के देशों में हिंदू धर्म की प्रतिष्ठा को बहुत ऊंचा उठाया था। स्वामीजी को शिकागो-यात्रा की दैवी प्रेरणा कन्याकुमारी की प्रस्तरशिला पर बैठकर मनन करते समय ही प्राप्त हुई थी। उनकी यात्रा का अधिकांश खर्च भी रामनाड के राजा ने किया था। भारत लौटने पर स्वामीजी ने मद्रास में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जिसकी शाखाएं अब भारत भर में ही नहीं, विश्व के विभिन्न देशों में भी फैली हुई हैं।

आर्थिक-सामाजिक ढांचा

भारत के अन्य प्रदेशों की तरह तमिलनाडु का आर्थिक ढांचा भी पूरे

लोकसमुदाय की भौतिक आवश्यकताओं के विषय में आत्मनिर्भर होने की दिशा में उन्मुख रहा है। साप्ताहिक पैंठें और चुने हुए व्यापार-केंद्रों में लगनेवाले मासिक और वार्षिक मेले परापूर्व से अपने क्षेत्र में बहुलता से होनेवाले माल को कमी पड़नेवाली चीजों के साथ विनिमय करने की मंडी की भूमिका निबाहते रहे हैं।

आज से कुछ वर्ष पहले तक तिरुनेलवेली जिले के सीमावर्ती गांवों की साप्ताहिक पैंठों में स्थानीय निवासी चावल या अपने यहां बहुतायत से होनेवाली अन्य किसी वस्तु के बदले में वदकन्येरी की ग्रामीणों से दोसूती के गमछे (ईराझइ मुंडु) खरीदते हुए देखे जा सकते थे। वस्तु-विनिमय के इन व्यवहारों का स्थान बाद में मूल्य का रुपये-पैसे द्वारा भुगतान करने की प्रथा ने ले लिया, पर क्रय-विक्रय की चीजें वही रहीं। आजकल तो गांव-गांव में विविध प्रकार की वस्तुएं बेचनेवाली दूकानें खुल जाने के कारण वस्तु-विनिमय का रिवाज समाप्त हो गया है। खेती-बारी के औजार, मवेशी, और किराने का सामान खरीदने-बेचने के लिए पर्वों और मेलों के अनुषंग में भरी जानेवाली पैंठें अब भी ग्रामीण-जीवन का लोकप्रिय और आवश्यक अंग रही हैं।

पहले हर जाति का आर्थिक संगठन उसके सदस्यों के जन्मजात व्यवसाय पर आधारित रहता था। उदाहरणार्थ ब्राह्मण अपने कार्य-क्षेत्र को ज्योतिष विद्या, विद्यादान और धार्मिक अनुष्ठानों के पौरोहित्य तक ही सीमित रखते थे। अभी कुछ समय पहले तक उनके पास निश्चित आय वाला कोई व्यवसाय शायद ही होता था। वे संपूर्ण रूप से मंदिरों की पूजा-अर्चा के लिए राजाओं द्वारा उन्हें दान किये गये गांवों की आय पर ही निर्भर करते थे। सादगी का रहन-सहन और उच्च स्तर की विचारधारा एवं बौद्धिकता ही उनके जीवन का मूलमंत्र था।

वेल्लाल कही जानेवाली जातियों के लोग (जिन्हें कोइम्बतूर जिले में गौउंडर, चिंगलपुट में मुदलियर और तिरुनेलवेली में पिल्लै कहा जाता है) बड़े पैमाने पर खेती करते थे। बड़े जमींदारों की विस्तृत कृषि की देखभाल भी वे ही करते थे। खेती की पैदावार का विक्रय उनकी आमदनी का प्रधान स्रोत होता था। गांवों के छोटे-मोटे व्यापारी अक्सर कोमटी या चेट्टियार कही जानेवाली वैश्य जातियों के होते थे। आजकल तमिलनाडु में व्यापार के क्षेत्र में सर्वत्र वैश्यों का स्थान नाडरों ने ले लिया है।

'शान्नार' कही जाने वाली जाति, जिसके सदस्य पहले ताड़ी चुआने का काम

करते थे, स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद अपने उद्यम और साहस के बल पर समृद्ध व्यापारी जाति बन गयी है। हरिजन अधिकांश में आज भी भूमिहीन हैं और खेतों में मजदूरी करते हैं। ये जातियां निर्दिष्ट काम को पूरा करके किसी प्रकार गुजर-बसर करती हैं। हर गांव में धोबी, नाई, माली आदि श्रमजीवी लोग होते हैं जिन्हें पुराने जमाने में अपनी सेवाओं के बदले में नकद रकम प्राप्त नहीं होती थी। अपने ग्राहकों और आश्रयदाताओं से जो थोड़ी बहुत दस्तूरी और फसल के समय जो अनाज मिलता था, उसी से इनका गुजारा चलता था।

ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के बाद यह आर्थिक व्यवस्था डगमगा गयी। अब हर सेवा के बदले में नकद पैसा देना आवश्यक हो गया। पूजा-अर्चा, योग-अनुष्ठान, भविष्य कथन और शुभ मुहूर्त निर्धारण के लिए ब्राह्मण भी अब थोड़ी बहुत नकद दक्षिणा लेने लगे।

स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद सारे पुराने मानक बदल गये हैं। अब समाज में, विशेषत: उसके निचले तबको में, जाति. धनसपत्ति या सैद्धांतिक विचारधारा पर आधारित राजनीतिक गतिविधियों की सरगर्मी अधिक है। पारस्परिक उच्च जातियों के सदस्यों के प्रति प्रदर्शित की जानेवाली आयुनिरपेक्ष आदर-सम्मान की भावना भी अब लुप्त होती जा रही है और सामाजिक ऊंच-नीच के सोपानतंत्र में नीची मानी जाने वाली श्रेणियों में समानता की उत्कंठा बढ़ती जा रही है।

शहरों में उपलब्ध होनेवाले नौकरी धंधों के अवसरों के कारण गांव के सबल शरीर वाले नौजवान और मध्यमवर्गीय लोग नगरों की ओर आकृष्ट हो रहे हैं जिससे गांवों के मनुष्यबल का ह्रास होता जा रहा है। गांवों में रह जानेवाले अपेक्षाकृत सपंन्न लोगों में भी शहरों का आकर्षण कुछ कम नहीं है। होटलों और सिनेमाघरों में समय बिताने के लिए वे नियमित रूप से आसपास के शहरों का चक्कर लगाते रहते हैं।

पूरे प्रदेश में सड़कों का जाल बुना जाने के कारण और आधुनिक बसों द्वारा सड़क-परिवहन की नियमित और विश्वसनीय सेवा उपलब्ध हो जाने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों का नक्शा ही बदल गया है। गांवों का अर्धनागरीकरण बड़ी तेजी से हो रहा है। गांवों में भी आजकल आधुनिक ढंग के पक्के मकान बन रहे हैं और हैसियतदार लोग उनमें स्नानगृहों, फ्लश के शौचालयों, वातानुकूलित कमरों, रेफ्रीजरेटरों और रेडियो आदि की स्थापना करके ग्रामीण

परिवेश में अधुनातन नागरी सुख-सुविधाओं का उपभोग कर रहे हैं। सुंदर, मजबूत और गृहाकर्षण की परंपरागत सुविधाओं से युक्त पुरानी इमारतों को ढहवा कर उनके स्थान पर नाजुक, सुदर्शन और आधुनिकता के आडंबर वाले बंगले बनवाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। एक तरह से देखा जाय तो आधुनिकता का खब्त जीवन के हर क्षेत्र पर छाता जा रहा है।

रामनाथपुरम् और तिरुनेलवेली जिलों के सूखाग्रस्त इलाकों से प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में लोग पड़ोस के दोआबों और नदीमुख- प्रदेशों में स्थानांतर करते रहे हैं। धान के प्रतिरोपण और फसल की कटाई के समय इन्हें खेतों में मजदूरी मिल जाती है। इसी प्रकार बागान-मजदूर, फुटकर व्यापारी और छोटे-मोटे व्यवसायियों के रूप में स्थायी तौर पर विदेशों में बस जाने के लिए भी प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में लोग निष्क्रमण करते रहते हैं। ये लोग जहां भी जा कर बसे हैं, उस प्रदेश को उन्होंने अपने देश के रूप में स्वीकृत कर लिया है और उसे अपना सर्वश्रेष्ठ उद्यम और परिश्रम अर्पित करके उसकी राष्ट्रीय समृद्धि को बढ़ाया है।

सूखे प्रदेशों से निष्क्रमण करके अधिक उपजाऊ क्षेत्रों में जा बसने की प्रथा का पांड्य राजाओं के काल में भी अस्तित्व था। निम्नोल्लिखित लोकगीत उसी विषय पर है :

अल्लि अरसनी माल
(अल्लि रानी की कहानी)

हाय, पांड्य की प्रजा को
पराये देशों में जाना पड़ता है।
मदुरै के इर्द गिर्द वर्षा की एक बूंद नहीं
सुदूर दक्षिण में भी छोटी-मोटी झड़ी नहीं
भगवान सोक्कनाथ के निवास स्थान
मदुरै में पानी का छींटा नहीं।

पूरा नगर सूखे से दग्ध है
नमी का कहीं नामोनिशान नहीं
सब ओर आग, धुआं और अंगारे।
तालाबों और सरोवरों में

पीने को भी पानी नहीं
कौए की चोंच डूबे उतना भी नहीं
नदी और नाले
ताल और पोखर
भिन्न नहीं सरोवर
सब गये हैं सूख।
धरती की अंतड़ियां तक
धूप से खदक कर कुलबुला रही हैं
मदुरै के राज्यकोश में
अन्न का कण नहीं
पूरे प्रदेश में
ब्याह नहीं शादी नहां
धूल का साम्राज्य
छाया है चहुंओर।
वृक्ष सूखे और दग्ध पत्तों को झाड़कर
खड़े हैं स्तब्ध और नंगे
धरा जल रही है
घासफूस के अभाव में
पंछी कोई नहीं फरकता
वसुंधरा सहारा नहीं देती।
एक युग था
मदुरै नगर की हवेलियों पर
फहराते थे बहुरंगी ध्वज;
अब वहां के निवासी
भाग रहे हैं यत्रतत्र
आश्रय की तलाश में
डरे हुए जैसे किसी शत्रु से;
और वे सूखे के मारे
जाते हैं पराये प्रदेशों में

मदुरै नगर में खाने को धान नहीं
उसके इर्दगिर्द के वनों में
वृक्षों पर पान नहीं;
ईख के मधुर दंड
हो गये हैं मानो सूखे सरकंडे।
महानगर मदुरै में
आश्रय नहीं, छाया नहीं, माया नहीं;
जो जा नहीं पाये
वे भी डूबे हुए हैं शोकसागर में
तेजहीन, श्रीहीन उनके मुख
भूख से कलपते, रोटी को तरसते
चहुं ओर भटकते···
बारह वर्ष का यह लंबा अकाल
चेहरों पर मुर्दनी
आंखे धंसी हुई
स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध
भाग रहे हैं चहुंओर
अनबूझे अनजाने
दूर के प्रदेशों में

तमिलनाडु के इस भीषण दारिद्र के कारण लाखों लोग ब्रिटिश और फ्रांसीसी उपनिवेशों के प्रलोभन में पड़ कर निष्क्रमण करने को मजबूर हुए। इस विभीषिका ने महात्मा गांधी का भी ध्यान आकर्षित किया। सितंबर 1929 के अंत में मदुरै की यात्रा करते समय वहां के किसानों की दरिद्रता को देखकर गांधी जी इस कदर व्यथित हुए कि उन्होंने सिले हुए कपड़े त्यागकर लंगोटी धारण की और केवल पंचे-गमछे से काम चलाने का निश्चय किया। उन्होंने कहा, "मेरे कहने से लाखों लोगों ने अपने विदेशी कपड़े जला तो दिये, पर वे इतने दरिद्र हैं कि उनके बदले में खादी के कपड़े खरीदने की भी उनमें शक्ति नहीं है। अब शायद उन्हें केवल लंगोटी से काम चलाना पड़ेगा। उनके अभाव में समभागी

होने के लिए मैंने आज से धोती, कुरता और टोपी का त्याग करने का निश्चय किया है। अब सिर्फ लंगोटी और एक चद्दर से ही मैं काम चलाऊंगा। चद्दर का उपयोग भी केवल शरीर-रक्षा के लिए ही करूंगा—अन्यथा नहीं।''

स्वातंत्र्य के बाद की प्रवृत्तियां

सन 1947 में स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद तमिलनाडु ने आर्थिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक पुनरुत्थान का अनुभव किया है।

महाराष्ट्र के बाद तमिलनाडु भारत का सर्वाधिक उद्योगीकृत प्रदेश है। बिजली के सुनियोजित उत्पादन, तकनीकी ज्ञान की आसानी से उपलभ्यता और विभिन्न मंत्रिमंडलों की दूरदर्शी नीतियों के कारण यह संभव हो सका है। ब्रह्मदेश, श्रीलंका आदि देशों से निष्कासित भारतीय उद्योगपतियों और श्रमिकों के प्रयत्नों से इसे और भी अधिक बल मिला है।

मद्रास नगर में खनिज तेल के शुद्धिकरण की विशाल रिफाइनरी और आदर्श औद्योगिक बस्तियों की स्थापना तमिलनाडु के औद्योगिक-विकास के मानदंड हैं। मोटर गाड़ियों के निर्माण में अगुआ होने के कारण मद्रास को भारत का डेट्राइट कहा जाता है। मद्रास, मेत्तूर और तूतीकोरिन के ओरपास पेट्रोलजन्य रसायनों के उद्योग का जाल-सा बुन गया है।

नेयवेली की खानों से निकलने वाले भूरे कोयले (लिग्नाइट) ने बिजली ओर यूरियाजन्य खादों के उत्पादन में भारी वृद्धि की है। इस कोयले के बुरादे की ईंटें ढालकर उनका घरेलू ईंधन के रूप में भी उपयोग किया जाता है। सेलम में शीघ्र ही इस्पात का कारखाना स्थापित होने वाला है।

पानी के पंप ओर अन्य विविध प्रकार के यांत्रिक औजारों के उत्पादन और कमाये हुए चमड़े के निर्यात में तमिलनाडु भारत का अग्रसर राज्य रहा है। फिल्मों का निर्माण यहां का एक अन्य प्रमुख उद्योग रहा है। तमिल ही नहीं, हिंदी फिल्मों के निर्माण में भी मद्रास का नाम उल्लेखनीय है। इस दृष्टि से उसे भारत का हालिवुड कहा जा सकता है।

कोइम्बतूर और उससे कुछ कम हद तक मदुरै दक्षिण में वस्त्रोद्योग के बड़े महत्वपूर्ण केंद्र रहे हैं। अहमदाबाद की तरह यहां की मिलें कताई-बुनाई-रंगाई की संश्लिष्ट इकाइयां नहीं होतीं। दक्षिण भारत के अधिकांश उत्पादक अपने

कार्यक्षेत्र को सूत के उत्पादन तक ही सीमित रखते हैं। जिसे हाथकरघों के कुशल कारीगरों में वितरित किया जाता है। चीनी और सिमेंट के उत्पादन में भी तमिलनाडु ने तेजी से प्रगति की है और कागज की कई मिलों का निर्माण हो चुका है।

कृषि के क्षेत्र में रासायनिक खाद और यांत्रिक उपकरणों के अधिकाधिक प्रयोग द्वारा गल्ले की पैदावार लगातार बढ़ रही है—यद्यपि यांत्रिक साधनों को अपनाने की प्रक्रिया कुछ धीमी रही है। राज्य के वस्त्रोद्योग और वनस्पति-तेल-उद्योग की मांगों को पूरा करने के लिए कपास, तिलहन आदि पैदावारों की ओर अधिक ध्यान देने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

कुटीरोद्योग के रूप में कांचीपुरम् और संगड़ी में साड़ियों की बुनाई एवम् मदुरै के रंगाई-बुनाई के उद्योग उल्लेखनीय हैं। मदुरै के दक्षिण के सूखे इलाकों में दियासलाई का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। भारत के दियासलाई-उत्पादन का प्रायः चालीस प्रतिशत अंश शिवकाशी और उसके इर्द-गिर्द के प्रदेश में होता है।

स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद भारत के राज्यों की भाषा के आधार पर पुनरंचना की गयी। इससे सभी प्रादेशिक भाषाओं को प्रोत्साहन मिला। श्रीलंका, मलयेशिया, सिंगापुर, फिजी, मारीशस और दक्षिणी अफ्रीका में तमिल भाषियों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण तमिल को एक प्रकार की अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हो चुकी है। यूनेस्को द्वारा प्रयोजित तमिल गौरव ग्रंथों के यूरोपीय भाषाओं में किये गये अनुवादों द्वारा उसे पश्चिम के देशों में भी मान्यता मिल चुकी है। तमिल भाषा और साहित्य-विषयक परिषदें और परिसंवाद क्वाला लंपुर से लगाकर पेरिस तक के विभिन्न नगरों में होते रहते हैं। संसार के लगभग बीस देशों की सहायता से तमिल के विशेष अध्ययन के लिए मद्रास में एक अंतर्राष्ट्रीय संस्थान स्थापित करने की योजना भी बनायी गयी है।

धार्मिक क्षेत्रों में भी जोरों की क्रियाशीलता दिखाई देती है। पुराने मंदिरों का जीर्णोद्धार और नयों का निर्माण बड़े पैमाने पर हो रहा है। इन पर अब विशिष्ट राजघरानों का या किसी जातिविशेषका एकाधिकार नहीं रहा। अब उनकी देखभाल की जिम्मेदारी सार्वजनीन मानी जाने लगी है और इसके लिए धन भी जनसाधारण से प्राप्त होता है। हिंदुओं का धर्म-परिवर्तन अब अतीत की बात हो चुकी है।

धर्मों के आपसी संबंधों के प्रति विभिन्न धर्मावलंबी लोगों में बड़ा मित्रतापूर्ण रवैया पाया जाता है। इसी प्रकार एक ही धर्म के विभिन्न संप्रदायों के बीच के संबंध भी बड़े सौहार्दपूर्ण और उदार हो गये हैं। शैवों और वैष्णवों के बीच अब कोई कटुता नहीं रही और प्रोटेस्टंटों ने कैथलिकों के प्रति पुराने अविश्वासों और पूर्वाग्रहों को त्याग दिया है। प्रोटेस्टंटों के विभिन्न फिरकों का 'दक्षिण भारतीय चर्च' के अंतर्गत एकीकरण हो गया है।

सांस्कृतिक विरासत के क्षेत्र में तो आमूल पुनरान्वेषण हुआ है। तमिल रंगमंच सदा से सक्रिय रहा है। तमिल संगीत का संरक्षण और संवर्धन करने के आंदोलन को लोगों का सक्रिय समर्थन प्राप्त हुआ है और अब उसकी पक्की प्रतिष्ठापना हो गयी है। मनोरंजन के कार्यक्रमों में और फिल्मों में लोकसंगीत और लोकनृत्य को उपयुक्त स्थान मिल रहा है।

तमिल लोकगीतों का संग्रह आरंभ में योरोपीय विद्वानों द्वारा हुआ था। भारत के परंपरावादी विद्वान उन दिनों इन बातों को हेय समझ कर उन्हें बड़ी हिकारत की नजर से देखते थे। परंतु अब उनकी स्वीकृति साहित्य के महत्वपूर्ण अंग के रूप में हो चुकी है। लोकगीतों और लोककथाओं का समावेश विद्यालयों के पाठ्यक्रम में किया जाने लगा है इतना ही नहीं, उन पर विश्वविद्यालयों में अनुसंधान भी होने लगा है।

तमिलनाडु में सिनेमागृहों की संख्या पूरे देश के औसत से दुगुनी है। इसका लोगों की विचारधारा और उपभोग्य वस्तुओं की खपत-प्रणाली पर प्रभाव पड़ा है।

आहार के क्षेत्र में अब अधिक संतुलित भोजन-सामग्री का प्रचार हो रहा है। शहरी क्षेत्रों में चावल के स्थान पर गेहूं की खपत बढ़ती जा रही है। रोटी, डबलरोटी, केक आदि का प्रचलन बढ़ रहा है। उच्चवर्गों में जन्म दिन पर केक काटने की प्रथा रूढ़ होती जा रही है। 'उनपतु नाड़ी उडुप्पन इरंडु' (मुट्ठीभर भात खाने को और घुटने भर धोती पहनने को) वाली सादगी अब बीते हुए युग की बात हो गयी है। अब तो दक्षिण की भयावह गरमी में भी युवा स्त्री-पुरुष नायलोन की साड़ियां और टेरीलीन की कमीजें पहनते देखे जाते हैं। सुख-सुविधा के साधनों का उपभोग और देश-विदेश की यात्रा करने की इच्छा आम बात होती जा रही है।

ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रचलित बिजली अब तमिलनाडु के गांव-गांव में पहुंच चुकी है। डिंडिगुल के गांवों में गाया जानेवाला निम्नोक्त लोकगीत बिजली की लोकप्रियता का परिचायक है :

नीलगिरि ओरतिली
नीट्टि विट्टन कान्ताक कम्पी
तोट्टप पुडिक्किताड़ी
तुडिकारन पोट्ट कम्पी
कोनुसी पोल
कोइम्बतोर जिल्ला कम्पी
केल्लप्पनम् सेलवलिचु
कोन्डुवतन सेम्पट्टिक्के

अर्थ

गोरे साहबों ने
नीलगिरि के बिजलीघरों में
बिजली पैदा करके
तारों का जाल सब जगह फैलाया है।
इन तारों को छूने से झटका लगता है
और जान का खतरा है
बोरिया सीने के सुए जैसे दिखते हैं ये तार
इनमें बिजली आती है
नीलगिरि की पहाड़ियों से
कोइम्बतूर के मार्ग से
इन बिजलीघरों को बनाने में
और सेम्पत्ति से तारों को चहुंओर फैलाने में
लाखों रुपये खर्च हुए होंगे।

2 मिथक और पौराणिकी

तमिलनाडु की लोककथाओं और पौराणिक कल्पनाओं के मूल मोहन जोदड़ो, हड़प्पा और आद्यद्रविड़ संस्कृति के अन्य उद्गम-स्रोतों तक पहुंचते हैं। इन सब पर शैव संप्रदाय का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। शैव संप्रदाय का सर्वांगीण विकास तमिलनाडु में ही हुआ और यहीं वह उत्कर्ष के सर्वोच्च सोपान पर पहुंचा। तमिल मनीषा के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति मातृशक्ति से मानी जाती है। विष्णु उसका संरक्षण और पालन करते हैं और भगवान शिव द्वारा उसका संहार होता है। प्रलय की इस शक्ति के प्रतीक के रूप में ही जनसाधारण द्वारा शिव की उपासना होती है।

ब्रह्मांड और उसकी उत्पत्ति

तमिलनाडु के प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ तोलकप्पियम् में पृथ्वी, ग्रहों और नक्षत्रों की आकृति का वर्णन पाया गया है। महासागरों की गहन जानकारी के बिना तमिलजनों के लिए प्रचंड झंझावतों और भयावह बवंडरों का मुकाबला करते हुए व्यापार के लिए सुदूर यूनान और रोम तक जाना संभव न होता। साहस की इस अजेय वृत्ति ने ही तमिलजनों को संसार की महान समुद्रगामी जातियों में स्थान दिया है। उनकी साहसप्रियता और उद्यमशीलता से प्रभावित होकर ही योरपवासियों ने तमिल प्रजा का उल्लेख एक क्रियाशील जाति के रूप में किया है।

'यादम ऊर यावरम् केलिर'—(संसार का हर स्थान मेरा घर है और हर आदमी मेरा बंधु है) आदि शब्दों द्वारा तमिल के एक प्राचीन कवि ने वसुधैव कुटुंबकम् और विश्वबंधुत्व की भावनाएं व्यक्त की हैं। वर्तमान युग में इसे तमिल विचारधारा का सारांश माना जा सकता है।

साक्षात्कार प्राप्त सिद्धों सौर रहस्यवादियों में विश्व के समस्त भौतिक तत्त्वों का नियमन करने की शक्ति होती है ऐसा विश्वास तमिल की अनेक दंतकथाओं में व्यक्त हुआ है। उदाहरणार्थ बच्चों की परम मित्र मानी जाने वाली अव्वै नामक तमिलनाडु की सुप्रसिद्ध कवियित्री ने 'एट्टुत येनि ऐतालम् एत्तिप पो' (सबसे ऊंची सीढ़ी के भी परे चला जा) आदि जादूभरे आदेशों द्वारा आकाश को क्षितिज के दायरे के बाहर जाने को मजबूर कर दिया था। उस चारण गायिका ने तमिलनाडु के तीन युद्धरत राजाओं के बीच मध्यस्थी करने का कार्य भी किया था।

सूर्य

सूर्य अत्यंत प्राचीन काल से तमिलजनों की उपासना का विषय रहा है। उसे 'पालार तोड़ु ज्ञायिरु' (सर्वाराध्य) कहा जाता है।

तमिल पुराण कथाओं के अनुसार सूर्य सात घोड़े जुते हुए एक पहिये के रथ में बैठ कर मेरु पर्वत की परिक्रमा करता रहता है। सूर्यास्त और ग्रहण के समय चंद्र-सूर्य को सांप निगल लेता है ऐसा माना जाता है।

उषःकाल में उगते हुए सूरज की उपासना तमिलनाडु में व्यापकता से प्रचलित है। तेइ नामक तमिल मास के प्रारंभ का दिन पोंगल कहलाता है। सूर्योपासना के लिए यह दिन अत्यंत शुभ माना जाता है। उसी दिन सूर्य का मकर राशि से उत्तर की ओर संक्रमण (उत्तरायण) होता है। पुरानी प्रथाओं का सख्ती से पालन करनेवाले परिवारों और प्रदेशों में पोंगल के दिन सूर्योदय के समय पोंगल नामक प्रसादान्न घर के भीतर के खुले आंगन में या घर के मुख्य द्वार पर पकाया जाता है।

सूर्योदय के लिए कन्याकुमारी सब से पवित्र स्थान माना जाता है। यहां के सामुद्रिक त्रिवेणीसंगम (हिंद महासागर, अरब सागर और बंगाल के उपसागर के काल्पनिक मिलन) पर दिखाई देने वाला सूर्योदय और सूर्यास्त का दृश्य अनुपम होता है।

श्रद्धालुओं के लिए सूर्योपासना विस्तृत कर्मकांड का एक भाग होती है। सूर्य की मूर्तियां दक्षिण भारत के मंदिरों में बहुतायत से मिलती हैं। सूर्य की प्राचीनतम प्रतिमा महाबलीपुरम् के धर्मराज रथ में पायी जाती है। ग्यारहवीं

शताब्दी में चोलवंश के राजेंद्र नामक नरेश ने तिरुचिरापल्ली जिले के गंगाइकोंड चोलपुरम् नामक स्थान के भव्य देवालय में सूर्ययंत्र की स्थापना करवायी थी।

तंजाउर जिले के सूर्यनारकोइल नामक स्थान पर चोलवंश के ही कुलोत्तुंग नामक राजा ने सूर्य मंदिर का निर्माण करवाया था। इसमें भगवान सूर्य और उनकी दोनों सहचारिणियां—ऊषा और प्रत्यूषा की पाषाण प्रतिमाएं पायी जाती हैं। पुराण कथाओं के अनुसार सूर्य हाथों में रक्तकमल धारण करते हैं जबकि उनकी सहधर्मिणियों को नीलकमल अधिक पसंद है। इस मंदिर में सूर्य के वाहन सतमुंहे घोड़े की प्रतिमा की शिव के नंदी की तरह मंदिर के गर्भगृह के सामने स्थापना की गयी है।

कन्याकुमारी के मंदिर की स्थापना कुछ इस प्रकार की गयी है कि सूर्योदय होते ही सूरज की पहली किरण देवी की नाक की नथ पर पड़ती है। अवुदायरकोइल और तिरुप्पपुलियर के देवालयों में और कुंभकोणम् के नागराज मंदिर में भी प्रभातवेला की प्रथम किरण ठीक देवता के मुख पर पड़ती है। और भी कई देवालयों में वर्ष के किसी विशिष्ट दिन देवता पर सूरज की किरणें पड़ें, ऐसी व्यवस्था पायी जाती है।

तमिलनाडु के मंदिरों की संश्लिष्ट रचना में सूर्य का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। परंपरा से सूर्य की स्थापना गर्भगृह के प्रदक्षिण कक्ष के प्रवेश द्वार पर की जाती है। चंद्र की स्थापना अकसर इस परिक्रमा के बहिर्द्वार पर होती है।

देवताओं के निवास स्थानों की चर्चा से हटकर मनुष्यों के आवास स्थानों की ओर मुड़ें, तो यह दिखाई देता है कि मकानों की रचना सूर्य प्रकाश और हवा का अधिकाधिक संचार हो सके इस बात को ध्यान में रखकर की जाती है। कटहरों से घिरे हुए और ऊपर से खुले विस्तृत आंगन प्रायः सभी घरों में पाये जाते हैं। इनमें सूरज की रोशनी पर कोई रोक नहीं रहती। कुओं को भी ऊपर से अकसर खुला छोड़ दिया जाता है ताकि उनमें धूप जाती रहे और पानी शुद्ध होता रहे।

तमिल पंचांग और कालगणना सूर्य पर आधारित हैं। दिन की अवधि सूर्योदय से लगाकर सूर्यास्त तक मानी जाती है।

कोई मनुष्य दिन के समय खुले बरामदे में सोये तो ऐसा माना जाता है कि सूरज की उष्णता का उसके शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और उसकी आंखों में जलन उत्पन्न होगी। ग्रहण के समय गर्भवती स्त्रियां सूर्य-चंद्र की ओर नहीं देखतीं

और ग्रहण के दौरान अंगुली में लोहे की अंगूठी पहने रहती हैं। बच्चे अकसर इन विधिनिषेधों का पालन नहीं करते और काजल जमाकर धुंधले किये हुए शीशे में से ग्रहण के समय भी सूरज की ओर देखने से नहीं चूकते।

जायदाद के दस्तावेजों में एक शर्त होती है जो खरीदी हुई जायदाद के स्वामित्व और उपभोग पर खरीदार का जब तक सूर्यचंद्र का अस्तित्व है तब तक (यावच्चंद्रदिवाकरो) हक प्रस्थापित करती है।

चंद्र

तमिलनाडु में चंद्र का संबंध प्रेम, सौंदर्य के विविध पहलुओं और मनोभावों के साथ जोड़ने की परंपरा है। शाम को दूध पीते समय बच्चों को चंद्र की ओर देखने को प्रेरित किया जाता है। 'नीला नीला ओडी वा' (चंदामामा आ जा) वाली लोरी माताओं को बहुत प्यारी है।

शुक्लपक्ष में जन्म लेने वाले बालक भाग्यवान माने जाते हैं। मनुष्य की आयु गणना उसने कितनी पूर्णिमाएं देखीं, इस आधार पर की जाती है। 1008वीं पूर्णिमा पार कर लेने पर 'शताभिषेकम्' संस्कार मनाया जाता है। मोटे हिसाब से यह समारोह अस्सी वर्ष पूरे होते ही मना लिया जाता है।

शरीर को लंबे समय तक सूर्य या चंद्र के प्रकाश में खुला छोड़ना अच्छा नहीं माना जाता। इससे कई प्रकार के रोग होने की संभावना मानी जाती है।

हिंदू विवाहों को पुरोहित गण चंद्र-सूर्य की साक्षी में संपन्न हुआ घोषित करते हैं। पत्नी से पति के प्रति अरूंधती की-सी एकनिष्ठा अपेक्षित की जाती है। (सप्तर्षिमंडल के एक तेजस्वी तारे को वसिष्ठ और उसके सदा पास रहने वाले एक छोटे तारे को अरूंधती की संज्ञा दी गयी है।)

जलप्रलय

संसार की अनेक जातियों की तरह तमिलजनों का भी यह विश्वास रहा है कि किसी बीते हुए युग में पृथ्वी पर महाप्लावन हुआ था। शियाली के देवता ने बचे हुए मनुष्यों और पशुपक्षियों को एक विशाल नाव में बैठा कर उनकी रक्षा की। इसी कारण से शियाली के प्रधान देवता को तोनि अप्पार कहा जाता है। (तोनि=नाव)।

कुंभकोणम् का महाम्हम उत्सव इस पौराणिक जलप्लावन की याद का ही प्रतीक है। उत्सवों और पर्वों के परिच्छेद में इसका विस्तृत विवेचन किया जायगा।

महाप्लावन के तथ्य को प्रतीकात्मक रूप से सतत स्थायित्व प्रदान करने वाले अन्य स्थान हैं महाबलीपुरम् (जिला चिंगलपुट); वेदारण्यम्, कावेरी पूमपत्तनम् और कोडइकरै) (जिला तंजाउर); रामेश्वरम् और धनुषकोडी (जिला रामनाथपुरम्); तिरुचेंदुर (जिला तिरुनेलवेली) और कन्याकुमारी। इन स्थानों के समुद्री घाटों पर पूर्णिमा, शुक्ल द्वितीया और अन्य प्रवों के दिन स्नान करने वाले श्रद्धालु लोग महाप्लावन की स्मृति में विशिष्ट प्रार्थनाएं करते हैं। इस पूरे कर्मकांड का आयोजन पंडे-पुरोहितों की निगरानी में होता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्राचीन तमिल साहित्य में तमिलनाडु के दक्षिणी विभागों में भीषण समुद्री बाढ़ आने के उल्लेख पाये जाते हैं। इस महाप्लावन में पहरुली और कुमारी नामक दो महत्वपूर्ण नदियां और पांड्य राजाओं की पुरानी राजधानी कपटपुरम् पूर्णतः जलमग्न होकर समुद्र के गर्भ में लुप्त हो गयी थी।[1]

कन्याकुमारी जिले में व्यापकता से प्रचलित एक विश्वास के अनुसार सुचिंद्रम् के रथोत्सव के समय देवता का रथ यदि दलदल में धंस जाय, तो भारत के दक्षिणी सिरे के भूप्रदेश का सागर में विलीन हो जाना अवश्यंभावी है।

दक्षिण के इन प्रदेशों और उनके निवासियों के लिए सागर सदा से धरती और धरती के वासियों के खिलाफ अनवरत युद्ध में लगा रहने वाला प्राकृतिक वैरी रहा है। त्रिसंगम की कथाओं में तीन बार आये हुए महाप्लावनों का वर्णन पाया जाता है जिनके कारण पांड्यों को दो बार अपनी राजधानी बदलनी पड़ी थी। कहा जाता है कि तीसरी बार की राजधानी मदुरै का नामकरण समुद्र द्वारा कवलित पहली राजधानी के आधार पर ही किया गया था।

---

1. सन 1965 के आस-पास रामनाथपुरम् जिले में रामेश्वरम् और धनुष-कोडी के आस-पास का बहुत-सा भूप्रदेश समुद्राक्रांत हो गया था। सामुद्रिक विध्वंस से प्राचीन स्मारकों की रक्षा करने के प्रयत्न समय-समय पर होते रहते हैं। महाबलीपुरम् के सागरतटवर्ती मंदिर की बांधों द्वारा रक्षा की गयी है और तिरुचेंदुर के देवालय को भी रक्षात्मक भित्तियों द्वारा सुरक्षित किया गया है।

इसी प्रकार चेर शासकों की परंपरागत राजधानी क्विलोन का नाम भी कुमारी नदी के दक्षिणी तट पर स्थित उसी नाम के नगर पर आधारित माना जाता है जो समुद्र द्वारा उदरस्थ कर लिया गया था।

चोलों की राजधानी पुकर (कावेरीपुमपत्तनम्) का भी समुद्र ने विध्वंस कर दिया था जिसके कारण वहां के निवासियों को भीतरी इलाकों की सूखी और सुरक्षित बस्तियों में स्थानांतर करना पड़ा था। उस भयानक विध्वंस के बाद पुकर से होने वाले निष्क्रमण की कहानियां सार्थवाहों में अब भी प्रचलित हैं।

वर्षा

अच्छी फसल और लोगों की सुखसमृद्धि के लिए वर्षा अनिवार्य होती है। प्रकृति के इस तत्त्व का सभी कृषक समाजों में स्वागत किया जाता है। गांव के लोग तो आनेवाली वर्षा के स्वागत की या उसके अभाव या अपर्याप्तता के कारण पड़ने वाले कष्टों की चर्चा बारहों महीने करते रहते हैं। लोक-जीवन के बहुत से विश्वास वर्षा के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटते रहते हैं। यहां वर्षा संबंधी कुछ रूढ़ कल्पनाओं का उल्लेख विषयोचित्त होगा :

किसी सती का आदेश मिले, तो पर्जंय देवता को मूसलाधार बरसना ही पड़ता है। वर्षाऋतु में हर महीने तीन दिन सदाचारियों के लिए सौम्य, हितकारी वर्षा होती है और तीन दिन पापियों के लिए धुआंधार मेंह बरसता है। पर्याप्त और उपकारक वर्षा के लिए वरुण यज्ञ करना आवश्यक होता है। शिवालयों में शिव के वाहन नंदी को पानी में डुबो दिया जाय तो मनचाही वर्षा होने की खातिर जमा रहती है।

वर्षा के अधिपति देवराज इंद्र को प्रसन्न करने के लिए अनेक समारोहों का आयोजन किया जाता है। ईस्वी सन के आरंभकाल में कावेरीपूमपत्तनम् में वर्षा के आगमन के लिए इंद्रपर्व मनाया जाता था। मदुरै में मनाया जाने वाला चैत्रै-पर्व भी इंद्र की तुष्टि के लिए ही आयोजित होता था। इसी प्रकार वर्षा राग और मेघ राग कुरिंजी के गायन से भी वर्षा को आकर्षित किया जा सकता है ऐसा लोकमत रहा है।

तमिल ऋतुचक्र का आरंभ कारकालम् (वर्षा ऋतु) से ही होता है। इसकी अवधि आवनि और पुरात्तासी (श्रावण-भाद्रपद) के दो महीने मानी जाती है—

जब आकाश में बादल छाये रहते हैं। वर्षा से संबंधित अनेक रूढ़ियों और विश्वासों में से कुछ का उल्लेख प्रासंगिक होगा :

चेव्वाई (मंगल) यदि कन्या राशि में हो तो सूखा पड़ने की प्रबल संभावना रहती है। इस योग में नदी नाले तो क्या, समुद्र भी सूख सकता है। यदि किसी अतिथि के आगमन के साथ वर्षा आये तो इसे आगंतुक के सद्गुणों और सुलक्षणों का परिणाम माना जाता है। पत्तिनाप्पलइ नामक संगम ग्रंथ के अनुसार शुक्र का दक्षिण की ओर झुकाव भी सूखे की आगाही करता है।

तिरुनेलवेली जिले में ऐसा माना जाता है कि घोंघे यदि विशिष्ट वृक्षों पर चढ़ना आरंभ कर दें, तो वर्षा नहीं होगी। कन्याकुमारी जिले के लोगों का विश्वास है कि कौए और मुर्गे यदि पंख फैलाकर फुदकना शुरू कर दें, तो जोरों की वर्षा होगी। इसी जिले के समित्तोप्पु नामक गांव में वर्षा की टोह लेने के लिए चौपाल पर झंडा गाड़ा जाता है। झंडे का कुछ दिशाओं में फहराना शुभसूचक होता है जब कि कुछ में फहराना अनिष्ट का चिह्न माना जाता है। यदि झंडे के फहराने की दिशा दक्षिण की ओर हो, तो माना जाता है कि वर्षा अच्छी नहीं होगी पर मछली बहुतायत से प्राप्त होगी जब कि झंडे का उत्तर की ओर फहराना उत्तम वर्षा का सूचक माना जाता है।

ईशान मूलै (ईशान्य कोण) में बादलों की गड़गड़ाहट के साथ बिजली का चमकना मनचाही वर्षा का चिह्न माना जाता है। इसी प्रकार चींटियां यदि अनाज के बोरों पर चढ़ने लगें, तो उसे भी विपुल वर्षा का लक्षण माना जाता है।

अग्नि कोण (श्रीलंका) और वायव्य (कोइम्बतूर) की ओर एक साथ दामिनी दमके तो मदुरै प्रदेश में उत्तम वर्षा की आशा की जा सकती है। यह चिह्न दिखाई देते ही मदुरै के ग्रामीण भेड़-बकरियों को बाड़ों में बंद कर देते हैं।

सन 1963 में मदुरै नगर के बाहर वइगै नदी के किनारे पर बनी हुई हाथी की पत्थर की प्रतिमा का मुख घुमाकर दूसरी दिशा में कर दिया गया था। वहां से कोई महत्वपूर्ण जुलूस निकलनेवाला था जिसकी शोभा बढ़ाने के लिए हाथी को घुमाकर उसका मुख सड़क की ओर कर दिया गया था। बस, तब से उस प्रदेश में वर्षा ही नहीं हुई और लगातार सात वर्षों तक सूखा पड़ता रहा। मदुरै निवासियों ने इसका संबंध हाथी के मुख की दिशा फेर देने के साथ जोड़ा और उसे पूर्ववत् करने के लिए लोगों ने जोरदार मांग की। और आश्चर्य

की बात कि ऐसा होते ही जोरों की वर्षा हुई। ऐसा माना जाता था कि वह हाथी भगवान शिव को अत्यंत प्रिय था और किंवदंती थी कि मदुरै मंदिर के उस पत्थर के हाथी को भगवान भूतनाथ अपने हाथों से गन्ना खिलाया करते थे!

मेघगर्जना और बिजली की कड़क के साथ जोरों की वर्षा होने पर तमिलनाडु के कथलिक प्रकृति की भीषणता से त्राण पाने के लिए संत बार्बरा की प्रार्थना करते हैं।

पझियारों द्वारा गाया जानेवाला वर्षा-स्तोत्र—

कुडि कुम्मारनुकु
सीक्कु संकटम् वरम-एंकलैक
कोण्डु पोरुत्तुक पेय्यानम्
नल्ल मड़ै पेय्यानम्
मन्न पोट्टप पोन्न विलैयानम्

अर्थ

सूखे के कारण होने वाले रोगों से
आदमी या मवेशी, किसी को दुख न पहुंचे
हे इंद्र, हमारी रक्षा करो
भारी वर्षा बरसाकर और
प्रचुर फसल उगा कर
हमारी प्रार्थनाओं का उत्तर दो।

परापूर्व से चली आनेवाली किसानों की वर्षा के लिए प्रार्थना—

वाकै मरतुप पुंजै
वट्टारक चोलप पुंजै
तंगम् वैलइयम् पुंजै
तरिसक किडक्कुताडि
कट्टै उड़तु पोट्टेन

कदलै पोडप पाठम् पारत्तेन
वन्त मडै पोकुतिल्ल
वरुणने उनातु सेयल

अर्थ

वाकै वृक्षों के पास की सूखी जमीन
और उसके पड़ोस की 'रागी' भूमि
जो हमेशा घनी फसल देती हैं
आज बिना जोती हुई पड़ी हैं।
एक बार हल भी चलाया था
मूंगफली बोने से पहले
मिट्टी की परीक्षा भी करवायी थी
कुछ बूंदाबांदी हुई थी
पर बरखा फिर गायब हो गयी।
इंद्र देवता !
यह तुम्हारा कैसा खिलवाड़ है !

नदियां

भारतवासियों की दृष्टि में नदियां सदा से लोकमाता रही हैं और उन्हें देवियां मान कर इस देश के लोग सदा उनकी पूजा-अर्चा करते रहे हैं। भारत के अन्य प्रदेशों की तरह तमिलनाडु में भी नगरों और महत्वपूर्ण गांवों का विकास नदियों के तट पर ही हुआ है। मृत्यु के बाद चिता की भस्म नदियों में ही बहायी जाती है। लोगों का दृढ़ विश्वास होता है कि ये पुण्यसलिलाएं उसे पावन पितृलोक तक पहुंचा देंगी।

तमिलनाडु की नदियों के संगम पर विकसित होनेवाले बंदरगाहों को बीते हुए युगों में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई थी। आज ये पत्तन तमिलनाडु के प्राचीन गौरव की खोज के लगे हुए पुरातत्त्वविदों के लिए अक्षय कोष सिद्ध हो रहे हैं। कावेरी के मुख पर कावेरीपूमपत्तनम्, वेलार के तट पर वसुवसमुद्रम्, गडिलम के किनारे कुड्डुलोर, पोनियार पर बसा पांडिचेरी, देव नदी के तट पर नागपत्तनम्

और ताम्रपर्णी के किनारे का कोरकै प्राचीन युग के पत्तनों (बंदरगाहों) के स्थान निर्धारण शास्त्र की अचूकता के उत्तम उदाहरण हैं।

इन नदियों को आपस में जोड़ देने वाले कई पर्व तमिलनाडु में प्रचलित हैं। तिरुवैयरु का सप्तस्थान समारोह इसी का उदाहरण है। इस समारोह में उस प्रदेश की सात नदियों के प्रतीक रूप सात देवियों की सामूहिक पूजा होती है।

संगम साहित्य में तमिलजनो की गंगा के प्रति भक्ति के अनेक उल्लेख बिखरे पड़े हैं। श्रद्धालु तमिलजन अनादिकाल से काशी यात्रा करते रहे हैं, प्रयाग के पवित्र त्रिवेणी संगम में स्नान करते रहे हैं और परिवार के सदस्यों की अस्थियों का गंगा में विसर्जन करते रहे हैं। गंगायात्रा से लौटते समय वे लोटों में भरकर पवित्र गंगाजल अपने साथ लाते हैं और उपयुक्त अवसरों पर उपयोग करने के लिए उसे बड़ी हिफाजत से मुहरबंद करके रखते हैं। धनी परिवारों में किसी सदस्य के साठवें या अस्सीवें जन्मदिन पर उसका अभिषेक करने के लिए गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी आदि भारत की सभी पवित्र नदियों का जल एकत्रित किया जाता है। तेवरम् में कावेरी को गंगा का पर्याय मानकर उसे दक्षिण गंगा कहा गया है। किसी कारण से जो लोग गंगास्नान नहीं कर पाते, उन्हें दक्षिण गंगा कावेरी में स्नान करने से भी उतने ही पुण्य की प्राप्ति हो जाती है। पेरुम पनरुंप पदैं, पदुरैक कांची और पुरमानुरु में गंगा विषयक जो गौरवोद्गार पाये जाते हैं वे निस्संदेह रूप से स्थापित कर देते हैं कि गंगा अनादि काल से आसेतुहिमाचल भारतवर्ष की राष्ट्रीय नदी और उसके निवासियों की माता रही है।

कावेरी का पौराणिक कथा साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। लड़कियों के लिए कावेरी नाम तमिलनाडु में बहुत लोकप्रिय रहा है। पुराण कथा के अनुसार कावेरी का उद्गम महर्षि अगस्त्य के कमंडल में से माना जाता है। कहा जाता है कि अपने दक्षिण-निवास के दरमियान एक रोज सुबह महर्षि अगस्त्य स्नान के लिए बैठे। इतने में एक कौए ने उनका कमंडल लुढ़का दिया। उस अक्षय कमंडल में से बहनेवाला जलप्रवाह ही कावेरी कहलाया। कर्नाटक के कुर्ग प्रदेश में उसके उद्गम स्थान से लगाकर तमिलनाडु में बंगाल के उपसागर के साथ संगम होने तक कावेरी के किनारों पर स्नानादि के लिए असंख्य घाट बने हुए हैं। तमिलनाडु

का हर श्रद्धालु हिंदू जीवन में कम से कम एक बार कावेरी में डुबकी लगाना अपना शास्त्रविहित कर्त्तव्य समझता है।

अइप्पासि (आश्विन) महीने की प्रतिपदा के दिन तिरुचिरापल्ली जिले के तिरुपरैंतुरै नामक तीर्थस्थान में कावेरी स्नान करना अत्यंत पवित्र माना जाता है। यहां केवेरी की धारा का कावेरी और कोलरून नामक दो धाराओं में विभाजन होता है। आश्विन के तीसों दिन कावेरी के सभी घाट कावेरी स्नान करके पाप-प्रक्षालन करनेवाले यात्रियों की भीड़ से मधुमक्खी के छत्ते की तरह उमड़ते रहते हैं।

मायावरम् में एक लंगड़े भक्त की दंतकथा प्रचलित है जो बहुत कोशिश करने के बावजूद आश्विन के अंतिम दिन तक भी कावेरी-स्नान न कर पाने के कारण क्षुब्ध हो उठा था। अंत में भगवान ने उसकी निष्ठा से प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया। दैवी कृपा से सारी बाधाओं को पार करके वह पंगु दूसरे ही दिन (कार्तिक की प्रतिपदा के रोज) कावेरी स्नान कर पाया और आश्विन में स्नान करनेवालों के जितने ही पुण्य का भागी हुआ। तबसे मायावरम् में कार्तिक की प्रतिपदा के दिन का कावेरी-स्नान परम पावन हो उठा। उसे मुडवन मुझुक्कु (पंगुस्नान) कहा जाता है।

'आरु रेंडम कावेरी, अतन नडुवे तिरुरंगम्' उस प्रदेश में प्रचलित कावेरी-माहात्म्य की ओर कावेरी द्वारा परिवेष्टित श्रीरंगम द्वीप की महत्ता गानेवाले लोकगीत का ध्रुवपद है।

स्नान करते समय लोग नदी के जल में शंख, चांदी के सिक्के, चांदी-सोने की बनी हुई छोटी-छोटी मछलियां, नारियल, कान की बालियां, करुमनी (काले मनकों का मंगलसूत्र) आदि चढ़ावे के रूप में समर्पित करते हैं।

संक्षेप में कहें तो तमिलनाडु का इतिहास, पुराणकथाएं, परंपराएं, लोकगीत और जनमन की भावनाएं—या यों कहिये कि वहां का संपूर्ण लोकजीवन कावेरी के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है—उसके बहते पानी का अभिन्न अंग बन गया है। कावेरी सच्चे अर्थों में तमिलनाडु की सनातन संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक है—तमिलजनों की लोकमाता है। उसका बहता हुआ पावन जल नित्य-नूतन होकर भी चिरंतन है जिसमें स्नान करके तमिलजनों के पिता-पितामहों ने

संतोष पाया था और जिसमें अवगाहन करके उनके पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र भी आनंद और शुचिता प्राप्त करते रहेंगे।

देवी-देवता

तमिलनाडु के विभिन्न राजवंशों ने मंदिर-निर्माण और प्रतिमापूजन के क्षेत्र में गहरी रुचि प्रदर्शित की थी। यहां तक कि तमिल प्रदेश के लिए बेगाने होने वाले पल्लव नरेश भी तमिलनाडु के मंदिरों के स्थापत्य से और उनकी उपासना-पद्धतियों से बहुत प्रभावित हुए थे और उनकी अभिवृद्धि में इन राजाओं का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने कई नये देवालयों का निर्माण करवाया और पुरानों का जीर्णोद्धार करवाकर उनका विस्तार किया। उनके बाद में होनेवाले चोलवंश के राजा तो तमिलनाडु की संस्कृति पर अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं। इन शासकों ने वेदपाठी ब्राह्मणों के लिए 'चतुर्वेदी मंगलम्' नामक विशिष्ट आवास स्थान बनवाये। साथ ही उन्होंने तमिलनाडु के मंदिरों के वंशपरंपरागत शैव पुजारियों के अधिकारों और हितसंबंधों को भी सुरक्षित रखा। ये पुरोहित आद्यशैव या शिवाचारियर कहलाते थे। चोल राजाओं द्वारा उन्हें दान की गयी जागीरों के ताम्रपत्र आज भी उपलब्ध हैं।

संगम युग में देवोपासना तत्कालीन पंचप्रदेशों के पांच इष्ट देवताओं तक ही सीमित थी। पहाड़ों के आराध्य देवता थे भगवान मुरगन सुब्रह्मण्य (कार्तिकेय); समतल गोचर भूमियों के इष्टदेवता थे तिरुमल (विष्णु); सूखे प्रदेशों की अधिष्ठात्री थीं महाकाली दुर्गा; नदियों के तटवर्ती प्रदेशों के स्वामी थे इंद्र और समुद्र किनारे की वेलाभूमियों के उपास्य-देवता थे वरुण। संभावना ऐसी दिखाई देती है कि पल्लवों के आगमन तक उपासना पद्धति उतनी विस्तृत और जटिल नहीं हो पायी थी और आराध्य देवताओं की संख्या भी मर्यादित थी। पल्लवों के शासन काल से लगाकर विजयनगर साम्राज्य के पतन काल तक तमिलनाडु के हर मंदिर में—यहां तक कि गांवों के छोटे-छोटे मंदिरों में भी—आर्य-देवी-देवताओं की प्रतिष्ठापना बड़े जोरशोर से हुई जिसके परिणाम-स्वरूप द्रविड देवी-देवताओं को गौण स्थान प्राप्त होकर उन्हें पीछे हटना पड़ा। इस भावना को व्यक्त करने वाली एक कहावत भी तमिल में प्रचलित है—'ओंदवंत पिडारी ऊर पिडारियै विरट्टित्तु' (आश्रय के लिए आनेवाले देवताओं ने उंगली पकड़ते पहुंचा पकड़

लिया और गृहस्वामियों को ही निकाल बाहर किया।)

तमिलनाडु के सबसे लोकप्रिय देवता रहे हैं विनायक (गणेश), शिव और विष्णु; और उनकी देवियां। इनमें भी लंबोदर गणेशजी को सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। तमिलनाडु के गांव-गांव में किसी भी पेड़ की छाया में या नदी-तालाब के किनारे छोटा-मोटा गणेशमंदिर अवश्य पाया जाता है। गणेशमंदिर बनवाने का एक नया उत्साह आजकल फिर से प्रचलित हुआ है। कभी-कभी गांव की किसी जमीन का सरकार द्वारा अधिग्रहण टालने के लिए या किसी स्थान-विशेष पर सड़क के निर्माण को रोकने के लिए भी यह युक्ति आजमायी जाती है।

मातृशक्ति की देवी के रूप में उपासना करना तो द्रविड संस्कृति का व्यवच्छेदक लक्षण रहा है। यह परंपरा मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की संस्कृतियों से चली आ रही है। मातृशक्ति की पूजा अकसर महिषासुर मर्दिनी दुर्गा के रूप में की जाती है। देवी के कई अन्य रूप भी प्रचलित हैं। गांवों की रक्षा करनेवाली शक्ति के रूप में अकसर किसी देवी की ही कल्पना की जाती है। तमिलनाडु के कई जगप्रसिद्ध देवालय देवियों के ही मंदिर हैं। इनमें मुख्य हैं मायलापुर की कर्पगंबाल, कांचीपुरम् की कामाक्षी, चिदबरम् की शिवकामी, तिरुकदवुर की अभिरामी, तिरुविदैमरुधुर की मुकंबिकै, मदुरै की मीनाक्षी और तिरुनेलवेली की कांतिमति देवियां।

इनके अलावा धनसंपत्ति की अधिष्ठात्री लक्ष्मी भी लोगों की नजरों में बड़ी वांछनीय देवी रही हैं। उनके कृपाकटाक्ष की कामना भला कौन नहीं करता! कीमती चौखटे में जड़ा लक्ष्मी का चित्र प्रायः हर घर में पाया जाता है। लक्ष्मी की प्रतिमाएं या चित्र शादी-ब्याह के अवसरों पर भेंट के रूप में दिये जाते हैं और लड़कियों का नाम बड़े चाव से लक्ष्मी रखा जाता है। नये आवास-स्थानों में गृह प्रवेश करते समय गृहस्वामी लक्ष्मी नाम की कोई लड़की घर में अवश्य आये ऐसी व्यवस्था करता है ताकि उसे बारबार पुकार कर लक्ष्मी का नाम दोहराया जा सके। और कुछ नहीं तो किसी नौकरानी का नाम लक्ष्मी रख लिया जाता है। गृहप्रवेश के दिन लक्ष्मी नाम वाली किसी भी लड़की के गृहागमन में कोई बाधा आये, तो इसे बहुत बड़ा असगुन और भावी अमंगल की सूचना माना जाता है।

3 धार्मिक विश्वास, मंत्रतंत्र और जादूटोना

कर्मकांड

जनसाधारण के लिए धर्म सभी जगह जीवन का मूलाधार होता है। कर्मकांड के तानेबाने लोगों के जीवन में जन्म से लगाकर मृत्यु तक अनिवार्य रूप से बुने रहते हैं। उनका आचरण करने से लोगों को बड़ी सांत्वना प्राप्त होती है। अनुष्ठानों की जड़ में एक ओर जहां दैवी शक्तियों का भय रहता है, वहीं दूसरी ओर यह भावना भी काम करती रहती है कि सुख-समृद्धि की प्राप्ति के लिए परंपरागत कर्मकांड का दृढ़ता से पालन करना आवश्यक है।

धर्म के माध्यम से राष्ट्रीय संघटन

भारत का एक अविच्छिन्न राष्ट्र के रूप में विकास करने में सर्व समन्वयकारी हिंदू धर्म का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। हिंदू धर्मावलंबी भारत के कोने-कोने में फैले हुए हैं। उनके तीर्थस्थानों, चार धामों, द्वादश ज्योतिर्लिंगों और धार्मिक पर्वों में देशव्यापिनी एकसूत्रता पायी जाती है।

काशी-रामेश्वर का उल्लेख भारत भर में द्वंद्व समास के रूप में एक साथ किया जाता है, मानो ये दोनों एक ही नदी के आमने-सामने के किनारों पर बसी हुई जुड़वां नगरिया हों। हिंदूमात्र के लिए रामेश्वरम् की यात्रा के बिना काशीयात्रा अधूरी रह जाती है, और रामेश्वरम् के पड़ोस में रहनेवाले तमिलजनों के मन में काशीयात्रा की उतनी ही प्रबल उत्कंठा रहती है। उसके बिना तो मुक्ति नहीं होती।

चेट्टीनाड के चेट्टियों (श्रेष्ठियों) की ओर से वाराणसी के विश्वनाथ मंदिर में नियमित पूजा-अर्चा की व्यवस्था बहुत प्राचीन काल में की गयी थी जो आजतक

अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। सूर्योदय से पहले (प्रातः चार बजे), मध्याह्न में (दोपहर साढ़े ग्यारह बजे) और संध्या ढले (रात को नौ बजे) होनेवाले इन धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन बड़ी भव्यता से होता है। इसके अलावा काशी के मातेश्वरी अन्नपूर्ण और विशालाक्षी के देवालयों में और अन्य कई शिवालयों में भी तमिलजनों की ओर से नियमित पूजा-अर्चा होती है।

वाराणसी जानेवाला कोई भी यात्री काशी विश्वनाथ के मंदिर में तमिल परंपरा में होनेवाली संध्यारती और वृहत्-पूजा के आनंद में सहभागी होने से नहीं चूकता। प्रचंड आयोजन, भव्य भक्तिभावना और भड़कीली सजधज के साथ होनेवाले इन दैनिक उपासना-समारंभों को चूकना संभव ही नहीं। प्राचीन पूजनीय काशी नगरी के धार्मिक जीवन का यह अनुष्ठान एक महत्वपूर्ण, आकर्षक और अनिवार्य अंग बन गया है।

पूजा-अर्चा के इस विस्तृत आयोजन के निर्वाह के लिए तमिलनाडु के चेट्टियारों ने काशी के आसपास और उत्तर प्रदेश एवं बिहार में अन्य कई स्थानों पर विशाल धर्मादाय जायदादें निर्धारित कर दी थीं। गोधोलिया स्थित 'नाट्टु कोट्टाइ क्षेत्रम् भवन' काशी का एक प्रसिद्ध स्थान है। यहां से दूध, शहद, गुलाबजल, फल-फूल, सजावट की सामग्री और अन्य पूजा-द्रव्यों की बहंगियां दिन में दो बार बड़ी धूमधाम और नादस्वरम् (तमिल शहनाई) के बाजेगाजे के साथ जुलूस के रूप में भगवान विश्वनाथ के मंदिर में ले जायी जाती हैं। सारी महत्वपूर्ण पूजाओं में 'तेवरम्' स्तोत्रों का पाठ होता है। उपरोक्त समारोहयुक्त जुलूसों को 'भारत छोड़ो' आंदोलन के आतंकमय दिनों में भी नहीं रोका गया था यद्यपि उन दिनों काशी का अन्य सारा जीवन-व्यवहार ठप हो गया था।

तमिलनाडु के काशी यात्रियों की यात्रा का आरंभ रामेश्वरम् से होता है। भगवान काशीविश्वनाथ का अभिषेक करने के लिए यहां से कोटितीर्थ (रामेश्वर मंदिर के कुएं का पवित्र पानी) एकत्र किया जाता है। काशीयात्रा से लौटने पर काशी, प्रयाग के त्रिवेणी-संगम या हरद्वार से लाये हुए पवित्र गंगाजल से भगवान रामेश्वरम् का अभिषेक किया जाता है। उत्तर और दक्षिण की सांस्कृतिक इकाई को बुननेवाले ये तानेबाने अनादि काल से अविच्छिन्न रूप से बुने जा रहे हैं।

रामेश्वरम् से यात्रा का आरंभ करते समय गंगा में विसर्जन करने के लिए समुद्रतट की मुट्ठी दो मुट्ठी बालू भी ले जायी जाती है। पूर्वजों का अंतिम श्राद्ध

करके पिंडदान देने का कर्मकांड बिहार स्थित गया में संपन्न होता है।

तमिलनाडु की एक महत्वपूर्ण धार्मिक संस्था तिरुप्पनंदल मठ का प्रधान पीठ वाराणसी में ही है। परंपरा से इसके मठाधिपति के रूप में विद्वत्ता और धार्मिकता के लिए प्रसिद्ध किसी दिगंतख्याति वाले महात्मा की नियुक्ति होती है। मठ की एक शाखा तंजाउर जिले के तिरुप्पनंदल नामक स्थान पर है। इस मठ के सोलहवीं शताब्दी में जन्म लेनेवाले कुमार कुरुपरार नामक संत ने वाराणसी में कई चमत्कार कर दिखाये थे ऐसी जनश्रुति है।

हिंदू धर्म के संघटक के रूप में शंकराचार्य का स्थान अद्वितीय है। भगवान आद्य शंकराचार्य ने भारत की चारों दिशाओं में मठों की स्थापना की थी। उत्तर में जोशीमठ (बदरिकाश्रम), पश्चिम में द्वारका, पूर्व में जगन्नाथपुरी और दक्षिण में शृंगेरी एवम कांचीपुरम् में मठों की स्थापना हुई थी। इनमें से कांचीपुरम् का प्रसिद्ध कामकोटि पीठ तमिलनाडु में है। इन मठों की अपनी निराली धर्ममूलक जनपरंपराएं हैं जिन्होंने भारत की एकता को सुदृढ़ बनाया है।

शंकराचार्य के कामकोटि मठ और वैष्णवों के नंगुनेरी मठ के अतिरिक्त तमिलनाडु में और भी कई मठ-आश्रम हैं। इनमें से धर्मपुरम्, तिरुव्वदुतुरै, तिरुप्पनंदल और मदुरै का आधीनम् मठ अधिक महत्वपूर्ण हैं।

दैनिक पूजा-अर्चा और सामूहिक उपासना के लिए तमिलनाडु के इन मठों ने वैशिष्ट्यपूर्ण अनुष्ठानों का विकास किया है। किसी मठाधिपाति के ग्रामप्रवेश समारोह को 'पत्तिन प्रवेशम्' कहा जाता है जो मठों के प्रधान केंद्रों में होने वाली सबसे आकर्षक और मनोरंजक प्रथा है। किमख्वाब से मढ़ी हुई पालकियों में मठाधिपति विराजमान रहते हैं। उनकी हर उंगली में हीरे-मानिक की अंगूठियां होती हैं। आने-जाने वाले लोग पालकी को साष्टांग प्रणिपात करते हैं। साथ में वाद्यवादकों और लोक कलाकारों का उतना ही सजाधजा बहुरंगी जुलूस चलता रहता है। अपनी सर्वश्रेष्ठ पोशाकों में सजे ग्रामवासी अपने-अपने दरवाजे पर 'पूर्णकुंभम्' (सुवासित जल से भरे हुए और नारियल एवं फलों से ढंके हुए चांदी के घड़े) लिए खड़े रहते हैं। पालकी जैसे ही किसी नागरिक के दरवाजे पर पहुंचती है, पूर्णकुंभम् के जल से मठाधीश के चरण धोये जाते हैं। फिर अपनी श्रद्धानुसार रुपये, स्वर्ण, फल-फूल आदि चढ़ावे के रूप में उन्हें अर्पित किये जाते हैं।

विविध लोककलाओं को प्रोत्साहन और लोककलाकारों को प्रश्रय दे कर तमिलनाडु के इन मठों ने अतीत में महत्वपूर्ण सामाजिक भूमिका निबाही थी और आज भी उस परंपरा का निर्वाह हो रहा है। कांचीपुरम् के कामकोटि पीठ के मठाधीश द्वारा आयोजित किसी सामयिक 'सदा' (विद्वज्जनों की सभा) में शरीक होना समय और शक्ति का पूरा-पूरा सदुपयोग सिद्ध हो सकता है।

ईसाइयों के अनुष्ठान

तमिलनाडु में विभिन्न धर्मों के अनुयायी परापूर्व से अत्यंत शांतिपूर्वक रहते आये हैं। हिंदू-दूकानदारों और व्यावसायिक प्रतिष्ठानों द्वारा अहिंदू कर्मचारियों की नियुक्ति एक अत्यंत साधारण सी बात है। इसी प्रकार अहिंदू व्यवसायियों के यहां हिंदुओं की नियुक्ति भी बड़ी संख्या में होती है।

यूरोपीय मिशनरियों के प्रयत्नों के कारण तमिलनाडु के निवासियों को, दूर-दूर के छोटे-मोटे स्थानों में भी, अत्यंत उदारमतवादी शिक्षा का लाभ मिल सका। जगत की घटनाओं को देखने के वातायन के रूप में अंग्रेजी भाषा के महत्व को भी तमिलजनों ने बहुत पहले से स्वीकार कर लिया था।

इन ईसाई मिशनरियों ने दूर-दूर के गावों में भी जनसाधारण के लिए उत्तम प्रकार की चिकित्सा की सेवाएं उपलब्ध की हैं। नागरकोइल का कथेराइन बूथ अस्पताल, नेय्यूर का लंदन मिशन अस्पताल, (ये दोनों कन्यकुमारी जिले में हैं), तिरुनेलवेली जिले का डोनावर फेलोशिप अस्पताल, रामनाथपुरम् जिले के तिरुपतुर का स्वीडिश मिशन अस्पाल, चिंगलपुट जिले में तिरुमनी का बेल्जियन कुष्ठरोग केंद्र, अपने ढंग की अत्यंत कार्यक्षम संस्थाएं हैं। इनमें और अन्य अनेक छोटे-मोटे मिशनरी अस्पतालों में ग्रामीणजनों का अत्याधुनिक उपकरणों और चिकित्सा-पद्धतियों द्वारा इलाज किया जाता है। इसका लाभ अत्यंत दुर्गम और बीहड़ प्रदेशों के निवासियों को भी मिलता है। इन सब में शीर्ष स्थान पर है वेल्लोर का क्रिश्चयन मिशन अस्पताल। चिकित्सा-प्रणाली, शल्य-चिकित्स, औषधीय शिक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है जिसका वह वस्तुतः अधिकारी है। इस संस्था में हजारों रोगियों की सविस्तार कैफियत दर्ज रहती है जो अनुसंधान में सहायक होती है।

ईसाई मिशनरियों ने तमिल भाषा, साहित्य और धार्मिक लोकाचारों का भी

गहन अध्ययन किया। योरप में प्रकाशित होने वाले बाइबिल के एशियाई भाषाओं के संस्करणों में सर्वप्रथम प्रकाशित होने वाला संस्करण तमिल में था। हिंदुओं में परापूर्व से चले आने वाले भक्ति स्तोत्रों की शैली में कई ईसाई प्रार्थना-संकलन भी तैयार किये गये। इस प्रकार भक्तिगीतों के साथ बाइबिल का तमिल अनुवाद उपलब्ध हो जाने पर तमिलनाडु के गिरजों में सार्वजनिक उपासना-आराधना तमिल में होने लगी। हिंदू मंदिरों में होने वाली उपासना-प्रार्थनाओं से यह प्रथा नितांत भिन्न रही। हिंदू धर्माचारों और उपासनाओं में उन दिनों संस्कृत का ही बोलबाला था। मंदिरों की पूजा-आर्चा में तमिल को उसका उचित अधिकार अभी कुछ दिन पहले तक नहीं मिल पाया था।

मसीहा के महान् संदेशवाहक संत थामस ने तमिलनाडु को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया था। मद्रास की जगप्रसिद्ध बेलाभूमि 'मरीना बीच' पर उन्होंने 'सान् थोम' नामक ईसाई मठ की स्थापना की। यहीं उनका प्राणोत्सर्ग हुआ और यहीं उनके अवशेषों की समाधि है। संत थामस के साथ जुड़ी हुई लोककथाएं आज भी ईसाइयों को पुलकित कर देती हैं।

मद्रास के आरमेनियन स्ट्रीट के गिरजे में हर मंगलवार की प्रार्थना में हिंदू भी बड़ी संख्या में सम्मिलित होते हैं। तंजाउर तट पर बेलनकन्नी के 'लेडी आफ हेल्थ' नामक गिरजे में भी उत्सवों के दिन हिंदू बड़ी संख्या में उपस्थित रहते हैं।

तमिलनाडु में अनेक ईसाइयों और मुसलमानों ने हिंदू मंदिरों के नाम संपत्ति धर्मादाय प्रदान की हुई है। कई योरोपीय सिविलियनों ने मदुरै की मीनाक्षी देवी को रात्नाभूषण और भवानी माता को पालकी का चढ़ावा चढ़ाया था। तिरुत्तनि के देवालय में किसी मुसलमानदाता मेहबूबखान के नाम से एक मंडप बना हुआ है और उनके नाम से शहनाई भी बजती है। मस्जिदों और गिरजों को संपत्ति प्रदान करने में हिंदू भी उतने ही उदार रहे हैं। यह स्वस्थ्य परंपरा अब भी चल रही है।

यद्यपि दक्षिणी तमिलनाडु में हिंदुओं का धर्मपरिवर्तन बड़ी सरगर्मी से हुआ था; पर उसने किसी प्रकार की कड़वाहट को जन्म नहीं दिया। धर्म-परिवर्तन के बाद भी अधिकांश हिंदू अपनी प्रथा-परंपराओं से चिपके रहे। शुक्लपक्ष की द्वितिया (चंद्रदर्शन) के रोज पत्ते के दोनों में लपेटकर इष्ट देवता को 'पडयल' नामक खाद्य सामग्रियां चढ़ाना इसी श्रेणी की एक प्रथा है। अमावस्या के बाद,

चांद के दिन जो भोजन होता है उसमें से यह चढ़ावा चढ़ाया जाता है। ईसाई लोग चढ़ावे के बाद पत्तों को बाहर नहीं फेंकते बल्कि घर के छप्पर की दरारों (एरावनम्) में छिपा देते हैं। पत्तों को छिपाकर नष्ट करने की इस प्रथा का जन्म शायद लोकनिंदा के भय के कारण हुआ होगा। हिंदू प्रथाओं का पालन करने के लिए पादरी लोग अपने अनुयायियों को लताड़ सुनाते होंगे जिसके डर से नये-नये धर्मांतरित लोग वह काम छिपकर करते होंगे।

हिंदू उपासना-पद्धतियां

सभी जातियों के श्रद्धालु लोग अपने-अपने घरेलू देवालयों या पूजागृहों में किसी न किसी प्रकार की पूजा-प्रार्थना अवश्य करते हैं। 'उदयावर पूजा' नाम के विस्तृत अनुष्ठान अपनी धार्मिक विधियों, कर्मकांड और ब्योरे के प्रति सूक्ष्म सावधानी के कारण प्रेक्षणीय होते हैं।

हर मंदिर में अनगिनत दीपक जलाकर की जानेवाली आरतियां अत्यंत कलापूर्ण होती हैं। ये मंदिर अतीत को वर्तमान के साथ जोड़ते हैं। यूनेस्को द्वारा करवाया गया श्रीरंगम् और रामेश्वरम् मंदिरों का जीर्णोद्धार स्थापत्य, मूर्तिकला और काष्ठशिल्प की इन अद्वितीय धरोहरों को सुरक्षित रखने के अखिल मानव-जातीय दायित्व की स्वीकृति है।

रथ खींचना

यह कायाकष्ट का एक विशिष्ट प्रकार है जिसे स्वेच्छा से सहन करने को कई लोग तैयार रहते हैं। एक छोटे से रथ को रस्सियों से बांधकर उसके हुक भक्त की पीठ में गड़ा दिये जाते हैं। भक्त इनकी सहायता से रथ को खींचता हुआ झुलसा देनेवाली धूप में अपनी पीड़ा से बेखबर होकर मीलों का चक्कर लगाता है और पूरा समय इष्ट देवता का नाम जपता रहता है। कभी-कभी वह जीभ खींचकर काफी बाहर निकाल लेता है और उसे उसी स्थिति में रखने के लिए उसमें चांदी की किलें गाड़ लेता है। यह चांदी की शलाका भगवान मुरुगन के प्रिय शस्त्र भाले का प्रतीक मानी जाती है।

रास्ते भर प्रेक्षकगण उस पर ठंडा पानी, गुलाबजल और चंदन छिड़कते रहते हैं ताकि जलती हुई धूप की पीड़ा कुछ कम हो सके। धरना देनेवाले तांत्रिकों या

मुंड़चिरे फकीरों का-सा यह कांड श्रद्धालु भक्त की उत्कट धर्मश्रद्धा का परिचायक माना जाता है जो उसे घर में बैठकर अधिक पार्थिव, अधिक संयत और अप्रदर्शनात्मक ढंग से उपासना करनेवाले भक्तों से कुछ निराली श्रेणी में ला बैठता है। इस कष्टप्रद, लंबी पदयात्रा के बाद, अनुष्ठान की पूर्णाहुति के रूप में, जलते हुए अंगारों पर चलने की कृच्छ्साधना की जाती है। जलती हुई धूप में भुना हुआ भक्त जिसकी जीभ में गड़ी हुई कील यंत्रणा देती रहती है, पीठ में गड़े हुए अंकुशों के गिर्द मांस के लोथड़े लटकते रहते हैं और जिसका अंग-अंग विश्रांति की कामना करता है, अब उन दग्ध कर देनेवाले अंगारों को फूलों की सेज समझकर उन पर से चलता चला जाता है। इसके बाद रथ में रखे हुए दूध, फल-फूल, चंदन, पवित्र भस्म आदि पूजा द्रव्य देवता पर चढ़ाये जाते हैं। भक्त जीवन की सार्थकता अनुभव करता हुआ, भक्तिविभोर भाव से हाथ जोड़े देवता की प्रतिमा के सामने खड़ा रहता है। इस समय उसकी मनस्थिति साधना और संतोष के किसी अलौकिक सोपान पर होती है जहां शारीरिक कष्ट उसे स्पर्श ही नहीं कर सकते और जहां दिव्यता के मूलस्रोत से उसका साक्षात्कार होता रहता है।

कायाकष्ट के एक अन्य प्रकार में भक्त हाथपांव में कीलें गड़ा हुइ खड़ावें पहनकर पशु की तरह चौपाये होकर चलते हैं। इन सारी यंत्रणाओं के बावजूद इन्हें पीड़ा का अनुभव बिलकुल नहीं होता। इन कठोर अनुष्ठानों की पात्रता प्राप्त करने के लिए साधकों को एक महीने तक निराहार उपवास करने जैसी अनेक कड़ी अग्नि-परीक्षाओं में से गुजरना पड़ता है।

पालकुडम्

यह एक कर्मकांड प्रधान आचार विधि है जिसमें देवता पर अभिषेक करने के लिए दूध का घड़ा सिर पर रखकर भक्त लंबी पदयात्रायें करते हैं। यह अनुष्ठान अकसर स्त्रियों द्वारा किया जाता है। ताजा दूध के घड़े सिर पर रखकर साधिकायें लंबी यात्राएं करती हैं। भक्ति के आवेश में सिर पर रखे हुए घड़े के अस्तित्व से वे बिलकुल बेखबर हो उठती हैं—यहां तक कि उसे हाथ से साधने का भी वे कोई प्रयत्न नहीं करतीं। भक्तिविभोर होकर वे कभी-कभी दौड़ने-भागने भी लगती हैं। पर आश्चर्य की बात है कि देवता के अभिषेक के लिए लाया जानेवाला

दुग्धकलश न तो उनके सिर पर से गिरता है, न उसमें से दूध की एक बूंद ही छलकती है।

संतानकुडम्

यह पालकुडम् से मिलती-जुलती विधि है। फर्क सिर्फ इतना है कि इसमें दूध भरे कलश के स्थान पर घिसे हुए चंदन का पात्र सिर पर रखकर ले जाया जाता है। ये सारे अनुष्ठान या तो वैयक्तिक तौर पर आचरित होते हैं या सामूहिक रूप में। अकसर सगे-संबंधियों और इष्ट-मित्रों के समूह में मिलकर ही उनका आचरण होता है। हर संघ के साथ भक्तों के उपरांत पंडे-पुरोहितों और वाद्यवादकों का मजमा भी रहता है।

श्रीफल समर्पण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तमिलनाडु में गणेश-पूजा का प्रचलन बहुत अधिक है। कोई संकल्प करते समय, किसी शुभ-कार्य का आरंभ करते समय विघ्नों का निवारण करने के लिए और किसी मनोकामना के पूर्ण हो जाने पर देवता के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए गणेश जी की ही पूजा की जाती है। गणेश-पूजा की सबसे लोकप्रिय विधि है उनके सामने नारियल फोड़ना। अकसर एक ही चोट में नारियल के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। इसे मनुष्य के भीतर रहने वाले अमंगल और उसकी आध्यात्मिक मुक्ति मे बाधा पहुंचानेवाले विविध अवांछनीय तत्त्वों के विनाश का प्रतीक माना जाता है। इसके बाद मीठे चावल के लड्डुओं का, जिन्हें मोदकम् या कोझुक्कट्टइ कहा जाता है, गणेश जी को भोग लगाया जाता है और वह प्रसाद देवता के समक्ष ही बच्चों को बांट दिया जाता है।

महान आध्यात्मिक विभूतियों की पूजा

महापुरुषों या मुक्तात्माओं के जन्मस्थान या कार्यक्षेत्र होने के कारण पवित्र हो उठनेवाले स्थानों का बड़ा आदर किया जाता है। इन स्थानों पर उन महात्माओं की याद में कोई मंदिर, समाधि या स्तूप बनवा दिया जाता है। कावेरी तट पर करूर के पास नेरूर नामक गांव में महात्मा सदाशिव ब्रह्मेंद्र ने जिसके नीचे

नश्वर देह का त्याग किया था वह वृक्ष संत अप्पार का जन्म-स्थान होने वाला दक्षिण आर्कट जिले का तिरुवमुर नामक ग्राम, भगवान रमण महर्षि का जन्मस्थान तिरुचुझैल और उनकी कर्मभूमि तिरुवन्नमलै; श्री रामानुज का जन्म ग्राम श्री पेरुंबुदुर आदि स्थान इसी के उदाहरण हैं।

संतों और मुनियों की याद को चिरस्थायी करने के लिए भी स्मारक बनवाये जाते हैं। उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए बच्चों के नाम मुनियन्, मुनुस्वामी या मुनियांदी रखे जाते हैं।

महान् विद्वानों और कवियों को भी स्मारकों द्वारा गौरवांवित किया जाता है। तिरुवल्लुवर की स्मृति को मायलापुर के सीमांत में स्थित एक छोटे से मंदिर द्वारा चिरंतन कर दिया गया है। महाकवि कंबन की याद में नत्तरसंकोट्टाइ में समाधि बनवायी गयी है। बच्चों का विद्यारंभ कराने से पहले, उनकी शैक्षणिक सफलता को सुनिश्चित बनाने के हेतु से, इस स्मारक के इर्द-गिर्द की मिट्टी से उनके माथे पर तिलक लगाया जाता है।

पूर्वज पूजा

प्रेतात्माओं के वार्षिक श्राद्धदिनों को मनाना और पूर्वजों के श्राद्ध-स्थानों के प्रति आदर-भाव व्यक्त करना हर परिवार अपना कर्तव्य समझता है।

यात्रा करते समय रास्ते में पड़ने वाले शैव और वैष्णव संतों या दार्शनिकों के जन्म-स्थानों और समाधि-स्थानों को भुलाया नहीं जाता। उनके प्रार्थना-स्तोत्रों में उल्लिखित हर मंदिर-देवालय की यात्रा करना श्रद्धालु लोग अपना परम कर्तव्य समझते हैं फिर चाहे वे समुद्रतट पर हों चाहे किसी द्वीप में, दुर्गम पहाड़ों में हों या बीहड़ अरण्यों में। तमिल भक्तिकाव्य और पुराण-कथाओं में गौरवमय उल्लेख होनेवाले ये मंदिर केरल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश में ही नहीं, श्रीलंका और नेपाल तक बिखरे हुए हैं। महात्माओं के चरित्र-कथन में तो तमिल लोक-साहित्य, उसकी मुख्य धारा के स्थानीय होने के बावजूद, सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि विश्वजनीन रहा है। 'तेन्नडुडैय शिवने पोट्ट्री—एन्नट्टरक्कुम इरैव पोट्ट्री।'

आयुध पूजा

सितंबर-अक्तूबर में पड़ने वाले नवरात्रि के अंतिम दिन (दशहरे के रोज) हिसाब की बहियों, कलम-दवात आदि लेखन-साहित्य, अपने-अपने व्यवसाय के हथियार-औजार, कल-पुर्जे की चीजें, जैसे मोटर गाड़ियां, कारखाने की मशीनें, टाइपराइटर इत्यादि और हल आदि खेती के उपकरणों की पूजा की जाती है। इसे सरस्वती पूजा अथवा कलैमगल कहते हैं। उपरोक्त सब वस्तुओं को चंदन-चर्चित करके फूलों से सजाया जाता है और कपूर एवं धूपबत्तियां जलाकर प्रार्थना की जाती है।

भूत-प्रेत, पिशाच-दानव पूजा

ग्रामीण लोग पीड़ा-बाधा से बचने के लिए भूत-पिशाच आदि आसुरी तत्त्वों की भी पूजा करते हैं। इन योनियों के मुखिया समझे जानेवाले देवताओं को भी संतुष्ट रखा जाता है ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनकी प्रजाओं पर उनका प्रभाव डाला जा सके। हत्या या दुर्घटना के कारण हिंसात्मक या अस्वाभाविक मृत्यु हो जाय, तो मनुष्य प्रेतयोनि को प्राप्त हो सकता है। आत्मा की यह अशरीरी अवस्था अनिष्टकारक हो सकती है। ऐसा माना जाता है कि प्रेतात्माएं वृक्षों पर निवास करती हैं और इधर-उधर घूमती भी रहती हैं। किसी देवी के मंदिर के पास कोई मकान बनवाया जाय, तो उसका कुछ हिस्सा जानबूझ कर अधबना छोड़ दिया जाता है ताकि प्रेतात्माएं उसका गलियारे के रूप में उपयोग कर सकें। कभी-कभी ऐसा भी माना जाता है कि ये प्रेतात्माएं किसी मनुष्य के, विशेष तौर पर किशोरावस्था की क्वांरी कन्याओं के शरीर में प्रविष्ट हो जाती हैं। इस हालत मे भूतग्रस्त पुरुष या स्त्री जो भी कुछ हरकत करे, उसे दानवीय खुराफात के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

कुछ विशिष्ट प्रकार की पिशाच-बाधाएं मवेशियों की मृत्यु का कारण बनती हैं। उनके उपशमन के लिए परंपराग विश्वास यह है कि रक्तबलि दी जाय। अकसर पशुओं की बलि देकर इसकी तुष्टि कर ली जाती है।

भूत-प्रेत, पिशाच-दानव इत्यादि तत्त्वों के पूजास्थानों को पेय-कोइल कहा जाता है। ये पिशाचमंदिर अकसर क्षुद्र कोटि की स्तूपाकार रचनाएं होती हैं।

अकसर वे किसी विशाल वृक्ष की छाया में बनी हुई टूटी-फूटी कब्र या मिट्टी के ढूह से अधिक कुछ नहीं होतीं। यह वृक्ष उन प्रेतात्माओं का निवास-स्थान माना जाता है।

इन पूजा-स्थानों में भावावेश या मानसिक उत्तेजना से आक्रांत होकर पिशाच नृत्य कर सकने वाला कोई भी व्यक्ति पुरोहित की भूमिका अदा कर सकता है। पिशाच-नृत्य करने वाला व्यक्ति किसी देवता की भांति पूजा जाता है और उसके द्वारा प्रसाद के रूप में दी गयी भभूत आदि वस्तुओं को लोग बड़े भक्ति-भावपूर्वक और भय प्रेरित औपचारिकता के साथ ग्रहण करते हैं।

गुरुक्कल पूजन

गुरुक्कल, शिवाचार्य, आदिशैव और ओदुवर अभिजात तमिल साहित्य में उल्लिखित पुजारी-पुरोहितों के विविध वर्ग हैं। मंदिरों के ये परंपरागत पुरोहित पूजा-अर्चा के विधि-अनुष्ठानों में पारंगत और कला एवं साहित्य के जानकार उच्चकोटि के होते हैं। उनके विशेषाधिकार और कर्तव्य वंशपरंपरागत होते हैं। उन्हें पूजा-अर्चा करते समय दिन में तीन बार देवता की प्रतिमा को छूने का असामान्य अधिकार (मुप्पोदम तिरुमेनि तींदुवार) प्राप्त था।

योद्धाओं और शूरवीरों की पूजा

अपनी वीरता के कारण लोगों के हृदय में हमेशा के लिए स्थान बना लेने वाले ऐतिहासिक वीर पुरुषों और योद्धाओं की स्मृति समाधि-स्मारकों के अलावा तमिल के गाथा गीतों में भी, चिरस्थायी हो चुकी है। तमिलनाडु का सर्वाधिक लोक प्रचलित गाथागीत है गिंजी (दक्षिण आर्काट जिला) के देसिंगु राजन का आल्हा। इस राजा ने दो सुदृढ़ गढ़ बनवाये थे और सत्रहवीं शताब्दी में मुसलमानों के विरुद्ध लड़ते हुए वह मारा गया था। इसी प्रकार 'पंचाल कुरिचि वीरपांड्य कट्टबोम्मन कथाइगल' नामक गाथाकाव्य कट्टमबोम्मन नामक आद्य स्वातंत्र्य-सैनिक की स्मृति को जीवित रख रहा है।

पौराणिक वीरपुरुष और योद्धा भी आदर-सम्मान के पात्र माने जाते हैं। पांड्य राजाओं के मदुरै वीरन नामक एक सामंत की दुश्मन से तीव्र संघर्ष करके अत्यंत वीरतापूर्वक अनेक व्यक्तियों के प्राण बचाने के लिए ख्याति है। मदुरै के

इर्द-गिर्द के प्रदेश में उसका स्थान देवयोनि के किसी अंशावतार के समान माना जाता है। उसकी स्मृति में मनाये जाने वाले समारोहों में विल्लुपत्तु (प्रशस्ति गीतों) का गान किया जाता है।

वृक्षपूजन

धर्म का मूलतत्त्व जीवन के प्रति पूज्यभाव पर आधारित होता है। इसी कारण से आदिम समाजों में समूची प्राणि-सृष्टि के साथ-साथ वनस्पति-सृष्टि को भी दैवीशक्ति का अंश मानने की प्रवृत्ति पायी जाती है। वृक्ष-पूजा आदिम समाजों में सभी जगह प्रचलित थी। प्राचीन साहित्य में भी इसके उल्लेख पाये जाते हैं। पारी नामक तमिल राजा ने अपना रथ चमेली की एक बेल को दान कर दिया था। वह बिना किसी सहारे के हवा में फहरा रही थी जिसे देखकर राजा बहुत प्रभावित हुआ था।

सोमवती अमावस्या के दिन भक्तों के झुंड नितांत समपण के भाव से बड़ और पीपल के वृक्षों की और उनकी जड़ों के इर्द-गिर्द बने हुए नाग-स्मारकों की पूजा करते हुए देखे जा सकते हैं। भक्तगण इन पवित्र वृक्षों के 108 या इससे दुगुने-पांचगुने फेरे लगाते हैं और संतान-प्राप्ति के लिए या किसी शारीरिक व्याधि से छुटकारा प्राप्त करने के लिए वृक्षदेवता के आशीर्वाद की कामना करते हैं।

पीपल का वृक्ष सबसे अधिक पवित्र माना जाता है। ग्रामीण लोग उसकी लकड़ी का ईंधन के रूप में प्रयोग नहीं करते और हिंदू यथासंभव उसे कभी कटवाते नहीं। संपत्ति के नीलाम में किसी जमीन या जायदाद के साथ पीपल का वृक्ष खरीदना पड़ जाय, और उसे कटवाना ही पड़े, तो खरीदार उस लकड़ी को किसी मंदिर के भंडारे में दान कर देता है। पीपल की छोटी-छोटी टहनियों का प्रयोग यज्ञाग्नि को प्रज्ज्वलित करने के लिए किया जाता है।

पुराने जमाने में मंदिरों का निर्माण वृक्षों की छाया में ही किया जाता था। तमिल परंपरा आज भी हर मंदिर के साथ किसी स्थानीय वृक्ष को जोड़ती है जिसे 'स्थलवृक्षम्' कहा जाता है। इस प्रकार के वृक्षों में आम, नीम, बड़, पीपल, कदंब, जामुन और अन्य कई वृक्षों का समावेश होता है।

कई मंदिरों में पवित्र वृक्षों के सूखे हुए तनों और मुरझाई हुई डालियों को

स्मारक के रूप में सुरक्षित रखा जाता है। उदाहरणार्थ मायलापोर के तिरुवल्लुवर मंदिर में इलप्पै वृक्ष के एक विशाल सूखे हुए तने को तांबे की पन्नी से मढ़कर सुरक्षित रखा गया है। अन्य कई मंदिरों में प्राचीन वृक्षों के पवित्र अवशेषों को चांदी या अन्य किसी धातु की पन्नी चढ़ाकर सुरक्षित रखा गया है।

नारियल के वृक्ष को तेन्नमपिल्लइ (छोटा बालक) कहा जाता है और उसके साथ बर्ताव भी वैसा ही किया जाता है। नारियल के बिरवे का उन्मूलन करना अपनी संतान की हत्या के समान जघन्य कृत्य माना जाता है।

गोपूजन

संपूर्ण भारत की तरह तमिलनाडु में भी गाय को परम पवित्र और सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। गोपूजन निरपवाद रूप से हिंदू धर्म की आधार शिला है। शुक्रवार के दिन गोमाता को नहलाकर उसके भाल, रीढ़ और पूंछ पर कुंकुम का तिलक लगाया जाता है। गाय ब्याने वाली हो, तो विवाहिता स्त्रियां और विवाह योग्य कन्याएं भक्तिभाव से उसकी तीन बार प्रदक्षिणा करती हैं। इससे उन पर दांपत्य सुख की वर्षा होगी ऐसा माना जाता है। गाय को अत्यंत पुण्यशील और दैवी प्राणी माना जाता है।

सर्पपूजा

सांप या नाग भी पूजा के योग्य प्राणी माना जाता है। सांप को मारने वाले का अनिष्ट होता है ऐसी मान्यता सब जगह पायी जाती है। साथ ही लोगों को इस बात का भी दृढ़ विश्वास होता है कि छेड़ा न जाय तो सांप कभी किसी को हानि नही पहुंचाता।

पीपल की छाया में बनाये जाने वाले नाग-स्मारकों का उल्लेख पहले हो चुका है। सर्पो के निवासस्थान बांबियों की स्त्रियों और बालकों द्वारा पूजा की जाती है। उनके बिलों में दूध उंडेला जाता है और छोटे-छोटे अंडों को तोड़ कर भीतर डाला जाता है। ये चढ़ावे गर्भधारण में सहायक होते हैं और गर्भस्राव या समय पूर्व प्रसूति को रोकते हैं ऐसा माना जाता है। मनोरोग चिकित्सकों का कहना है कि नीम के साथ जुड़े हुए पीपल के वृक्ष के फेरे लगाना बांझ स्त्रियों के वंध्यत्व की चिकित्सा में ओषधीय दृष्टि से बहुत उपयोगी होता है।

नागपत्तनम्, नागरकाइल, नागमलै आदि स्थान-नाम नागों के प्रति आदर के सूचक हैं।

सगर्भावस्था में किसी स्त्री को नाग के दर्शन हों, या सपने में नाग दिखाई दे, तो संतान का नाम निरपवाद रूप से नाग पर आधारित रखा जाता है। नागस्वामी, नागार्जुन, नागप्पन, नागनथिनम्, नागलिंगम्, नागनाथन्, नागम्मल, नागलक्ष्मी आदि नाम इसी के उदाहरण हैं।

सांपों की बांबियों में दूध, फल-फूल चढ़ाने और कर्पूर-आरती आदि उपचारों से उनकी पूजा करने के अलावा अपने 'प्रियजनों की सुरक्षा के लिए' स्त्रियां निम्नोक्त प्रार्थना गीत भी गाती हैं :

पुट्रुल पुट्रुल नागरे
भूमि इडम कोंडयरे
मनिप्पिरंबु पोला
वाल अलगु नागरे
सिरु सुलकु पोला
पदमेडुक्कुम नागरे
कुंडु मुतुप पोला
कन्नलागु नागरे
पचारिसि पोला
पल्ललाकु नागरे
पल्लर मकन पल्लन
देवेंद्र कुदुंबन्
कोट्टु मन वेट्टि एड़ुतु
कुलतार के पोनन
इरु पुरामुम ओडुक्कि
वाड़ि विड़ुवै नागरे

अर्थ

हे नागराज,
बांबियों में रहने वाले
धरती के गर्भ के निवासी
तुम्हारी पूंछ बड़ी सुंदर है
मानो बेंत की लपलपाती हुई छड़ी
तुम्हारा उभरा हुआ फण
जैसे हवा झलने का पंखा
तुम्हारी छोटी-छोटी आंखें
जैसे आबदार मोती
तुम्हारे पैने दांत
मानो छड़े हुए चावल के दाने
जन्मजात श्रमिक
देवेंद्र कुदुंबन
कांधे पर कुदाल धरे
गया है तालाब पर, या बांध पर
खुदाई करने के लिए
उसकी रक्षा करना, स्वामी
उसे कोई हानि मत पहुंचाना
अपने इस विशाल फण को
नीचा ही रखिये
और उस गरीब की
राह निर्भय कीजिये
हे नागस्वामी !

प्राणीपूजा : बैल

तमिल प्रजा अधिकांश में कृषिजीवी होने के कारण बैलों को समृद्धि का प्रतीक मानती है। हल और गाड़ी दोनों बैलों द्वारा खींचे जाते हैं। उनका गोबर

उत्तम खाद का काम देता है। पुराणकथाओं में उसे शिव का वाहन (नंदी) माना गया है। किसानों द्वारा मंदिरों को बैलों की भेंट दी जाती है। इन मंदिर-नंदियों को बधिया नहीं किया जाता और उन पर कोई रोकटोक नहीं होती। वे स्वेच्छा से चाहे जहां घूमते रहते हैं, चाहे जिसके नाज के ढेर में मुंह मार सकते हैं और चाहे जो कुछ खाते रहते हैं। पहले इनमें अच्छी नस्ल के बैलों का उपयोग वंश-प्रजनन के लिए भी किया जाता था। बैलों की दौड़ में इन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है।

भैंस

नीलगिरि के टोडा आदिवासियों में भैंस की पूजा प्रचलित है। भैंसा यमराज का वाहन है। अतः इस भक्ति की जड़ में शायद यह भावना रही हो कि भैंस को संतुष्ट करने से पाताल लोक में उनके लिए आरामदेह स्थान सुरक्षित रहेगा। तमिल-साहित्य में भैंस को 'येरुमै' के रूप में गौरवांवित किया गया है। यह मरुदम् प्रदेश के जलग्रस्त भागों में पनपने वाली बढ़िया नस्ल की भैंस होती है जिसे समृद्धि का प्रतीक माना जाता है।

हाथी

गणनायक गणेशजी के साथ संबंध, विशाल देह और राजस स्वभाव के कारण हाथी का भारत के उपास्य-प्रतीकों और मंदिर-संघातों में सदा से वैशिष्ट्यपूर्ण स्थान रहा है। राजाओं द्वारा दिये जाने वाले हस्तिदान को लोग आनंद से स्वीकार करते थे यद्यपि उनके निर्वाह और पोषण में लगातार और भारी खर्च होता है। देवताओं के जुलूसों के अग्रभाग में हाथी ही रहते हैं और अभिषेक-जल के कुंभों का वहन भी वही करते हैं। इन जुलूसों में लोग प्रायः हाथी के प्रति पूज्यभाव व्यक्त करते देखे जाते हैं। बच्चे उसकी सूंड में नारियल, फल या छोटे-मोटे सिक्के थमाते हैं।

कौआ

परंपरानिष्ठ परिवारों में आज भी भोजन करने से पहले कौए को काकबलि देने का रिवाज पाया जाता है। कभी-कभी खाने के पदार्थों को किसी ऊंचे चबूतरे

पर रख कर कौओं को आवाजें दे-दे कर एकत्रित किया जाता है। कौओं को खिलाने से मृतात्माओं की तुष्टि होती है ऐसा माना जाता है। कौआ शनि का वाहन होने के कारण शनिवार के दिन कौओं को खिलाने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है।

गरुड़

विष्णु का वाहन होने के कारण गरुड भी पूजनीय माना जाता है। गरुड द्वारा उड़ान भरे जाने वाले स्थान को पवित्र माना जाता है। मंदिरों में होने वाले कुंभाभिषेकम् के समय कभी-कभी गरुड पक्षी अपनी दिव्य ऊंचाई पर मंदिर का चक्कर काटता हुआ दिखाई दे जाता है। अन्नामलइ विश्वविद्यालय के स्थान-निर्धारण का गरुड के साथ निकट संबंध रहा है। कहा जाता है कि एक रोज सुबह राजा सर अन्नामलइ चेट्टियार उस स्थान पर पहुंचे जहां आजकल विश्वविद्यालय-नगर बसा हुआ है। उन्होंने एक गरुड को उसके चहुंओर उड़ान लगाते हुए देखा। बस, तुरंत उस स्थान को विश्वविद्यालय के लिए चुन लिया गया।

स्थानीय देवता

तमिलनाडु की प्रजा अधिकांश में धर्म-परायण और धर्म-भीरु है। आर्य और द्रविड परंपरा के मुख्य देवी-देवताओं के अलावा अनेक छोटे-मोटे स्थानीय देवताओं को भी पूजा जाता है।

अय्यनार

यह स्थान-विशेष का संरक्षक ग्रामदेवता होता है। यह गांव की चोर-लुटेरों, महामारियों, प्रेतात्माओं और बाढ़-झंझावात आदि प्राकृतिक संकटों से रक्षा करता है। वह संतानहीनों को संतान दे सकता है, अपने भक्तों के असाध्य रोगों का उपचार कर सकता है और पूरे गांव को सुखी एवं समृद्ध रख सकता है।

हर गांव में अय्यनार का मंदिर अवश्य होता है। मंदिर काहे का, दस-पांच टूटे-फूटे ईट-पत्थरों की सहायता से खड़ी की हुई मिट्टी की मढैया होती है। प्रतिमा के स्थान पर अकसर कोई ऊबड़-खाबड़ पत्थर होता है या मिट्टी की अनगढ़ मूर्ति। बहुत से तालाबों के किनारों पर उनके रक्षक अय्यनार की मढ़ियां

पायी जाती हैं। अय्यनार को प्रसन्न करने की लोकप्रिय विधियां हैं पीठ में गड़े हुए अंकुशों द्वारा रथ खींचना, अग्नि पर नंगे पांवों चलना और चंदन कुडम्। इन सब का वर्णन पहले हो चुका है।

किसी वस्तु के खो जाने पर गांव के लोग अकसर अय्यनार की ही शरण में जाते हैं। उसे दो-चार पैसे चढ़ाने की मनौती मानते हैं और खोई हुई चीज मिल जाने की प्रार्थना करते हैं। पैसों को कपड़े में लपेट कर रख दिया जाता है और किसी प्रसिद्ध देवालय की 'हुंडी' (दानपात्र) में चढ़ा दिया जाता है। गांववालों के छोटे-मोटे झगड़ों-दावों का फैसला भी ग्रामदेवता के समक्ष होता है। भोले और धर्मभीरु होने के कारण लोगों को दृढ़ विश्वास होता है कि झूठ बोलने पर या सत्य को छिपाने पर देवता नाराज होकर अपराधी को कड़ी सजा देंगे।

अय्यनार के मंदिर में भक्तगण हाथ-पांव या आंख की आकृति की चांदी की प्रतिकृतियां भी चढ़ाते हैं। किसी व्रत या संकल्प की पूर्ति हो जाने पर लोग मंदिर के प्रांगण में मिट्टी की अश्व प्रतिमाएं बनवाते हैं। यह घुड़सवार फौज के प्रति विभूति पूजा व्यक्त करने का तरीका है क्योंकि अय्यनार की कल्पना किसी दैवी सेना की घुड़सवार फौज के दलपति के रूप में ही की गयी है।

सुदलैमद सामी

यह एक महत्वपूर्ण स्थानदेवता है। उसका मंदिर धान के खेतों के बीच में कुछ ऊंचे धरातल वाली जमीन पर बनाया जाता है। कोनार, मारवार, सांभवन् आदि शूद्र जातियां उसकी पूजा करती हैं। तिरुचिरापल्लो जिले के पुदुकुलम नामक ग्राम में कई पीढ़ियों पहले बनवाया गया मंदिर इस देवता के प्रति भक्तिभाव का विशिष्ट उदाहरण है। इसकी दीवारें ईंटों की बनी हुई हैं और मंदिर में सब मिलाकर ग्यारह देवियों और दस देवताओं की प्रतिमाएं हैं। मंदिर का प्रधान पूजास्थान है कोई सात-आठ फुट ऊंचा चतुष्कोण आकृति का स्तूप। सुदलैमदन या सठन प्रधान देवता है। उत्सवों के दिन भेड़-बकरों और मुर्गों की बलि दी जाती है। तिरुनेलवेली नगर में एक प्रसिद्ध सड़क का नाम है सुदलैमदन काइल।

तिरुनेलवेली जिले के मूलकरैप्पत्ति का परमशिव सामी मंदिर भी भक्ति का

प्रसिद्ध केंद्र है। गांव के हर परिवार में कम से कम एक लड़के का नाम इस देवता के नाम पर परमशिव रखा जाता है।

देवियों के मंदिर

कुड्डलोर के समीप का पचैअम्मन देवालय ग्रामीण और नागरिक भक्तिभावोंका सुंदर सम्मिश्रण प्रस्तुत करता है। ग्रामीणों की दृष्टि में पूज्य अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियां इस मंदिर में हैं; पर प्रधान प्रतिमा है तपस्विनी पार्वती की। तपस्यामग्न गिरिजा की देखभाल के लिए कई पौराणिक देवियां भी उपस्थित हैं। उनमें प्रमुख है कुरुत्ती की जिप्सी कुमारी कथल अम्मन जिसके साथ भगवान मुरुगन का विवाह होने की कथा तमिलनाडु में प्रचलित है।

सेल्लिअम्मन एक और देवी है जो अच्छी वर्षा और इच्छित संतति की दात्री मानी जाती है।

मदुरै की वकील गली के पास के चेल्लत्तम्मन मंदिर में वर्ष के एक विशिष्ट दिन प्रचुर मात्रा में चढ़ावा चढ़ाया जाता है। तीनेक वर्ष की गाभिन काली भेड़ को बरछों से बींध कर मंदिर में लाया जाता है और देवी के सामने उसकी बलि दी जाती है। पुरोहित विविध प्रकार की धार्मिक विधियां करता है और चावल और साग-सब्जी से भरे दौने आकाश की तरफ उछालता है ताकि गगनमंडल के निवासी उनका उपभोग कर सकें। उस दिन अविवाहिता, सद्य-विवाहिता और गर्भवती स्त्रियों का मंदिर के मुहल्ले में प्रवेश करना निषिद्ध माना जाता है। इसकी चेतावनी उन्हें पहले से दे दी जाती है।

कोइंबतूर और सेलम जिलों की हरिजन बस्तियों में वीरमति देवी के मंदिर पाये जाते हैं। ये मंदिर पति की मृत्यु के बाद सती हो जाने वाली स्त्रियों की स्मृति में बनवाये जाते हैं। 'वीरमति' शब्द 'वीरम् पत्नी' शब्द का अपभ्रष्ट रूप है जिसका अर्थ होता है 'साहसी और सच्चरित्र स्त्री'।

अंगलेश्वरी

अंगलेश्वरी अम्मन गहरे भक्तिभाव से पूजित एक और लोकप्रिय देवी हैं। उनकी दैनिक पूजा शैव ओदुवरों द्वारा की जाती है। इस देवी का महत्वपूर्ण उत्सव है मासिपदुक्कै अथवा महाशिवरात्रि। उस रोज रात भर देवी की पूजा-

अर्चा होती रहती है जिसके दर्शन करने के लिए लोग पूरी रात जागरण करते हैं।

भूतबाधा होने वाले और इंद्रियातीत प्रज्ञा वाले लोग भी सम्मान के पात्र माने जाते हैं। तमिल प्रतिभा का परिपाक माने जाने वाले 'शैव सिद्धांत दर्शन' के अनुसार इन लोगों के रूप में स्वयं भगवान शिव उपदेशक का रूप धारण करके मनुष्ययोनि में अवतीर्ण होते हैं।

वेयिलुहंत अम्मन

यह प्रकाश की देवी है। उसके मंदिर विरुधनगर और तिरुप्परनकुंदरम् में हैं। वर्षा को रोक कर और सूर्य प्रकाश को मुक्त करके पकी हुई फसल को जलग्रस्त होने से बचाने के लिए इस देवी की प्रार्थना की जाती है। वर्षा के लिए मरिअम्मन नामक अन्य देवी के प्रार्थना-स्तोत्र गाये जाते हैं।

मरिअम्मन

यह वर्षा और स्वास्थ्य की देवी है जो लोगों को चेचक, हैजा और अन्य छूत की बीमारियों से बचाती हैं। मरिअम्मन के प्रसिद्ध मंदिर समयपुरम् और कोन्नियुर अथवा कप्पनपत्ति (दोनों तिरुचिरापल्ली जिले में). कन्नथल और नात्तरसंकोट्टाई (रामनाड़ जिला), पेरियपलायम् (चिंगलपुट जिला), उप्पिलीपलायम् और पोल्लाची (कोइंबतोर जिला) में हैं। उनमें से कुछ शिल्लपदिकारम् की नायिका कन्नकी से संबंधित हैं। मरिअम्मन का परंपरागत नैवेद्य है उबाली हुई रागी। मरिअम्मन में आंखों की ज्योति की पुनर्स्थापना करने की और क्रुद्ध होने पर उसे पूर्णतः नष्ट कर देने की शक्ति मानी जाती हैं। नेत्ररोगी मनुष्य उसे चाँदी की आंखे अर्पण करते हैं। यह देवी सहस्राक्षिणी (आयरम् कन्नडायल) मानी जाती है। चेचक की महामारी फैलने पर अम्मन से सुरक्षा की भीख मांगी जाती है। (इस दृष्टि से वह उत्तर भारत की शीतलादेवी के समान है।) पुजारी-पुरोहित दूध, श्रीफल, साड़ी-चोली, चांदी के बरतन, गाय-भैंस और नकद रुपये के चढ़ावे का विधान करते हैं। शीघ्र ही गांवों की यह घरेलू देवी अत्यंत महत्वपूर्ण हो उठती है और उसकी तुष्टि के लिए विस्तृत कर्मकांड वाले यज्ञों-अनुष्ठानों का आयोजन किया जाता है।

चेचक या मोतीझरे का प्रकोप होने पर दवादारू करना परंपरा के विरुद्ध माना जाता है। इन रोगों को मरिअम्मन (शीतलादेवी) की मेहर माना जाता है और समय उनका एकमात्र इलाज माना जाता है। माता के प्रकोप के दरमियान उसे प्रसन्न करने के लिए उसके स्तुति-स्तोत्र गाये जाते हैं। यदि इस प्रकोप से किसी की मृत्यु हो जाय तो लिखित भाषा या बोलचाल में रोगी 'मर गया' ऐसा नहीं कहा जाता। सिर्फ यह घोषित कर दिया जाता है कि वह 'ठंडा हो गया'।

जलते हुए अंगारों पर चलने की प्रथा मरिअम्मन के मंदिरों में भी पायी जाती है। उसे 'पूक्कुलित्तल' (फूलों की सेज पर चलना) कहा जाता है। पवित्र भस्म से चर्चित लोग दस-बारह फुट की दूरी तक फैले हुए धगधगाते अंगारों पर से एक, तीन, पांच, सात या ग्यारह बार चलते चले जाते हैं और अंत में देवी के सामने साष्टांग प्रणिपात करते हैं। यह पहले कहा जा चुका है कि श्रद्धा की उत्कटता के कारण इसका उन पर कोई अनिष्ट परिणाम नहीं होता।

स्त्रियां इस प्रथा में भाग नहीं लेतीं। उनके लिए अग्निदिव्य का तरीका कुछ भिन्न प्रकार का होता है। वे आंचल से सिर को ढक लेती हैं। फिर बेलचे से उनके सिर पर दहकते हुए अंगारों का ढेर रख दिया जाता है। फिर भी न तो उनका आंचल जलता है और न उस भयानक ऊष्णता का उन पर कोई विपरीत परिणाम ही पड़ता है।

'अग्निच्चाट्टि' (दहकते अंगारे भरी अंगीठियां) सिर पर उठा कर देवी के मंदिर में जाना मरिअम्मा की उपासना का एक और प्रकार है। विवाहिता स्त्रियां अंगीठियों को सिर पर रखकर चलती हैं और क्वांरी कन्याएं हाथों की अंजिल में उठाकर। उत्सव से पहले, इक्कीस दिनों तक, पूजा में भाग लेने वाली स्त्रियां दिन में एक बार भोजन करती हैं, जमीन पर सोती हैं और भोग-विलास को टालती हैं। इस दरमियान यदि उन्हें तीव्र आध्यात्मिक अनुभूति हो, तो ही वे सिर पर अग्नि धारण करके मरिअम्मा के मंदिर तक जाने का अग्निदिव्य करती हैं। उत्सवकाल ग्रीष्म के ऐन बीच में आता है। इन दिनों भयानक गर्मी पड़ती है जिसे अग्नि-नक्षत्रम् कहते हैं। विरुधनगर इस अनुष्ठान के लिए प्रसिद्ध है।

सिर पर फूलों की टोकरी रखे हुए लंबी यात्राएं करके उन्हें मरिअम्मा के मंदिर में चढ़ाना उपासना का एक अन्य प्रकार है। यह यात्रा संघों में की जाती

है। साथ में वाद्य बजते रहते हैं। इसे 'पूत्तट्यूदुतल' कहा जाता है।

मंदिर के समारोह-काल का उद्‌घाटन सूचित करने के लिए एक ध्वज फहराया जाता है। उसी रोज 'मूलैप्परी कोट्टुदल' नामक अनुष्ठान संपन्न होता है। गांवों का हर परिवार छोटे-छोटे गमलों में मिट्टी भरकर उनमें धान, बाजरा या चना बो देता है। आठवें रोज, कोंपलें फूटते ही, गमलों को मंदिर में ले जाया जाता है। उसके बाद तीन दिन तक स्त्रियां मरिअम्मन की स्तुति में 'कुम्मइ' नामक समूहगीत गाती हुई गमलों के चहुंओर रास करती हैं। उत्सव की समाप्ति पर गमलों को निकटवर्ती नदी या तालाब में विसर्जित कर दिया जाता है।

इन दिनों पके हुए चावल में गुड़ मिलाकर उसके पिंड को दीपक की आकृति दी जाती है। फिर उसमें घी की बाती जलाकर उसे देवी के सामने रखा जाता है। उत्सव की समाप्ति पर उसे माता के प्रसाद के रूप में खाया जाता है। इस प्रथा का पालन करना हर स्त्री अपना आद्यकर्तव्य समझती है।

चेचक या हैजे की महामारियों को रोककर उनसे सबकी रक्षा करने वाली मरिअम्मा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए उत्सव के दरमियान लोग अपने शरीर पर काली और लाल बिंदियां (करुमपुल्ली, चेमपुल्ली) लगा लेते हैं।

इतना सब करके भी महामारी फैल ही जाय तो उसे माता का कहर मान लिया जाता है। कोइंबतोर की स्त्रियां चेचक के निवारण के लिए उप्पलिपलायम् के मरिअम्मन मंदिर में नारियल और गुड़ का चढ़ावा चढ़ाती हैं।

देवताओं की भोजन विषयक रुचि संबंधी विश्वास

हर मंदिर के स्थानीय जनमत का ऐसा विश्वास होता है कि विशिष्ट देवता को विशिष्ट प्रकार की खाद्यसामग्री अधिक पसंद होती है। बस, वही वहां का लोकप्रिय प्रसाद बन जाता है। तमिलनाडु के सभी प्रधान मंदिर भोग या प्रसाद की किसी-न-किसी विशिष्ट सामग्री के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। पलनी का पंचामृत, तिरुचेंदुर का पिट्टु, श्रीरंगम का संध्यारती के समय का दुग्धप्रसादम्, ट्रिप्लीकेन के पार्थसारथी मंदिर का तिरुक्कन्नमधु, आलवर त्रियुनगरी का वंकार दोसै (उड़द की दाल और नारियल मिश्रित चावल का सुनहरे रंग का चीला), उप्पिलिअप्पन काइल का अलोना चावल का पोंगल, कांचीपुरम् के श्री वरदराज पेरुमाल मंदिर की कांचीपुरम् इडली और चिदंबरम् के नटराज मंदिर की

तिरुवधिराज कालि प्रसाद की दूर-दूर तक प्रसिद्ध खाद्य-सामग्रियां रही हैं।

विश्वास और अंधविश्वास

जन्म से लगा कर मृत्यु तक जीवन के हर पहलू के साथ जुड़े हुए और दैनिक जीवन के हर छोटे-मोटे आचार को प्रभावित करने वाले विश्वासों और अंधविश्वासों की विविधता तो अंतहीन है। जनसाधारण के इन अंधविश्वासों में से अधिकांश को पढ़े-लिखे विद्वान लोग अकसर उपेक्षा की नजर से देखते हैं। परंतु कभी-कभी उनके मार्ग में ऐसी बाधाएं आ खड़ी होती हैं और ऐसी समस्याएं सामने आती हैं जिनका कोई संतोषजनक हल या स्पष्टीकरण अब तक मनुष्य की वैज्ञानिक बुद्धि को प्राप्त नहीं हो सका है। अंत में उन्हें भी उसी मध्ययुगीन मनोवृत्ति की शरण में जाना पड़ता हैं जो संसार भर में बहने वाले परिवर्तन के प्रवाहों से अब तक अछूती रह गयी है।

जन्म संबंधी विश्वास

इनका तो कहीं अंत नहीं। पहली बात तो यह कि बच्चे का जन्म न तो ठीक मध्याह्न के समय होना चाहिए न ठीक मध्यरात्रि के समय। इसी प्रकार चित्रा नक्षत्र में जन्म होना भी अशुभ माना जाता है क्योंकि यमराज के वफादार अनुचर चित्रगुप्त का जन्म इस नक्षत्र में हुआ था।

स्वाति नक्षत्र में जन्म होना किसी भी बालक के लिए अनिष्ट की आगाही करता है। मूल नक्षत्र में जन्म लेना लड़कों के लिए तो शुभ है, पर लड़की हुई तो उसके दुर्भाग्य का अंत नहीं। किसी व्यक्ति के पास गांव के सिवान में खेती के योग्य थोड़ी-बहुत जमीन हो, और उसके यहां यदि उत्तरादम नक्षत्र में पुत्रजन्म हो, तो उसे बहुत भाग्यवान माना जाता है। भरणी नक्षत्र में जन्म लेने वाला पूरी पृथ्वी पर शासन करेगा। केट्टइ नक्षत्र में पौत्रजन्म होने का समाचार सुनने के बजाय तो कोई भी पितामह मर जाना अधिक पसंद करेगा। चित्रा नक्षत्र में जन्म लेने वाली संतान के पिता को भीख मांगनी पड़ती है जबकि रोहिणी नक्षत्र में जन्म लेने वाले बालक अपने ताऊ-चाचाओं के लिए भारी होते हैं। अवित्तम नक्षत्र में जन्म लेने वाली कन्या यदि कूड़े में भी हाथ डाले तो उसका सोना हो जायगा, पर पूरादम नक्षत्र में संसार में पदार्पण करने वाली कन्या सोने

को हाथ लगाये तो वह भी मिट्टी हो जायगा। इस अशुभ नक्षत्र में जन्म लेने वाली लड़कियों पर तो जन्मजात अभिशाप बरसता है। कई कहावतों में भी इसकी अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरणार्थ : "वह अभागी यतीम ही नहीं; ऊपर से पूरादम में पैदा हुई है।"

लड़कियों को हमेशा विषम संख्या के क्रम में जन्म लेना चाहिए। अर्थात् उसे पहली, तीसरी या पांचवीं संतान होना चाहिए। चौथी संतान यदि कन्या हुई, तो वह घर का सत्यानाश कर देती है; पर पांचवीं संतान कन्या हुई तो वह घर को सोने से भर देगी। यही पांचवीं संतान यदि पुत्र बनकर आयी, तो वह सारी संपत्ति को उड़ा कर नष्ट कर देगा। छठी संतान यदि लड़की हो, तो वह समृद्धि या दारिद्र दोनों में से कुछ भी नहीं ला सकती है; परंतु सातवें स्थान पर जन्म लेनेवाली कन्या निश्चित रूप से दारिद्रय ही लेकर आयेगी। उसने तो यदि भीख मांगी तो भी उसका पेट नहीं भरेगा। आठवीं संतान के रूप में जन्म लेनेवाली कन्या की तो जहां-जहां दृष्टि पड़ेगी वह सब नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। (एट्टवतु पेन्न एट्टिप्पत इडम एल्लम कुट्टिचुवारु)। दसवीं संतान यदि कन्या हुई तब तो घर की संपत्ति सिर पर पांव रखकर भाग खड़ी होगी। आठ-आठ या दस-दस संतानें होनेवाले घरों के साथ तो संपत्ति का संबंध वैसे ही टूट जायगा। इन सब मान्यताओं के कारण ही, विवाह के समय वर-वधू के जन्मनक्षत्र, राशि आदि के अलावा यह भी पूछा जाता है कि उनके जन्म का स्थानक्रम कौन-सा है।

जुड़वां संतानों में यदि दोनों लड़के हुए तो उसे परिवार के लिए शुभ लक्षण माना जाता है और बड़ा आनंदोत्सव मनाया जाता है। पर दोनों लड़कियां हुईं, तो उसे अशुभ माना जाता है। इसी प्रकार जुड़वां बच्चों में एक लड़का और एक लड़की होना भी परिवार के लिए अनिष्ट का सूचक माना जाता है।

बच्चों संबंधी विश्वास

दुधमुंहे बच्चों को दर्पण नहीं दिखाना चाहिए। अन्यथा उनके गूंगे होने की संभावना रहती है। बच्चों की देखभाल करते समय किसी को दंतमंजन या दतौन नहीं करना चाहिए।

जब किसी बच्चे का पहला दांत टूटता है तो उसे संभालकर गोबर के पिंड में गाड़कर मकान के छप्पर पर रख दिया जाता है। गोबर उर्वरता का प्रतीक है;

अत: इससे इस बात का विश्वास हो जाता है कि दूध के दांत टूटने के बाद बच्चों के दांतों की पुनरुत्पत्ति शीघ्रता से होगी।

यदि ऐसी शंका हो कि किसी की बुरी नजर के कारण बच्चे को कोई बीमारी सता रही है, तो उस व्यक्ति के दोबारा घर में आने पर घर का कोई आदमी उसके पीछे-पीछे जाता है। फिर जहां उसके पांव पड़े हों, वहां से मुट्ठी भर मिट्टी उठाकर और उसे बच्चे के सिर पर से तीन बार दक्षिणाभिमुख वार कर, चूल्हे में झोंक देते हैं। इससे बुरी नजर का निवारण हो जाता है। यदि जन्म लेने के तुरंत बाद बच्चे को सांस लेने में कठिनाई हो, तो उसके कपाल को गरम सुई से दागा जाता है।

यदि पहली दो संताने मर गयी हों, तो तीसरी संतान की मृत्यु को टालने के लिए उसके चेहरे को किसी-न-किसी प्रकार विद्रूप कर दिया जाता है। प्राय: बायें नथुने को छेदकर उसमें सोने की बाली पहना दी जाती है। ये अंगच्छेदन बच्चे को विकृत या बदसूरत बना देने के हेतु से किया जाता है ताकि वह किसी की कुदृष्टि का लक्ष्य न बने। अपनी संतान को इस प्रकार की आपत्तियों से बचाने के लिए माता-पिता और भी कई उक्तियां आजमाते हैं जिनमें से एक यह है कि बच्चे को कोई निरर्थक या उपहासास्पद नाम दे दिया जाय। उदाहरणार्थ कुप्पुसामी (कूड़ामल), या कुप्पम्मल; पक्करी (फकीरचंद) या पिचै (भिखारीदास) इ.।

गर्भवती स्त्रियों संबंधी विधि निषेध

ऐसा माना जाता है कि गर्भवती स्त्री को फोटो नहीं खिचवाना चाहिए। गर्भिणियों की खानपान संबंधी और अन्य छोटी-मोटी इच्छाएं (गर्भ दोहद अथवा गर्भ लालसा) अकसर पूरी कर दी जाती हैं। ऐसा माना जाता है कि इन इच्छाओं को पूरा न करने पर गर्भस्थ बालक को कान की बीमारियां होने का खतरा रहता है।

गर्भवती स्त्री पर तेरइ (मेंढक) गिरे, तो उसे गर्भस्थ बालक के किसी रोग का सूचक माना जाता है। गर्भधारणा से लगाकर प्रसूति तक गर्भवती को सिलाई नहीं करनी चाहिए। सगर्भावस्था में यदि स्त्री को बिच्छू काटे, तो इससे गर्भस्थ बालक को जीवन भर के लिए बिच्छू के डंक से छुटकारा मिल जाता है।

भविष्य में कभी बिच्छू काटे भी तो उसे वृश्चिकदंश की कोई वेदना नहीं होती। स्त्री की सगर्भावस्था के दरमियान घर में चिड़िया घोंसला बनाये, या ततैया छत्ता बनाये, तो उसे सुलभ-प्रसूति का लक्षण माना जाता है।

पुनर्जन्म संबंधी विश्वास

यजमानों के गत जन्मों की कहानी बताने वाले और आनेवाले जन्मों की भविष्यवाणी करने वाले ज्योतिषी तमिल प्रजा के निचले तबकों में बहुत लोकप्रिय रहे हैं।

इष्टदेवता के समक्ष नारियल फाड़ना बीते हुए युगों में दी जानेवाली नर-बलि का प्रतीक या पर्याय माना जाता है। इसी प्रकार विविध अनुष्ठानों के प्रारंभ और अंत में जो हल्दी-चूना मिश्रित लाल पानी छिड़का जाता है उसे भी किसी युग में प्रचलित रुधिर-सिंचन का पर्याय मानना होगा। नरबलि और रक्त-सिंचन की विधियां बड़े प्राचीन काल से अमंगल की निवारक मानी जाती रही हैं। आज के युग में नारियल फोड़ना आदि के रूप में उन्हीं प्राचीन विधियों के अवशेष रह गये हैं।

यात्रा संबंधी विश्वास

पांव के तलवे में खुजलाहट होना निकट भविष्य में होने वाली यात्रा की पूर्व सूचना माना जाता है। किसी महत्वपूर्ण कार्य के लिए घर से बाहर निकलते समय आकाश में यदि गरुड़ चक्कर काट रहा हो, तो इसे अत्यंत शुभ शकुन माना जाता है। लोग किसी भी कार्य के लिए बाहर जाते समय उत्साहवर्धक शब्द सुनने को बहुत उत्सुक रहते हैं क्योंकि उन्हें कार्य-सिद्धि का कौल माना जाता है। किसी महत्वपूर्ण अभियान पर जाते समय पास-पड़ोस का कोई अनजान आदमी यदि यह कहता हुआ सुना जाय कि 'आज सुबह हमारी गाय ने बहुत अधिक दूध दिया', तो इसे अत्यंत शुभ लक्षण (विरिचि) माना जाता है।

यात्रा के आरंभ में फूल, जल से भरा कलश या सधवा स्त्री सामने पड़ें, तो कार्य की सफलता निश्चित समझी जाती है। इसी प्रकार आकाश में चक्कर काटता हुआ गरुड़ और दाहिनी ओर से बायीं ओर रास्ता काटने वाले कुत्ते या गिलहरी को भी कार्यसिद्धि में सहायक माना जाता है। गाय, तोता, मोर, मुरगा,

हिरन, भैंस या बाघ बायीं ओर से दाहिनी ओर चलकर रास्ता काटें तो उसे भी शुभ शकुन माना जाता है।

छाता, ध्वज, चंवर, फल, गन्ना, मांस, दही, शहद, गाय, बैल, हाथी, घोड़ा और गणिका यात्री के सामने से आते हुए दिखाई दें, तो उन्हें शुभ लक्षण माना जाता है। यात्रा के आरंभ में घंटानाद, तोप-बंदूक छूटने की आवाज, गधे का रेंकना, चील की चीख और वेदपाठ की ध्वनि को भी मंगल-सूचक माना जाता है।

कहीं जाने के लिए घर से बाहर निकलते समय यदि निम्नलिखित में से कोई अपशकुन हो, तो तुरंत लौटकर क्षण भर के लिए विश्राम करके और दो घूंट पानी पी कर फिर घर से निकलने की प्रथा है :

1. सांप, बिल्ली, विधवा स्त्री, बैरागी, एकाकी ब्राह्मण, नाई, या तेली सामने मिलने पर।
2. किसी के छींकने की या अन्य कोई अप्रिय आवाज सुनाई देने पर।
3. पांव फिसल जाने पर या अन्य किसी कारण से कदम लड़खड़ा जाने पर।
4. दरवाजे की चौखट या अन्य किसी वस्तु से सिर टकरा जाने पर।
5. किसी अपरिचित द्वारा कहे गये 'अभी मत जाओ' आदि शब्द कान में पड़ने पर।
6. अस्वाभाविक या असामान्य रूप से वर्षा की झड़ी लग जाने पर।

यात्रा के समय सामान में तेल और मैले-कुचैले कपड़े साथ नहीं लिए जाते। यात्रा-संबंधी और भी कई विधि निषेध हैं। उदाहरणार्थ पत्नी के मासिकधर्म के दौरान में लोग अकसर किसी महत्वपूर्ण यात्रा का आरंभ नहीं करते। इसी प्रकार दिशाशूल संबंधी भी विस्तृत नियम हैं जो सप्ताह के विशिष्ट वारों को विशिष्ट दिशाओं में यात्रा करने के लिए निषिद्ध घोषित करते हैं। मंगल और बुधवार को उत्तर दिशा में और बृहस्पतिवार को दक्षिण की ओर यात्रा का आरंभ नहीं करना चाहिए। सोम और शनिवार पूर्व की ओर और रविवार और शुक्रवार पश्चिम की ओर यात्रारंभ करने के लिए अशुभ मानते हैं। परंतु इनमें से प्रत्येक नियम में अपवाद हो सकता है और आपद्धर्म के रूप में दोपहर ढल जाने के बाद, देवता को दही का नैवेद्य चढ़ाकर निषिद्ध वार को निषिद्ध दिशा में भी यात्रा की जा सकती है। साधारण तौर पर तो इस नियम पर इतनी कड़ाई से अमल

होता है कि मद्रास से दक्षिण की ओर जानेवाली रेलगाड़ियों में बृहस्पतिवार के दिन भीड़ बिलकुल नहीं होती।

यात्रा के लिए दूसरा निषिद्ध समय है राहुकालम्। यह राहु के प्रभाववाला दिन का अशुभ काल होता है जिसकी अवधि अर्धयाम (डेढ़ घंटे) की होती है। सूर्योदय से लगाकर सूर्यास्त के बीच प्रति दिन डेढ़ घंटे के लिए आनेवाले इस कालखंड में किसी भी शुभ कार्य का आरंभ न करने का पूरे तमिलनाडु में एक अलिखित नियम-सा है। किस वार को राहुकालम् किस समय पड़ता है इसे याद रखने के लिए कुछ अर्थहीन पर सांकेतिक वाक्य गढ़ लिए गये हैं। उदाहरणार्थ 'सोम शर्माने शुद्धि-बुद्धि गंवाकर मंडप रचा।' इस वाक्य में 'सोम' सोमवार का, 'शर्मा' शनिवार का, 'शुद्धि' शुक्रवार का, 'बुद्धि' बुधवार का, 'गंवा कर' गुरुवार का, 'मंडप' मंगलवार का और 'रचा' रविवार का प्रतिनिधित्व करता है। सप्ताह के वारों में राहुकालम् इसी क्रम से सोमवार को सुबह साढ़े सात से नौ, शनिवार को नौ से साढ़े दस, शुक्रवार को साढ़े दस से बारह और इसी प्रकार प्रति दिन डेढ़ घंटे के हिसाब से रविवार को शाम को छह बजे समाप्त हो जाता है।

मदुरै के कुछ पर्वतीय कबीलों में वार के हिसाब से यात्रा का समय निश्चित रहता है। सोमवार को सूर्योदय से पहले, मंगल को दोपहर बाद, बुध को दिन ढलने के बाद, गुरुवार को सुबह के नाश्ते के बाद और शुक्रवार और शनिवार को सूर्योदय के बाद यात्रा करना यथासंभव टाला जाता है।

संख्या संबंधी विश्वास

संख्याओं के संबंध में अनेक विधि मान्यताएं प्रचलित हैं। एक की संख्या को लोग अकसर टालने का प्रयत्न करते हैं। उसके बदले किसी वृद्धिसूचक शब्द का प्रयोग किया जाता है। गांव के लोग धान नापते समय पहले नाप को 'बरकत' या 'सवाया' कहते हैं। कई स्थानों में पहले नाप या तोल के लिए 'एक' शब्द का प्रयोग न करते हुए किसी स्थानीय देवता का नाम लिया जाता है।

एक विश्वास ऐसा भी है कि किसी कार्य में यदि पहली बार सफलता न मिले तो फिर उसमें तीसरे प्रयत्न के बाद ही सफलता संभव होती है।

तीन को साधारणतः शुभ संख्या नहीं माना जाता। किसी भी कार्य के लिए

लोग तीन के समूह में कभी नहीं जाते। ऐसा माना जाता है कि तीन की संख्या के साथ किसी भी प्रकार का संबंध आने पर यात्रा का उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार 'सात' के बजाय 'छह अधिक एक' कहने की प्रथा है। आठ की संख्या तो बुरी नहीं, पर उसके उच्चारण की ध्वनि (एट्ट) को अशुभ माना जाता है। अत: नापने-तौलने वाले लोग आठवीं तौल या नाप को सिर्फ 'आठ' न कह कर 'आठवीं तौल' या 'आठवां नाप' कहते हैं।

दान धर्म के लिए विषम संख्याएं शुभ मानी जाती हैं। अत: कहीं चंदा आदि देना हो तो पहले अपनी हैसियत के अनुसार स्थूल मान से रकम निश्चित कर ली जाती है और फिर उसमें छोटी-सी रकम जोड़कर उसे विषम बना दिया जाता है। उदाहरणार्थ 101 रुपये, 1001 रुपये, 5005 रुपये, इत्यादि।

संख्याओं का आकर्षण और उनके शुभ-अशुभ होने की कल्पना सर्वव्यापी है। यहां तक कि बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग भी मनचाहा टेलीफोन नंबर या कार-रजिस्ट्रेशन नंबर प्राप्त करने के लिए महीनों तक राह देखना पसंद करते हैं।

सप्ताह के वारों संबंधी विश्वास

शुक्रवार के दिन विवाहिता कन्या मायके से विदा नहीं होती। यदि विवाह-संस्कार के दूसरे दिन शुक्रवार पड़ता हो, तो विदा की रस्म एक रोज के लिए टाल दी जाती है। शुक्रवार के दिन व्यापारी लोग लेनदेन का भुगतान नहीं करते। उस दिन तो भिखारियों को दो-चार पैसे देने का अपवाद छोड़कर रुपये की आदायगी का कोई भी व्यवहार नहीं किया जाता। शुक्रवार को जमीन-जायदाद का क्रय-विक्रय भी नहीं होता। मंगलवार के दिन कोई किसी शुभ कार्य का आरंभ करे, तो उस रोज उसे रोटी भी नसीब न होने का खतरा रहता है। इसके विपरीत बुधवार को किसी भी कार्यारंभ के लिये सर्वश्रेष्ठ दिन यहां तक कि 'स्वर्णकाल' माना जाता है। गुरुवार अतिथि-सत्कार के लिए अशुभ माना जाता है, जबकि रविवार के दिन किसी कार्यसिद्धि के लिए घर से निकलने वाले पर कुत्ते की तरह दर-दर भटकने की नौबत आ सकती है।

महीनों संबंधी विश्वास

तमिल वर्ष गणना के हिसाब से अनि और पांगुनि महीने गृहप्रवेश और ज्येष्ठ

संतान के विवाह के लिए अशुभ माने जाते हैं। आदि और मरगझी मास किसी भी विवाह के लिए निषिद्ध हैं।

मृत्यु संबंधी विश्वास

अमावस्या के रोज पुरानी बिमारियों वाले वृद्ध लोगों का रोग और भी बढ़ जाने की या उनकी मृत्यु हो जाने की संभावना रहती है। इस दिन मृत्यु की अधिकतम संख्या होने के कारण अमावस्या को अत्यंत 'भारी' दिन माना जाता है। एक सामान्य मान्यता ऐसी भी है कि लकवे के मरीज की मृत्यु पहला दौरा पड़ने के ठीक तीन दिन, तीन सप्ताह, तीन मास या तीन वर्ष बाद होती है। स्वप्न में देवता की रथयात्रा का या घर में चोरी होने का दृश्य दिखाई दे तो निकट भविष्य में किसी निकट स्वजन की मृत्यु की आशंका रहती है 'कुलिकै कालम्' कहे जाने वाले दिन के कुछ प्रहरों में अग्नि-संस्कार, दफन विधि आदि अशुभ विधियां संपन्न नहीं की जातीं।

दिशाओं संबंधी विश्वास

दफतरों और व्यापारी प्रतिष्ठानों में लिखने की मेज ईशान्य या नैऋत्य कोण में रखी जाती है। अन्य किसी दिशा में रखने पर दुश्मनों द्वारा लगातार सताये जाने की संभावना रहती है। इसी प्रकार कुएं भी आंगन के इन्हीं कोणों में खोदे जाते हैं। उत्तर की ओर सिर और दक्षिण की ओर पांव करके लोग कभी नहीं सोते क्योंकि मृत्यु के देवता की गति उत्तर-दक्षिण मानी जाती है। इसके अलावा दक्षिण दिशा यमराज का निवास-स्थान भी है। रिहायशी मकान किस दिशा की ओर अभिमुख हों, इस संबंध में विभिन्न मान्यताएं पायी जाती हैं। नटराज के मंदिर हमेशा दक्षिणाभिमुख बनाये जाते हैं। परंतु इस हालत में संहार के देवता नटराज की दृष्टि लगातार दक्षिण की ओर पड़ने के कारण उस तरफ के मुहल्लों के नष्ट होने की संभावना उठ खड़ी होगी। इसे टालने के लिए मंदिर की उस दिशा की चाहरदीवारी से सटाकर ऊंची दीवार या कुआं या किसी गौण देवता का छोटा-मोटा मंदिर बना दिया जाता है।

बागों में फलने वाला केले का पौधा किस दिशा में अंकुरित होता है, इस बात पर भी कई विश्वास आधारित हैं। कोंपलें यदि उत्तर दिशा की ओर फूटें तो उसे

भारी अनिष्ट की सूचना माना जाता है जब कि उनका अन्य दिशाओं की ओर फलना समृद्धि का सूचक है।

विवाह संबंधी विश्वास

तंजाउर जिले में ऐसा विश्वास प्रचलित है कि तिरुमनचेरी नगर के कल्याण-सुंदर देवता की मूर्ति पर अभिषेक किया जाय तो विवाह संबंधी बातचीत की गति को त्वरित किया जा सकता है। इतना ही नहीं, इस देवता को समर्पित फूलमाला को कोई मूर्ति के गले में से उतार कर खुद धारण कर ले, तो सात सप्ताह के भीतर उस व्यक्ति का विवाह अवश्य हो जायगा। इस कल्पना के कुछ स्थानीय प्रभेद भी पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, मधुरांतकम् के कोदंड राम मंदिर के देवता की अर्चना करने पर भी तुरंत विवाह सुनिश्चित हो जाता है।

कई समाजों में ऐसा रिवाज होता है कि तेल चढ़ने की रस्म हो जाने के बाद वर या वधू किसी अन्य के विवाह में सम्मिलित नहीं होते। श्मशान यात्रा या शोक के अन्य प्रसंगों पर हंसी-दिल्लगी करना उचित नहीं होता। अतः एक ही व्यक्ति द्वारा एक ही दिन में अंत्येष्टि और विवाह, यों दो परस्पर-विरोधी माहौल वाले संस्कारों में उपस्थित रहना परंपरा से निषिद्ध माना गया है।

मनवांछित जीवन साथी पाने के लिये कुछ लोग एक विशिष्ट प्रकार का तेलमिश्रित उबटन तैयार करते हैं और उसे वांछित प्रेमी या प्रेमिका के सिंगारदान या साबुनदानी में छिपा देते हैं। इसे वशीकरण का ही एक प्रकार मानना होगा।

सूर्यास्त के बाद पाले जाने वाले कुछ निषेध

परंपरा से सूर्यास्त के बाद कई बातों को निषिद्ध माना गया है। बाल कटवाना, नाखून काटना, धोबी को मैले कपड़े देना, नाई या सांप का नामोल्लेख करना, सूई, मठा, नमक या अन्य कोई सफेद वस्तु किसी को देना आदि क्रियाएं इस निषेध के अंतर्गत आती हैं। इसी प्रकार सूर्यास्त के बाद आग तो क्या दियासलाई भी किसी को मंगनी नहीं दी जाती। चूल्हा सुलगाने के लिए सुबह किसी पड़ोसी के यहां से जलती हुई लकड़ी या दहकते हुए अंगारे मांगे जा सकते हैं, पर शाम को नहीं। दरअसल अग्नि मांगना कुछ अच्छी बात नहीं मानी जाती क्योंकि अंततः वह दारिद्र्य की सूचक है। कई परिवार इस बात को लेकर उचित गर्व का

अनुभव करते हैं कि उनके यहां चूल्हा कभी बुझता ही नहीं। चूल्हे की आग का सदा प्रज्ज्वलित रहना इस बात को परिचायक है कि परिवार इतना संपन्न है कि चौबीसो घंटे, किसी भी समय अतिथि को भोजन मिल सकता है।

सूर्योदय समय के प्रथम दर्शन संबंधी विश्वास

सुबह उठने के बाद दर्पण, जल से भरा हुआ कलश, ध्वजा, प्रकाश देने वाला कोई भी साधन, मछलियों की जोड़ी और हल्दी का दर्शन शुभ माना जाता है। बिस्तर छोड़ते ही इनमें से किसी वस्तु पर नजर पड़ जाय तो दिन बहुत अच्छा बीतेगा ऐसा विश्वास रहता है। इसी प्रकार कमल, स्वर्ण, राजा, सूर्य, प्रकाश, अग्नि, सागर, मंदिर का गोपुरम् (शिखर) बदलियों से घिरी हुई पहाड़ी, बछड़े के साथ गाय, अपना दाहिना हाथ, अपनी पत्नी का मुख, पागल व्यक्ति, काले मुंह का बंदर (लंगूर), हाथी और मृदंग जैसे किसी तालवाद्य का दर्शन भी मंगल-सूचक माना जाता है।

स्वप्न संबंधी विश्वास

तड़के दिखाई देने वाले सपनों के सत्य होने की पूरी संभावना रहती है। स्वप्न में विवाह का दृश्य दिखाई देना अत्यंत शुभ माना जाता है। कन्याकुमारी जिले में ऐसी मान्यता प्रचलित है कि प्रत्येक स्वप्न का जीवन में ठीक उल्टा परिणाम घटित होता है।

व्यापार संबंधी विश्वास

व्यापारी लोग बोहनी-बट्टे को बहुत अधिक महत्व देते हैं। बोहनी के समय प्राप्त रुपये को आंखों पर चढ़ाकर प्रार्थना के साथ गल्ले में डाला जाता है। व्यापार के स्थान पर सोना, विशेष तौर पर कामकाज के समय, निषिद्ध माना जाता है।

ग्राहक द्वारा किसी वस्तु की पूछताछ की जाने पर विक्रेता कभी 'अमुक वस्तु नहीं है' कहना पसंद नहीं करते। यदि कोई ऐसी वस्तु मांगी जाय, जो उस समय उसके यहां उपलब्ध न हो, तो व्यापारी उससे मिलती-जुलती वस्तु का नाम लेकर कहेगा कि वह बहुतायत से उपलब्ध है। इस नियम का पालन घरों में भी किया

जाता है। कोई स्त्री अपनी पड़ोसन से कोई वस्तु मांगे, जो उसके यहां न हो, तो पड़ोसन नकारात्मक उत्तर न देते हुए कहेगी कि उस वस्तु के भंडार भरे हुए हैं।

तेल का व्यवसाय करने वाले लोग दिन के कारोबार का आरंभ तेल के बजाय नमक या अन्य कोई वस्तु बेच कर करते हैं।

धार्मिक विश्वास

देवता प्रतिशोध-परायण होते हैं और बदला लेने से कभी नहीं चूकते, ऐसा विश्वास सर्वव्यापी होने के कारण लोग विविध मनौतियां मानते रहते हैं और उन्हें श्रद्धापूर्वक पूरा करते हैं। संतान की कामना करने वाले माता-पिता बालक के पहली बार के बाल वरदाता देवता को समर्पित करने की मन्नत मानते हैं। संतान-प्राप्ति के पक्ष में देवता का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए मंदिरों में छोटे-छोटे पालने लटकाने की प्रथा भी प्रचलित है।

बालक के बीमार हो जाने पर उसके माता-पिता या बाबा-दादी बच्चे की स्वास्थ्य-कामना से किसी देवी-देवता के मंदिर में सोने या चांदी की वस्तुएं चढ़ाने की मनौती मानते हैं। इन चढ़ावों को शरीर के जिस अंग में रोग हुआ हो उसी की आकृति दी जाती है।

भाग्यविधाता की किसी कृपा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए वृद्ध लोग मंदिर की चहारदीवारी के बाहर की कच्ची सड़कों पर साष्टांग दंडवत करते हुए परिक्रमा लगाते हैं। इन दंडौती परिक्रमाओं का दायरा कई मीलों का हो सकता है। तिरुवन्नमलै में यह परिक्रमा 'गिरिवलम्' का रूप धारण करती है जिसमें मंदिर की पूरी पहाड़ी परिक्रमा के भीतर आ जाती है। यह फासला कोई आठ मील का बैठता है।

नयी मोटरकार खरीदने पर अधिकांश लोग उसमें पहली बार सवारी किसी मंदिर जाने के लिए करते हैं। इसी प्रकार गाय खरीदने पर उसका प्रथम बार का दूध किसी देवप्रतिमा पर अभिषेक के रूप में चढ़ाया जाता है। उसके दूध-दही से बना हुआ पहली बार का घी किसी मंदिर के दीपक में चढ़ा दिया जाता है।

किसी दुविधा का सामना होने पर गांव के लोग दोनों पक्षों के गुण-दोष की चर्चा करने के बजाय देवमूर्ति के सामने कुछ फूल रख देते हैं और यह देखते हैं कि हवा से फूल किस दिशा में उड़ते हैं। बस, उसी के आधार पर समस्या का हल कर

लिया जाता है। कभी-कभी इष्टदेवता के सामने चिट्ठियां डालकर भी किसी कठिन समस्या का हल ढूंढा जाता है। किसी गंभीर बीमारी में मरीज का ऑपरेशन करवाया जाय या नहीं, इस असमंजस से छुटकारा पाने का यही सरल और सही मार्ग माना जाता है।

मंदिरों में देवता के सामने नारियल चढ़ाते समय यह आवश्यक माना जाता है कि नारियल एक ही बार में और दो समान अर्द्धों में फूटे। नारियल का टेढ़ा-तिरछा या आंखों की तरफ से खड़ा फूटना अशुभ माना जाता है। चढ़ाया हुआ नारियल यदि सड़ा या गला हुआ निकले तो इसे चढ़ाने वाले भक्त पर पड़ने वाली विविध विपदाओं की पूर्वसूचना माना जाता है।

गणेशजी का मंदिर बनवाते समय लोगों में एक विचित्र मान्यता यह भी पायी जाती है कि नये मंदिर में प्रतिष्ठापित होने वाली विनायक (गणेशजी) की मूर्ति किसी पुराने मंदिर में से चुरायी हुई होनी चाहिए।

आपस में वैमनस्य होने वाले दो परिवार यदि समझौता करने का निश्चय करते हैं, तो दोनों ओर से थोड़ी-बहुत रकम संयुक्त रूप से किसी मंदिर के कोष में जमा करवा दी जाती है और समझौते के पक्ष में देवता के अनुमोदन की कामना की जाती है। यदि ऐसा न किया जाय, तो मेल-मिलाप के अल्पकालिक सिद्ध होने की संभावना रहती है।

रथयात्रा के समय देवता के रथ की धुरी टूट जाय या तड़क जाय, तो इसे पूरे गांव के लिए महान् विपत्ति का संकेत माना जाता है। कोई व्यक्ति अपना रिहायशी मकान स्थानीय मंदिर के गोपुरम् (शिखर) से भी ऊंचा बनवाये, तो उसे गांव भर के निवासियों की तबाही का सूचक माना जाता है।

छींक आने पर लोग राम, कृष्ण या शिव का नाम लेते हैं। यदि कोई जम्हाई ले, तो वह खुद या आसपास खड़ा हुआ कोई आदमी चुटकी बजाने लगता है। इससे जम्हाई लेते समय विमुक्त होने वाली दुष्ट वृत्तियों का निवारण हो जाता है।

छप्पर की बेल पर फलने वाली पहली लौकी और घर के अहाते में उगने वाली साग-सब्जी की पहली उपज को किसी मंदिर के भंडारे में दान कर दिया जाता है।

तिरुचिरापल्ली जिले के तेनबरंदु नामक स्थान पर ऐसा रिवाज है कि विवाह का प्रस्ताव लेकर लड़की पसंद करने के लिए जाने वाले लोग बांस, ईंधन की

लकड़ी या किसी रेंगने वाले जंतु द्वारा रास्ता काटा जाने पर या हिरन की आवाज सुनाई देने पर वापस लौट जाते हैं।

दैनिक जीवन के अन्य विश्वास

लड़कियों की उम्र ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों वे घर को झाड़-बुहारकर साफ रखना, बरतन मांजना और सुघड़ गृहस्थी की और भी कई बातें सीखती जाती हैं। माताएं लड़कियों को सिखाती हैं कि झाड़ू लगाते समय घर का पूरा कूड़ा और धूल-मिट्टी समेटकर बाहर घूरे पर फेंकना चाहिए। यदि कोई लड़की घर को बुहारने के बाद कूड़े को कोने में इकट्ठा करके छोड़ देती है तो उस पर कड़ी डांट-फटकार पड़ती है और उसे झिड़की सुनाई जाती है, कि यदि उसकी यही आदत रही, तो किसी त्योहार या ब्याह-शादी के अवसर पर उसे भी यों ही कोने में पड़ा रहना पड़ेगा। (अर्थात् इन समारोहों के दिन वह रजस्वला हो जायेगी और उनमें सम्मिलित नहीं हो पायेगी।) घर या आंगन के कोने में कूड़े का एकत्र होना गृहिणी के फूहड़पन का परिचायक होने के साथ-साथ गृहपति के लिए संपत्तिनाश, कर्ज और अशुभ समाचारों का अग्रदूत माना जाता है।

टूटे हुए दर्पण का उपयोग यथासंभव टाला जाता है।

दाहिनी हथेली में खुजलाहट आना धन प्राप्ति की पूर्वसूचना माना जाता है। भयावह गरमी के दिनों में बूंदाबांदी होना आगामी वर्ष के सुखसमृद्धिपूर्ण होने का सूचक माना जाता है। शुक्लपक्ष की चतुर्थी के चंद्र का दर्शन स्मृतिभ्रंश प्रेरित करता है। नववर्ष के पहले ही दिन किसी से झगड़ा हो जाय, या अनपेक्षित खर्च करना पड़ जाय, तो उसे झगड़े और खर्च की प्रवृत्ति के पूरे वर्ष तक चलते रहने का लक्षण माना जाता है।

दांतों से नाखून कुतरना, अनावश्यक तौर पर पानी बहाना, बार-बार पांवों को झटकना और घर में कछुए का प्रवेश होना आगामी दारिद्र्य के लक्षण माने जाते हैं। पांव पर पांव चढ़ा कर या हाथों को घुटनों के गिर्द लपेट कर बैठना मृत्यु सूचक बुरी आदतें मानी जाती हैं।

कोरे वस्त्रों को पहनने से पहले अनिष्ट को टालने के लिये उनके दोनों सिरों पर हल्दी के दाग लगा लिये जाते हैं। गाय और घोड़ा मनुष्य के अदृष्ट को प्रभावि करने वाले प्राणी माने जाते हैं। उनके खरीदार का भविष्य में परिस्थिति-

अनुसार मंगल या अमंगल कुछ भी हो सकता है। उनमें खरीदार के भविष्य को हितकारी या कष्टकारी बनाने की शक्ति रहती है।

सूर्यास्त के बाद दीपक जलने पर या बिजली की रोशनी होने पर लोग हाथ जोड़कर भगवान की प्रार्थना करते हैं और अंधकार में से प्रकाश में लाने के लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। पौ फटते ही दिन का आरंभ सूर्य वंदना से किया जाता है।

दस्तावेजों में लिखते समय हो जाने वाली गलतियों को मिटाया नहीं जाता। इसके बजाय आवश्यक रद्दोबदल और संशोधनों का उल्लेख मजमून की अंतिम पंक्ति में कर दिया जाता है। मसौदे में एक बार लिखी गयी बातों में काटछांट करना अशुभ माना जाता है। इसके विपरीत, दस्तावेज लिखते समय उस पर आकस्मिक रूप से स्याही गिर जाय, तो इसे शुभ शकुन माना जाता है।

लेन-देन का कोई भी व्यवहार बायें हाथ से करना बहुत बड़ा प्रमाद माना जाता है। इससे सामने वाले व्यक्ति की भावना को ठेस लगती है और वह अपने आपको अपमानित महसूस करता है।

चोर की पहचान के लिए गांवों में एक जटिल-तंत्र प्रचलित है। देवांगु (काहिल) नामक प्राणी की हड्डियों के बुरादे में मृत स्त्री की खोपड़ी का चूर्ण और हरा कपूर मिला कर एक रंगीन लेई बना ली जाती है और उसे खाने के पान पर चुपड़ दिया जाता है। इससे वह शीशे की तरह चमकने लगता है। इस दर्पण में देखने पर चोर के रंगरूप, उसके विशिष्ट लक्षण और उसके आने-जाने की दिशा का ज्ञान हो जाता है।

जादूटोना, मंत्रतंत्र और ओषधि-विज्ञान

जादूटोना

पेशेवर जादूगर गलियों के मोड़ पर या सड़क के किनारे भीड़ इकट्ठी करके अपने करतब दिखाते रहते हैं। ये लोग बीमारियों का इलाज करने का भी दावा करते हैं। भारतीय जादूगरों की रोप-ट्रिक संसार भर में प्रसिद्ध है। किसी व्यक्ति का गला या जीभ काट कर उससे बुलवाना, कागज के दस्ते के दस्ते खा जाना, मुंह से थूक कर फूलों के ढेर या नारियल उत्पन्न करना उनकी कुछ अन्य लोकप्रिय युक्तियां होती हैं।

ओषधि-विज्ञान

योरोपीय लोगों के भारत आने से पहले शताब्दियों तक, भारत के अन्य भागों की तरह तमिलनाडु में भी ओषधि-विज्ञान का सर्वांगीण विकास हुआ था। इस अमूल्य निधि के ताड़पत्र पर लिखे हुए प्राचीन ग्रंथ पाये जाते हैं। भारत की तत्कालीन प्रथा के अनुसार अन्य विद्याओं की तरह इस विद्या की जानकारी भी सूत्रात्मक और पद्यबद्ध रूप में संग्रहीत की गयी थी। तंजाउर के सरस्वती महल पुस्तकालय में इन प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों का बहुत बड़ा संग्रह सुरक्षित है।

तमिलनाडु में इस विद्या की चरम उत्क्रांति सिद्धों के रूप में हुई जिसे हमारी ज्ञान-विज्ञान परंपरा का बहुत बड़ा वरदान मानना होगा। सुदूर अतीत के स्वर्णकाल में रहने वाले इन सिद्धों ने ओषधि-विज्ञान का सर्वांगीण विकास किया था। उनकी संख्या अठारह मानी जाती है। और उन्हें उच्च कोटि की प्रबुद्ध आत्माएं माना जाता है। तमिल जनश्रुति के अनुसार ये सिद्ध उच्च श्रेणी के वैद्य और चिकित्सक ही नहीं बल्कि महान् दार्शनिक, रसायन और शरीर रचना-शास्त्र की गहन जानकारी वाले प्रकांड विद्वान् और विस्तृत यात्राओं द्वारा व्यापक अनुभव प्राप्त करने वाले बहुमुखी-प्रतिभा-संपन्न पंडित थे। सादा रहन-सहन और उच्च विचारसरणी के लिए उनकी पूरे समाज में ख्याति थी। अन्य अनेक विद्याओं के साथ-साथ उन्हें कीमिया (निकृष्ट धातुओं में से सोना बनाने) की विद्या भी अवगत थी।

सांकेतिक कूटभाषा में लिखे हुए ओषधि-विज्ञान के मूलग्रंथों की रचना इन सिद्धों ने ही की थी। सिद्ध-रसायन में संखिया का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐसा माना जाता है कि चौसठ विभिन्न प्रकारों के संखिया के प्रयोगों द्वारा सिद्ध किसी को भी प्रदीर्घ आयु और चिरयौवन प्रदान कर सकते थे। तमिल लोकमानस में तो यह बात जड़ कर गयी है कि ऐसा कोई रोग नहीं जिसे सिद्ध अच्छा न कर सकें। उनकी अनेक योग्यताओं में से एक यह भी थी कि वे किसी भी मृत व्यक्ति का किसी जीवित व्यक्ति में कुछ क्षणों के लिए कायाप्रवेश करा सकते थे। यह विद्या मृत व्यक्तियों से आवश्यक जानकारी प्राप्त करने में सहायक होती थी।

ऐसी व्यापक योग्यताओं वाले त्रिकालदर्शी सिद्धों में इच्छाजीवन और इच्छामृत्यु की शक्ति होना स्वाभाविक है। इस विश्वास ने इस मान्यता को

जन्म दिया है कि उस युग के ये अठारह सिद्ध आज भी जीवित हैं। पर उन्हें पहचानना संभव नहीं क्योंकि वे तरह-तरह के रूप धारण करके जनसमूह में घुल-मिल कर घूमते रहते हैं। अन्य अनेक विद्याओं की जानकारी के साथ विविध जड़ी-बूटियों का सेवन करके गहरी समाधि में डूब जाने की शक्ति भी उनमें थी और 'गमन ओडी' नामक रहस्यमय रसायन की सहायता से चल-समाधि प्राप्त करके आकाश में उड़ सकने की सिद्धि भी उन्हें हासिल थी।

इस बात के कई उल्लेख पाये जाते हैं कि कंजमलै (जिला सेलम) में रहने वाले सिद्धों को निकृष्ट धातुओं को सोने में रूपांतरित करने की कीमिया अवगत थी। सेमल के इस्पात कारखाने के पास आज भी इडुमत्तनुर (साल अंशों वाला) नामक गांव विद्यमान है। स्थानीय किंवदंती के अनुसार यहां के सिद्धों के चमत्कारों द्वारा बनाया गया सोना दस में से सात अंश खरा प्रमाणित हुआ था जब कि खान में से निकलने वाला सोना शुद्ध किया जाने के बाद दस में से दसों अंशों खरा होता है।

आज भी ऐसा माना जाता है कि सिद्धों में नास्तिकों के शरीर में बिच्छू के डंक की वेदना उत्पन्न करने की, शून्य में से भभूत या नारियल बरसाने की, उंगली में पहनी हुई अंगूठियों को गायब कर देने की, बंद अंजलि में फूल भर देने और गूंगों को वाणी प्रदान करने की शक्ति होती थी। निष्ठावान भक्तगण यह कहते सुने जाते हैं कि ये चमत्कार साधक की श्रद्धा की उत्कटता पर आधारित रहते हैं। यह जितनी गहरी श्रद्धा से सिद्धों के प्रति उन्मुख होगा उतनी ही गहन प्रतीति उसे होगी। (नबिनवरक्कु कलकंडु, नंबतवरक्कु कलकुंडु)।

कई सिद्ध गरमी के दिनों में नमक की क्यारियों में मिलने वाली एक सफेद रसायन का ओषधियां बनाने के लिए उपयोग करते थे। परंतु सिद्धों के ओषधि-विज्ञान की ख्याति उनके जड़ी-बूटियों के ज्ञान पर और भस्मों के प्रयोग पर आधारित है। जड़ी-बूटियों के साथ उनका इतना निकट संबंध था कि वे उनसे बातचीत भी कर सकते थे। विभिन्न प्रकार की धातुओं की भस्मों का वे तीव्र गुणकारी औषधि के रूप में प्रयोग करते थे।

अठारह सिद्धों में से पहले दो, नंदी तेवर और अगस्त्य ने जड़ी-बूटियों की ओषधियों की क्षमता का ज्ञान परीक्षण और निरसन की प्रणाली से प्राप्त किया था। उस युग में प्रचलित एक कहावत से भी यही प्रक्रिया सिद्ध होती है।

कहावत यों है। 'जिसने अपने रोगियों पर हजारों जड़ी-बूटियों की आजमाइश की हो, वही सफल वैद्य हो सकता है।' जब किसी जड़ी-बूटी का रोगशामक गुण प्रस्थापित हो जाता था तो सिद्धगण उसके पौधों को ऊंची पहाड़ियों और अन्य अगम्य स्थानों पर बो कर उसका प्रचुर मात्रा में उत्पादन करते थे।

तमिलनाडु के कई प्रदेश ओषधीय गुणों वाली जड़ी-बूटियों की पैदावार के लिए प्रसिद्ध हैं। लोकपरंपरा का विश्वास है कि इनमें की कई बूटियों में कायाकल्प करने की शक्ति होती है। सेलम के पास इलमपिल्लइ नामक गांव है। इसका अर्थ होता है 'नौजवान'। किंवदंती है कि एक बार गांव के बाहर के जंगल में किसी तपस्वी ने अपने बूढ़े शिष्य के साथ डेरा डाला। समाधि में लीन होने से पहले मुनि महाराज ने शिष्य से भोजन रखने को कहा। शिष्य ने चावल पकाये और पास के एक पौधे से एक टहनी तोड़ कर उससे भात को हिलाया। टहनी का स्पर्श होते ही भात काला पड़ गया। शिष्य को यह देख कर आश्चर्य हुआ और गुरुजी के क्रोध से बचने के लिए उस भात को वह खुद खा गया। खाते ही उस वृद्ध शिष्य का एक सुंदर और बलवान नौजवान में रूपांतर हो गया। समाधि खुलने पर गुरुजी ने शिष्य से सारा किस्सा सुना और बचाखुचा भात खा कर वे भी तरुण हो गये। इस घटना के स्मरणार्थ उस का नाम 'इलमपिल्लइ' रख दिया गया। आज भी कुछ धनवान लोग कामोद्दीपन के लिए तंग बस्पम् (स्वर्ण भस्म) का सेवन करते हैं। इसमें बुढ़ापे की व्याधियों को नष्ट कर के पुनर्यौवन प्रदान करने की क्षमता मानी जाती है।

सिद्धों द्वारा बाह्यलेपन से रोगनिवारण करने वाले ओषधीय तैल भी तैयार किये जाते थे। करिसिंगलंगन्नि नामक जड़ी के सत्त्वयुक्त तेल से शरीर की मालिश करके स्नान करने पर किसी भी चर्मरोग से मुक्ति पायी जा सकती है। सरदी-जुकाम में रेंड़ी के तेल की एक-दो बूंदें नाक में डालने से लाभ होता है। कुछ विशिष्ट जड़ियों से बनाया हुआ तेल दमे की रामबाण ओषधि माना जाता है। जड़ी-बूटियों को पीस कर उनके लेप से टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने की विद्या तो इस देश में प्राचीन काल से चलती आयी है। हड्डी जोड़ने वाले पुरानी चाल के जर्राह आज भी बहुत लोकप्रिय हैं और उनका पेशा खूब जोर-शोर से चलता है। कारइकुडी के पास तुलावुर, तिरुच्चिरापल्ली का पलक्करै प्रदेश, कोइंबतोर का तेलंगु पलयम् नामक उपनगर और मद्रास के पास आंध्र प्रदेश की सीमा में

पुतुर नामक गांव इन पारंपरिक अस्थिवैद्यों के लोकप्रिय केंद्र हैं।

रोगों की चिकित्सा के लिए 'यंत्रों' का प्रयोग भी तमिलनाडु में व्यापकता से होता है। ये ताम्रपत्रों पर अंकित विशिष्ट प्रकार के तिलिस्मी गुणधर्म वाले रेखाचित्र होते हैं। इनका गंडा या तावीज बनाकर उसे काले डोरे से बांधकर बांह पर या गले में पहना जाता है। उनमें तांत्रिक अभिचारों का संचार करने के लिए विशिष्ट प्रकार के मंत्र पढ़े जाते हैं। इस प्रकार से सिद्ध किया हुआ यह कवच धारक की सब संकटों से रक्षा करने वाला और उसे सुख-स्वास्थ्य स्मृद्धि देने वाला माना जाता है।

सिद्धों द्वारा बवासीर और खाज का इलाज भी किया जाता था। बोगर नामक तमिल धन्वंतरी द्वारा प्रयुक्त अनेक रसायन विभिन्न रोगों का इलाज करने में बड़े कारगर सिद्ध हुए थे। सोना चांदी और अन्य धातुओं के कुश्ते, मोती और प्रवाल की पिष्टियां और अनेक जड़ी-बूटियों के रसों का आज भी सिद्धों द्वारा निर्दिष्ट औषधियां तैयार करने में प्रयोग किया जाता है। मदुरै जिले के पलनी नामक स्थान में ये ओषधियां तैयार की जाती हैं। सोने से पहले शरीर की मालिश करने के लिए जड़ी-बूटियों से बनाये हुए 'मर्मतैलम्' नामक तेल का प्रयोग होता है। दूसरे दिन सुबह गरम पानी से स्नान करने के बाद कई बीमारियों के लक्षण दूर होते देखे गये हैं।

कुछ शारीरिक व्याधियां को दूर करने के लिए तिल के तेल में हल्दी और लाल मिर्चें उबाल कर उसका शरीर पर लेप किया जाता है और फिर गरम पानी से स्नान। पेचिश की शिकायत होने पर उबाले हुए जायफल का चूर्ण केले के साथ खिलाया जाता है। कुकुर खांसी पर लोमड़ी की चमड़ी को चूल्हे में जला कर उस भस्म को शहद के साथ चटाया जाता है।

चावल की उबलती हुई कंजीं हल्दी में मिलाकर उसका लेप के रूप में उपयोग किया जाता है। यह लेप शरीर के किसी भी भाग में होने वाले फोड़ों पर बहुत अकसीर होता है। गले की खराश पर मुलहठी के पत्तों के रस में पान में खाने का चूना मिलाकर गले में लगाया जाता है।

अदरक, हल्दी, प्याज, लहसुन, राई, सरसों, जायफल, लौंग, दालचीनी और अन्य कई प्रकार के मसालों का उनके ओषधीय गुणधर्मों के कारण रोजमर्रा के खाने में प्रयोग होता है। हींग, हल्दी और नमक का छौंक लगा हुआ रात का

बासी चावल का मांड अत्यंत पुष्टिवर्धक माना जात है। केले के पौधे की छाल मूत्र रोगों और पुरःस्थ ग्रंथि (Prostate gland) के बढ़ जाने पर गुणकारी ओषधि मानी जाती है। पागलों को उपचार के लिए कोर्तालम् या समयपुरम् के मंदिरों में ले जाया जाता है। पैंतालीस दिन के स्नान और प्रार्थनाओं के बाद बहुतों का मानसिक रोगों से छुटकारा हो जाने की बात सुनी जाती है।

शैव मंदिरों में भक्तों को बांटी जाने वाली पवित्र भभूत से भी कई रोगों का उपचार किया जाता है। तिरुगनन संबंदार नामक महान् संत ने किसी पांड्य राजा को केवल भभूत के विलेपन द्वारा घातक ज्वर से मुक्ति दिलायी थी। ग्रामीण प्रदेशों के लोगों का तो यह दृढ़ विश्वास है कि तेवरम् नामक विशिष्ट भजनों के पाठ और मंत्रोच्चारण के बाद संतों द्वारा बांटी जानेवाली पवित्र भभूत समस्त रोगों का रामबाण इलाज होती है। ज्वर से पीड़ित या प्रेतबाधा से प्रताड़ित बच्चों के लिए तो मंत्रपूत भभूत से बढ़कर कोई इलाज नहीं। बिच्छू के डंक का उतार भी प्रायः मंत्रों द्वारा ही होता है। कई लोगों में मंत्रों द्वारा सांप का विष उतारने की शक्ति भी पायी जाती है। समुद्र में डुबकी लगाकर मोती की सीपियां निकालने वाले मरजीवे अपने कार्य का आरंभ करने से पहले मांत्रिकों से मंतर पढ़वाकर गोताखोरी के मार्ग में आने वाले संभाव्य संकटों का निवारण करवा लेते हैं। इसके बदले में मांत्रिकों को सीपियों का कुछ हिस्सा मिलता है।

घरों में गोबर का उपयोग कीटाणुनाशक के रूप में किया जाता है। इसे जनसाधारण का फिनाइल समझिये। आंगन और कमरों के फर्शों को गोबर से लीपा जाता है और घर के आगे के ड्योढ़ी-चौपाल में प्रवाही गोबर छिड़का जाता है। उस पर से निरंतर आमद-रफ्त होती रहने के कारण समय बीतते इस सतह को सीमेंट के पलस्तर की-सी मजबूती प्राप्त हो जाती है। बच्चों को पालडै (शंख के आकार का बच्चों को दूध पिलाने का बरतन) में भर कर थोड़ा-थोड़ा पंचगव्य पिलाया जाता है। यह गाय के दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र का मिश्रण होता है जिसमें अनेकविध रोगों का शमन करने की शक्ति मानी जाती है। धार्मिक श्रद्धा वाले लोग पंचगव्य को प्रदूषित वस्तुओं या व्यक्तियों के लिए श्रेष्ठ कोटि का शुद्धिकर्ता भी मानते हैं जिसके सेवन से समस्त पापों का निवारण हो जाता है।

यहां कबायली लोगों के रोगविषयक दृष्टिकोण का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। उनके किसी गांव में चेचक का प्रादुर्भाव होते ही पझियार आदिवासी बोरिया-बिस्तर समेटकर गांव छोड़कर भाग खड़े होते हैं। चेचक के मरीज की उसके संबंधियों द्वारा घोर अवहेलना होती है और उसे भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाता है। चेचक की महामारी किसी देवी-देवता के प्रकोप के कारण ही होती है ऐसा उन्हें दृढ़ विश्वास होता है।

आदिवासियों के आवास स्थानों के चहूंओर के जंगल और पहाड़ियों में उगनेवाली अनेक जड़ी-बूटियों के ओषधीय गुणधर्म उन्हें मालूम होते हैं। पेरिया उरी कट्टी वर और नरीवेल्ली वर नामक जड़ियों का प्रयोग सर्पदंश पर किया जाता है। इन जड़ियों को चबाते हुए उनकी पीक को डंक के स्थान पर थूकते रहना और बचे हुए कड़ुए रस को पी जाना सर्पदंश का रामबाण उपचार माना जाता है।

पझियार लोग कुशल जादूगर होते हैं। टोने-टोटकों और मंत्रशक्ति के प्रयोग द्वारा जंगली जानवरों के जबड़ों और पंजों को जकड़ कर वे उन्हें निष्क्रिय बना सकते हैं। गांव की चारों दिशाओं में सियार की पूंछें गाड़कर कुछ तांत्रिक सूत्रों का उच्चारण कर देने से पूरे गांव को वन्य पशुओं के उपद्रव से बचाया जा सकता है ऐसा उन्हें दृढ़ विश्वास होता है।

जादूटोना और टोटके

किसी भी घटना को प्राकृतिक कारणों का परिणाम मानने की गांव वालों की आदत ही नहीं होती। अकसर वे उसे किसी जादू या टोने-टोटके का ही परिणाम मानते हैं और उसके निवारण के लिए उपाय भी उसी श्रेणी के प्रयुक्त होते हैं। किसी से बदला लेना हो तो मंत्रशक्ति द्वारा सामर्थ्य प्रदान की हुई भभूत को चोरी-छिपे शत्रु के आंगन में या छप्पर पर छिड़क दिया जाता है। इसके बाद, विशिष्ट नक्षत्रों का प्रभावकाल आरंभ होते ही मंत्र अपना विनाशक कार्य शुरू कर देते हैं। शत्रु के हर कार्य और हर गतिविधि में वे बाधा डालने लगते हैं और अड़तालीस दिनों के भीतर-भीतर तो उस पर आपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ता है।

येवल नामक मरण प्रयोग में निश्चित अवधि के भीतर किसी व्यक्ति की मृत्यु

के लिए किसी दुष्ट शक्ति वाले देवी-देवता की नियुक्ति की जाती है। कुशल ओझे इन दुष्ट शक्तियों को संतुष्ट करके या उनका प्रतिकार करके उन्हें प्रभावहीन करने की विद्या भी जानते हैं। (यह उत्तर भारत की 'मूठ' से मिलता-जुलता मारण-अभिचार है।)

विधिपूर्वक मंत्रों का उच्चारण करके निष्ठापूर्वक उपासना करने से दैवी शक्तियों के हस्तक्षेप द्वारा शत्रु को बीमार किया जा सकता है। इसी प्रकार मंत्रशक्ति के प्रयोग द्वारा सांप-बिच्छू और वन्य पशुओं के उपद्रव से बचा जा सकता है। शत्रु के पदचिह्नों पर श्मशान में मारण का मंत्रप्रयोग किया जा सकता है। जादू-टोने की इन मैली विद्याओं और जारण-मारण के अधिकांश प्रयोगों का विपक्षी के कुशल मांत्रिकों द्वारा प्रतिकार भी हो सकता है। अधिकतर मारण प्रयोगों का न केवल निवारण ही किया जा सकता है, बल्कि उन्हें प्रयोग करने वाले पर उलट देना भी संभव होता है।

विरोधियों के हाथ-पांव या मुंह को जकड़कर अकार्यक्षम कर देने के लिये भी जादू-टोने का प्रयोग होता है। कभी-कभी आटे और चिथड़ों की सहायता से शत्रु का पुतला बनाकर उस पर मंत्र-प्रयोग किया जाता है। इसके बाद पुतले को तोड़-फोड़ कर या अंग-भंग करके नष्ट कर दिया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इन सारी प्रक्रियाओं की दुश्मन के शरीर पर ज्यों-की-त्यों प्रक्रिया होती है और पुतले के अंग-भंग के साथ-साथ वह भी पक्षाघात से पीड़ित हो जाता है।

तांबे के पत्तर पर मंत्र सिद्ध ताबीज बनाकर उसे दुश्मन की देहरी के नीचे गाड़ दिया जाता है। इससे उसके कुल का अनिष्ट होकर पूरे परिवार की अवनति निश्चित हो जाती है।

कभी-कभी असाध्य रोगों का निदान करने के लिए प्रयोग-परीक्षण के जानकार ओझों को बुलाया जाता है। शाम का झुटपुटा होते ही वे गलियों के मोड़ पर पवित्र भभूत छिड़क देते हैं। इसके सहारे रोग और उसके मूल कारण का सुराग मिल जाता है। कई बार वे केले का एक बड़ा पत्ता लेकर उस पर चावल, केले के गुच्छे, खाने के पान, सुपारियां, नारियल, नीबू, आदि सजाते हैं। उस पर एक धनुष और धनुष के ऊपर सरौता रखा जाता है। उसके बाद वे उस विशिष्ट व्याधि के जनक आसुरी तत्त्व का आवाहन करते हैं और उसके प्रिय भोज्य पदार्थों की बलि देने का वादा करते हैं। अधिकांश रोगप्रेरक दुष्ट शक्तियों का इससे शमन

हो जाता है। अनिष्ट तत्त्वों का निवारण करने में विविधि प्रकार के गंडे-तावीज भी सहायक होते हैं। भूत-प्रेतादि तत्त्वों से आक्रांत मकानों और व्यक्तियों का पेशेवर ओझों-सयानों की झाड़फूंक द्वारा विमोचन किया जा सकता है।

कुरली अथवा कुट्टि चातन एक आकारहीन अनिष्ट तत्त्व होता है जिसे चर्मचक्षु द्वारा नहीं देखा जा सकता। उसका आवाहन करने पर वह शत्रु के दीवानखाने या रसोईघर में पत्थर, विष्ठा, सड़े हुए अंडे और अन्य कूड़े-करकट की वर्षा कर सकता है या छोटा-मोटा भूचाल उत्पन्न कर सकता है। यह दुष्टतत्त्व भीषण आवाजें उत्पन्न कर सकता है और मकानों के छप्परों को उड़ा सकता है। डकैत और रहजनी करनेवाले लुटेरे इसका शमन करने के लिये रोटी के साथ विशिष्ट जड़ी-बूटियां मिलाकर उन्हें कुत्तों को खिला देते हैं।

लड़कियां अधिदैविक आपत्तियों और ईर्ष्या-द्वेष से पनाह पाने के लिये भौंहों के बीचोंबीच सिंदूर की बिंदी लगाती हैं।

जादू-टोना एक अतिमानुषी विद्या है जिसे आसुरी तत्त्वों के सहयोग द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। पहाड़ी आदिवासियों में इसके जानकार बहुतायत से पाये जाते हैं। वे धूएं की दीवार खड़ी कर सकते हैं, भूत-प्रेतों को किसी विशिष्ट स्थान पर एकत्र कर सकते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें मार-भगा भी सकते हैं।

नीम की पत्तियां कई रोगों का अकसीर इलाज होने के अलावा जादू-टोने के प्रतिकार के लिये भी अत्यंत कारगर मानी जाती हैं। भूत-प्रेत से त्राण पाने के लिये मकानों के प्रवेश-द्वार या छप्पर पर नीम की पत्तियों की टहनी टांग दी जाती है।

शत्रु का सत्यानाश करने के लिये मंत्रोच्चारण के साथ उसका नाम लेते हुए उसके शरीर पर एक विशिष्ट प्रकार का मंत्रसिद्ध तेल बेमालूम लगा दिया जाता है या उसके खाने-पीने की दूध, पानी, शक्कर या नमक जैसी किसी वस्तु में उसकी कुछ बूंदे मिला दी जाती हैं। मारण की और भी कई विधियां प्रचलित हैं। इसी तेल को साधक यदि अपने कपाल पर चुपड़ कर घर से निकले, तो उसपर दृष्टि पड़ते ही उसके शत्रु उसके वशीभूत हो जायेंगे।

नीलगिरि के कोटा आदिवासियों का विश्वास होता है कि पहाड़ों के दुर्गम

प्रदेशों में छितरे हुए कुरुंब कबीले के आदिवासी टोने-टोटकों की विद्या जानते हैं जिसका वे उनपर प्रयोग करते रहते हैं। इस विश्वास ने इन दोनों कबीलों के बीच वैमनस्य को जन्म दिया है; इतना ही नहीं, उसका सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव कोटा आदिवासियों की जीवन-प्रणाली पर भी पड़ा हुआ दिखाई देता है।

दंतकथाओं में प्रसिद्ध कवयित्री अव्वाई एक रोज रात को किसी भुतही सराय में सो रही थी। यह सराय एक जवान लड़की, जिसने आत्महत्या कर ली थी, की प्रेतात्मा द्वारा आक्रांत थी। वहां ठहरनेवाले हर मुसाफिर को यह प्रेतात्मा तंग करती थी। अव्वाई की भी यही दशा हुई। रात को नींद के अभाव में करवटें बदलते हुए उसने कविता रची :

> जो दो बार सुनकर भी
> कविता के चरण नहीं दोहरा सकता
> जिस मूर्ख की आंखें कोरा फलक तो देखती हैं
> पर जिसका हाथ उसपर कुछ लिखना नहीं जानता
> उन मूर्खों को हे असुरराज
> पीटो, खूब कस कर पीटो।

कहते हैं कि इसके बाद सराय की भूतबाधा का शमन हो गया था।

बुरी नजर

न सिर्फ मनुष्य की बल्कि पशुओं की बदनजर को भी अनिष्टकारी माना जाता है। नजर उतारने का प्रचलित तरीका यह है कि नजरग्रस्त व्यक्ति के सिर पर से नमक मिर्च तीन बार वारकर आग में झोंक दिया जाता है। मिर्चों के जलते समय यदि तीव्र बदबू आये तो नजर के प्रभाव को उतरा हुआ मान लिया जाता है। इससे संभावित आपत्ति का निवारण होकर वह नजर लगानेवाले के ही मत्थे जा पड़ती है।

संपत्ति को बुरी नजर से बचाने के लिये साबूत पेठे पर मनुष्य के चेहरे की आकृति खींचकर उसे नवनिर्मित मकान के प्रवेश-द्वार पर लटका दिया जाता है। पेठे के सड़ जाने पर कुदृष्टि के प्रभाव को दूर हुआ मान लिया जाता है। किसान बांस

पर घास-फूस लपेटकर और उसे फटे चिथड़े पहनाकर मनुष्याकृति कागभगोड़ा बना लेते हैं और उसे धान के खेतों में खड़ा कर देते हैं। फसल की पखेरुओं से रक्षा करने के अतिरिक्त वह खेत को बुरी नजर से भी बचाता है। व्यापारी लोग एक नींबू के साथ सप्त हरी मिर्चों को डोरे में पिरोकर गल्ले के पास लटका लेते हैं। कहीं-कहीं कागज पर बनी हुई दो आंखों का चित्र भी टांगा जाता है।

कोई व्यक्ति भोजन कर रहा हो और उसी समय किसी भूखे की लोलुप दृष्टि उसे घूर रही हो, तो बुरी नजर के प्रभाव से खानेवाले के पेट में दर्द हो जायेगा। ईर्ष्यालु किसानों की बदनजर अन्य बुरी नजरों से अधिक विषैली और घातक मानी जाती है।

शकुनशास्त्र

शकुन-अपशकुन में विश्वास तो सभी जगह व्यापकता से पाया जाता है। यात्रा के आरंभ में पांव फिसल जाना भारी अनिष्ट का सूचक माना जाता है। लोग बाहर निकलने से पहले अकसर घर के दरवाजे पर रुक जाते हैं और कोई शुभ सगुन होने की राह देखते हैं।

कौए का घर के छप्पर पर बैठ कर कांव-कांव करना मेहमानों के आगमन की पूर्वसूचना देता है जब कि विवाह की ज्यौनार के समय अचानक रोशनी बंद हो जाना अनिष्ट की आगाही करता है। घर में विषैले सांप का आना और गांव के सिवान में सियारों-खरगोशों का दिखाई देना अशुभ माना जाता है। घर के सामने कौआरोर मचना परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु का संकेत करता है। अपेक्षा से अधिक फसल भी खेत के स्वामी की मृत्यु की पूर्वसूचना देती है।

अवित्तम या रेवती नक्षत्र में किसी की मृत्यु होना परिवार के अन्य सदस्यों के लिए दुखदायी माना जाता है। इस अरिष्ट को टालने के लिए या तो आंगन का फर्श बदलवा लिया जाता है या मकान के किसी हिस्से में मामूली रद्दोबदल करवा ली जाती है। शनिवार को होने वाली मृत्यु निकट भविष्य में परिवार के किसी अन्य सदस्य की मृत्यु की आगाही करती है।

भविष्यकथन

पेशेवर ज्योतिषियों द्वारा पंचांग और जन्म-पत्रियों की सहायता से भविष्य कथन

किया जाता है जो जन्म के समय प्रवर्तमान राशि और होराचक्र में सूर्यचंद्रादि ग्रहों की स्थिति पर आधारित रहता है। आजकल तो इसका प्रचार इतना बढ़ गया है कि साप्ताहिक या मासिक पत्रिकाओं में ही नहीं, दैनिक समाचारपत्रों में भी राशिभविष्य के स्तंभ नियमित रूप से छपने लगे हैं। ग्रहगति के अनुसार भविष्यकथन करने के एकमात्र विषय की चर्चा करने वाली कई पत्रिकाएं अलग से भी प्रकाशित होती हैं।

वंशपरंपरा से भविष्यकथन का पेशा करने वाली जातियों में वल्लुवार मुख्य है। इन लोगों ने भविष्यकथन के सिद्धांतों को छंदबद्ध कर लिया है। इन पद्यों को नंदी वाचकम् कहा जाता है और उनका ज्ञान पिता द्वारा ज्येष्ठ पुत्र को मौखिक रूप में दिया जाता है। परिवार के अन्य पुत्र और कोई पेशा कर सकते हैं। वल्लुवारों द्वारा किये गये भविष्य कथन की ग्रामीण समाजों पर बड़ी मजबूत पकड़ पायी जाती है।

संगम साहित्य में मंदिरों के पुजारियों के वंशज होने वाले निमित्तकरण नामक दैवज्ञों का उल्लेख पाया जाता है। ये लोग मंदिरों से संबद्ध रहते थे और पूजा अर्चा के समाप्त हो जाने पर लोगों के भविष्य का कथन करते थे।

संगम गौरवग्रंथों में उल्लिखित 'अकवल मगलिर' की वंशजा के रूप में लोकप्रिय होने वाली कुरतियों (जिप्सी लड़कियों) के लिए भविष्यकथन हमेशा से बड़ा मुनाफे का धंधा रहा है। भविष्यकथन अनादि काल से इन स्त्रियों का पेशा रहा है। वे गुलेल से पक्षियों और गिलहरियों का शिकार करती हैं और कांच के मनके, सुइयां, चाकू, कैंची, ताले आदि बेचने का आनुषंगिक व्यवसाय भी करती हैं। वैयक्तिक भविष्यकथन के अतिरिक्त वर्षा की आगाही करना भी उनकी जीवन-पद्धति का एक विशिष्ट अंग है।

तमिलनाडु का सामुद्रिकशास्त्र और हस्तरेखा विज्ञान इन विद्याओं के पश्चिम में प्रचलित रूप से नितांत भिन्न हैं। हथेली के विविध चिह्नों, उभारों और रेखाओं के आधार पर भविष्यकथन किया जाता है और लोग उस पर विश्वास भी करते हैं।

'सारम् परतल' (श्वसन क्रिया) के आधार पर भी भविष्य-कथन किया जाता है। श्वासोच्छ्वास करते समय सांस प्रायः एक ही नथुने से चलती है। इस प्रणाली का भविष्यकथन इसी क्रिया पर आधारित रहता है।

लड़कियों में भविष्य जानने की एक और भी प्रणाली प्रचलित है। अपने भविष्य के बारे में चिंतित लड़की आंखें बंद करके जमीन पर दो वृत्त खींचती है। यदि दोनों वृत्त एक-दूसरे को छेदे बिना स्पर्श करें, तो उसे मनोरथ का पूरक माना जाता है। तमिल स्त्रियों के इस परमप्रिय दिल बहलाव को 'कूदल इझइत्तल' कहा जाता है।

छिपकली को भविष्यज्ञान की अंतर्दृष्टि वाला प्राणी माना जाता है। शकुनशास्त्र के आधार पर भविष्यवाणी करने वाले विशेषज्ञ छिपकली के चिचियाने की आवाज के विभिन्न अर्थ लगा कर उनका भविष्यकथन में उपयोग करते हैं। ये परिणाम छिपकली के चिचियाने के समय और चिचियाते वक्त उसके मुंह की दिशा के अनुसार बदलते रहते हैं।

पुरुषों में दाहिनी भौंह और दायें कंधे का असाधारण और आकस्मिक तौर पर उभर जाना अच्छे दिनों का पूर्व लक्षण माना जाता है। स्त्रियों में ये ही लक्षण बायीं ओर दिखाई देने पर सुखद भविष्य के अग्रदूत माने जाते हैं।

ऐसा माना जाता है कि स्वर्ग के देवता समियादी नामक माध्यमों के द्वारा भविष्य का संकेत करते रहते हैं। इनमें से कुछ केवल प्रश्न पूछा जाने पर उत्तर देते है जबकि कुछ पृच्छक को देखते ही उसके भविष्य का कथन करने लगते हैं। पूछने वाले की समस्याओं का निरूपण, उनके हल होने की संभाव्य समयावधि और उनके शमन के लिए आवश्यक होने वाले पूजापाठ, चढ़ावे आदि की विस्तृत जानकारी वे देते हैं। गांव वालों का बैल या बकरी खो जाने पर वे इन्हीं की सहायता प्राप्त करने को दौड़ते हैं। समय-समय पर इन माध्यमों को वर्षा की आगाही करने के लिए भी निमंत्रित किया जाता है।

भविष्य कथन करने वाले माध्यमों में मनुष्यों के अलावा कभी-कभी पशु-पक्षियों का भी समावेश होता है। कई प्रकार की छपी हुई भविष्यवाणियों में से किसी एक को चुनने के लिए पालतू तोतों को पिंजड़े के बाहर छोड़ा जाता है या किसी बच्चे को उनमें से किसी एक का स्पर्श करने को कहा जाता।

श्मशान के रहने वाले लंबाड़ियों को इन सबसे अधिक विश्वसनीय भविष्यवेत्ता माना जाता है। ये लोग अकसर बीती हुई बातों के संबंध में दुर्लभ और सूक्ष्म जानकारी दे सकते हैं। इस कारण से उनकी भविष्यवाणियों को बहुत

आदर और भय के साथ ग्रहण किया जाता है और उनकी मांगों को तुरंत पूरा कर दिया जाता है।

नाड़ी

यह तमिलनाडु की भृगुसंहिता है। जनसाधारण का इस पर अटल विश्वास होता है। श्रद्धालु भक्तों और आस्थावान आस्तिकों के लिए तो यह इंद्रियातीत और बुद्धि के दायरे से परे होने वाले ज्ञान का अक्षय स्रोत है। नाड़ी का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के सौजन्य की वृद्धि करना होता है। (कोटियड् कोटितुक-कोलवातु कोटिडम)। भविष्य कथन तो उनका आनुषंगिक कार्य है।

'नाड़ी' का शब्दार्थ होता है नब्ज। अत्यंत प्राचीन युग में रचित यह विद्या ताड़-पत्र की हस्तलिखित पोथियों में सुरक्षित है। इन्हें येड्डुगल अथवा नाड़ी-लिपि कहा जाता है। संसार के प्रत्येक व्यक्ति के भूत-भविष्य-वर्तमान का कथन करने के लिए अलग-अलग नाड़ियां लिखी गयी हैं ऐसा माना जाता है। इस हालत में भविष्यवेत्ता को पृच्छक की नाड़ी मिल जाय तो इसे उसके सौभाग्य की बात माना जाय यह स्वाभाविक है। कभी-कभी नाड़ी का कथन एक से भाग्यवाले अनेक व्यक्तियों पर लागू हो सकता है। इस हालत में उस नाड़ी का ताड़पत्र मिल जाना उस पूरे वर्ग के भाग्य पर निर्भर करता है।

जैसा कि कहा जा चुका है, नाड़ियां ताड़पत्र पर अंकित प्राचीन हस्तलिखित हैं। उनका व्याख्यापाठ चिंगलपुट जिले के अचिरुप्पक्कम् नामक स्थान के वल्लुवारों द्वारा किया जाता है। इसके जानकार पाठक दो-एक स्थानों पर भी पाये जाते हैं। अचिरुप्पकम् के वल्लुवारों के संबंध में एक लोकप्रिय आख्यायिका प्रचलित है। प्राचीन युग में आकाश में विशिष्ट प्रकार के वायुयान उड़ा करते थे। उन्हें फूलों से सजाया जाता था। एक बार किसी विमान में कोई खराबी हो जाने के कारण वह अचिरुप्पक्कम् नगर के पास अटक गया। किसी स्थानीय वल्लुवार की सहायता से उसकी मरम्मत हो सकी और वह पुनः आकाश में उड़ सका। इससे प्रसन्न होकर विमान के चालक देवता ने समूची वल्लुवार जाति को नाड़ीग्रंथों का पाठ और व्याख्या कर सकने की शक्ति प्रदान की।

नाड़ीवाचक वल्लुवार सप्ताहों तक विशिष्ट देवताओं की पूजा-अर्चा एवम् प्रार्थना करते रहते हैं तब कहीं उनकी नाड़ीवाचन की क्षमता स्थायी रूप से

टिक पाती है। कहा जाता है कि नाड़ी के ताड़पत्र कुछ ऐसी गूढ़ और सांकेतिक भाषा में लिखे गये हैं कि समुचित रूप से योग्यता प्राप्त, प्रशिक्षित, सच्चरित्र और सत्यनिष्ठ व्यक्तियों द्वारा ही उनका आकलन हो सकता है। प्रशिक्षित नाड़ीवाचक नाड़ी का पाठ सुस्पष्ट, त्वरित और धाराप्रवाह रूप से करते हैं। नाड़ी पढ़ते समय वे न तो किसी दुविधा में पड़ते हैं, न कहीं अटकते हैं। ऐसा भी माना जाता है कि नाड़ी पाठ के समय नाड़ी के रचयिता ऋषि स्वयं प्रकट हो जाते हैं और वल्लुवार-पाठक तो उनके संदेश के वाहक मात्र होते हैं। नाड़ी के रचयिता ऋषिमुनि तो निस्संदेह रूप से बहुमुखी प्रतिभा और सुविकसित व्यक्तित्व वाले महान् विद्वान थे। अतः नाड़ीपाठ को गहरी निष्ठा, अगाध विश्वास एवं अथाह धीरज के साथ ग्रहण किया जाता है। नाड़ी के संबंध में न तो कोई प्रश्न पूछा जाता है न कोई शंका ही व्यक्त की जाती है। प्रश्न पूछा भी जाय, तो उत्तम नाड़ीवाचक उसकी उपेक्षा करेगा। परंतु साथ ही इस बात का भी विश्वास होता है कि पृच्छक के मन में किसी प्रश्न या शंका का प्रादुर्भाव होते ही नाड़ी तुरंत उसका समाधानकारक उत्तर देने लगती है। नाड़ी के सूत्र हर दृष्टि से अपने आप में स्वयंपूर्ण और सर्वांगसंपूर्ण होते हैं। वे हर शंका का निराकरण करके कार्य की दिशा का सुस्पष्ट और ब्योरेवार निर्देशन कर देते हैं। वे पृच्छक को किसी तीर्थ विशेष की यात्रा करने का आदेश देते हैं या किसी धार्मिक उत्सव में सम्मिलित होने की सूचना। आवश्यकता पड़ने पर वे परिहारम् (प्रतिकारक उपायों) की सलाह भी देते हैं। भारत के बड़े-बड़े प्रसिद्ध व्यक्तियों और जिम्मेदार विद्वानों ने नाड़ी की भविष्यवाणियों और मार्ग-दर्शन की मुक्तकंठ से सराहना की है और उसे विस्मयजनक इंद्रियातीत विद्या घोषित किया है। कहा जाता है कि इस भूतल पर ऐसा कोई भी विषय नहीं—किसी देश की विदेशनीति या तकनीकी ज्ञान के क्षेत्र में भी नहीं—जिसका निराकरण नाड़ी में न हो चुका हो।

नाड़ियों का अगस्त्यार नाड़ी, वसिष्ठार नाड़ी, हुजंगर नाड़ी, ज्योति नाड़ी, कुमार नाड़ी आदि वर्गों में विभाजन हुआ है। प्रत्येक वर्ग समूह-विशेष के लोगों के लिए निर्धारित है।

नाड़ी का आरंभिक भाग प्रार्थनात्मक होता है; दूसरा भाग पृच्छक के भूत-भविष्य-वर्तमान से संबंध रखता है और तीसरे भाग में आशीर्वचन होता है।

नाड़ियों में स्थानों और व्यक्तियों का नामोल्लेख सांकेतिक ढंग से हुआ है। उदाहरणार्थ अमेरिका का उल्लेख 'अकारनाडु' (जिस देश के नाम का आरंभ वर्णमाला के आरंभिक अक्षर 'अ' से होता है) के रूप में होगा। तंजावर जिले के ओरथनाडु प्रदेश के निवासी का उल्लेख 'चोल देश के पूर्वार्द्ध में रहनेवाला व्यक्ति' कहकर होगा। लक्ष्मणन नाम वाले व्यक्ति का उल्लेख 'राम के भाई का नामधारक' के रूप में होगा। नाड़ी सूत्रों में निर्दिष्ट संदर्भों का सर्वांगीण विवेचन घटना के हो जाने के बाद ही हो पाता है।

कोई शंकाशील पृच्छक यदि एक नाड़ीवाचक से दूसरे के पास जाय, तो पहले की विषयवस्तु जहां से समाप्त हुई हो वहां से दूसरे के कथन का आरंभ मान लिया जाता है। पूर्णमासी और अन्य त्योहारों के दिन किया जानेवाला वाचन विशेष तौर पर प्रभावशाली और फलदायी माना जाता है। दरअसल नाड़ीपाठ का श्रवण एक ऐसा दुर्लभ अनुभव होता है कि संबंधित व्यक्ति (पृच्छक) के मन में नाड़ी के सूत्रों और उनके वाचक की शक्ति के प्रति एकांतिक श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है और इस विद्या की गरिमा से अभिभूत होकर वह जीवन भर के लिए नाड़ी के विज्ञान और दर्शन का उपासक बन जाता है।

ऐसा भी माना जाता है कि लालची, बेईमान, नास्तिक या निष्ठाहीन व्यक्तियों को नाड़ी के भविष्य-कथन की सही उपलब्धि नहीं होती। इतना ही नहीं, उनसे संबंध रखनेवाली नाड़ी तक उनकी पहुंच ही नहीं हो पाती।

4 रीति-रिवाज और परंपराएं

रिश्ते-नाते

तमिलनाडु में रिश्तेनातों और रक्त-गोत्र के संबंधों का आत्यंतिक विकास हुआ है और उन्हें बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। उनके स्रोत जनजीवन के बुनियादी अंशों में ढूंढे जा सकते हैं।

सबसे प्राथमिक इकाई है परिवार। माता-पिता और बच्चों से बना हुआ परिवार सामाजिक-जीवन का केंद्र-बिंदु है। इससे कुछ अधिक व्यापक इकाई है संयुक्त हिंदू परिवार जिसमें दो या तीन पीढ़ी तक के पर एक ही घराने के व्यक्तियों का समावेश होता है बाबा। दादी उनके विवाहित पुत्र और उनकी पत्नियां एवं बच्चे और कभी-कभी माता-पिता के न रहने के बाद भी कई भाई एक साथ सम्मिलित परिवार के रूप में रहते हैं। संयुक्त परिवारों में साधन-संपत्ति का सामूहिक उपयोग होता है। चौका-चूल्हा भी साझे का होता है और सारे सदस्य एक ही मकान में रहते हैं। इसके बाद सामाजिक दायरा विवाहजन्य है। पत्नी के संबंधियों के प्रति गहरा स्नेहभाव होता है। सास-श्वसुर के प्रति माता-पिता के जैसी पूज्य भावना व्यक्त की जाती है और पत्नी के मायके के लोगों का घर-गृहस्थी में महत्वपूर्ण स्थान होता है। विवाहित लड़कियों के मन में मायके के प्रति बड़ी ममता होती है। पुरुषों को भी अपनी पत्नी के परिवार के प्रति लगाव होता है और बच्चे तो ननिहाल को अपना दूसरा घर ही मानते हैं।

हर जाति के रस्मोरिवाज और प्रथाएं नाते-रिश्ते के लोगों को एक साथ जोड़े रखती हैं। गोत्र और वंश का संबंध जन्म, किशोरावस्था और विवाह से लगाकर मृत्यु और वार्षिक श्राद्ध तक पहुंचता है और हर प्रसंग पर उसका उल्लेख होता है। विवाह संबंध अकसर जाति के भीतर ही होते हैं।

तमिल लोकाचार में माता या पत्नी के माध्यम से जुड़े हुए संबंधियों में बड़ा

भाईचारा और लगाव एवम् एक-दूसरे के प्रति गहरा विश्वास पाया जाता है। पैतृक संबंध वाले चचेरे भाइयों के बीच की व्यावसायिक साझेदारियां अकसर क्षणजीवी होती हैं जबकि मातृकुलीय या पत्नी के मायकेवालों के साथ के संबंध दूर तक चलते हैं। मोती की सीपियां निकालने के लिए समुद्र में डुबकी लगाने जैसे खतरनाक व्यवसायों में, जहां व्यक्ति की सुरक्षा किसी अन्य व्यक्ति के विश्वास और सद्भाव पर आधारित रहती है, केवल साले की ही सहायता वांछनीय और विश्वसनीय मानी जाती है। कई जातियों में सामाजिक समारोहों में श्वसुर को अग्रमान देने का रिवाज होता है। विवाहादि सामाजिक प्रसंगों पर मामा के ऊपर तो अनेक जिम्मेदारियों का बोझ होता है और उसे कई निर्धारित कर्तव्य निबाहने पड़ते हैं। अनेक जातियों में विवाह का खर्च भी, सपूर्ण या आंशिक रूप में, उसी के जिम्में होता है जबकि कई जातियों में बहन की लड़की के साथ विवाह करने का अग्राधिकार भी मामा को ही होता है। उसके इनकार करने पर ही अन्य वर की तलाश की जाती है। कई जातियों में इस अधिकार को छोड़ देने के एवज में उसे क्षतिपूर्ति के रूप में पर्याप्त धन-संपत्ति देकर सतुष्ट करने का रिवाज पाया जाता है। यह संभव न हो, तो वादा किया जाता है कि उसके बाद वाली लड़की का विवाह उसी के साथ किया जायेगा।

अपनी-अपनी जाति में प्रचलित रूढ़ियों का पालन करने से व्यक्ति को जो औपचारिक महत्ता प्राप्त होती है उसे उसकी आध्यात्मिक मुक्ति के मार्ग में एक सोपान माना जाता है।

जन्म

बालक का जन्म—विशेष तौर पर विवाह के बाद पहली संतान का जन्म—किसी भी परिवार में बड़ी महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। संतानहीन धनिक परिवारों में तो पहले बालक के जन्म को उत्सव-समारोह का अवसर माना जाता है।

देह पर होने वाले ग्रीष्मऋतु के दुष्परिणामों को टालने के लिए अधिकांश तमिलजन सप्ताह में दो बार शरीर पर तिल के तेल की मालिश करते हैं। पुरुषों के लिए विहित वार हैं बुध और शनि, और स्त्रियों के लिये मंगल और शुक्र। लोकाचार की दृष्टि से इस प्रकार स्त्री-पुरुषों के लिए दो-दो अलग-अलग दिन

निर्धारित करने के पीछे कुछ हेतु था। तेल-मालिश करके अभ्यंगस्नान करने का दिन संपूर्ण विश्रांति का समय माना जाता है जिसमें संभोग विश्रांति का भी समावेश होता है। इस दृष्टि से देखने पर तमिलनाडु में यह प्रथा एक प्रकार से परिवार-नियोजन का काम करती है।

कुछ लोगों के मतानुसार मालिश के समय कान और पेट पर तेल नहीं लगाना चाहिये जबकि आंखों ओर पांव के तलवों पर अवश्य लगाना चाहिये। इस विषय का एक लोकगीत भी है—

विट्टुक केट्टु कातु
विडमल केट्टु कान्न
तोट्टुक केट्टु वयिरु
तोडमल केट्टु कालु।

इस गीत का अर्थ यह होता है कि कान को अकारण सींक से कुरेदते रहने पर श्रवण-शक्ति क्षीण हो सकती है। ठूंसपेट खाने से हाजमा बिगड़ सकता है। जबकि आंखों में काजल और गालों में पर्याप्त मात्रा में हल्दी अदि सौंदर्य-प्रसाधन लगाने से स्त्रियां अपने चेहरे की विकृतियों को सुधार कर अपने रूप को निखार सकती हैं। इसी प्रकार पांवों की विशिष्ट प्रकार की देख-भाल भी आवश्यक मानी जाती है।

गर्भाधान के बाद स्त्री को अकेली सोने नहीं दिया जाता। सूर्यास्त के बाद घर से बाहर निकलने पर और तेज मसालेदार चीजें खाने पर भी प्रतिबंध लगाया जाता है। ग्रहण के समय उसे पांवों को हिलाये-डुलाये बिना शांत सोये रहना पड़ता है। सगर्भावस्था में वह नदी पार नहीं कर सकती और पहाड़ियों पर नहीं चढ़ सकती।

गर्भधारण के पांचवें या सातवें महीने में वलइकाप्पु नामक संस्कार संपन्न होता है। इस अवसर पर गर्भवती को नयी चूड़ियां पहनाई जाती हैं। उसकी सास या ननद उसे पहले मंदिर में और बाद में मनिहार की दूकान में ले जाती हैं जहां वह अपनी इच्छानुसार चूड़ियां पसंद करती हैं। कई परिवारों में मनिहारिन को घर पर बुला लेने का रिवाज होता है। दोनों हालतों में चूड़ियों की खरीददारी

उपरोक्त समारोह का आवश्यक अंग होती है। चूड़ियां पहनकर वह घर के बड़े-बूढ़ों और सास-ननद आदि को प्रणाम करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करती है।

गर्भकाल के छठे या आठवें महीने में एक और संस्कार संपन्न होता है जिसे सीमंतम कहा जाता है। इस अवसर पर होम-हवन भी होता है और पति-पत्नी मिलकर पूजा-पाठ की सारी विधियां करते हैं। अग्नि प्रदक्षिणा करके संतति का वर मांगा जाता है और निरापद प्रसव के लिए प्रार्थना की जाती है। स्त्री प्रार्थना करती है कि पहली बार उसे पुत्र ही प्राप्त हो। यह इसलिए किया जाता है कि पति या सास को पुत्री-जन्म के कारण शिकायत का मौका न रहे और कोई उसे कन्याप्रसू कह कर ताना न मार सके।

पत्नी की गर्भावस्था में परंपरानिष्ठ ब्राह्मण दाढ़ी नहीं बनवाते। इस नियम का पालन न करने से गर्भस्थ बालक का अहित होने की संभावना रहती है। कुछ भी कहिये, अपने बीज का अंशदान करने के कारण गर्भाधान में पिता का बांटा रहा ही है। अतः बालक की कल्याण-कामना से लगाये गये बंधनों का पालन उसे करना ही चाहिये।

चैत्र (अप्रैल-मई) की भयानक गर्मी के दिनों में किसी बालक का जन्म न हो इसकी सावधानी दस महीने पहले से बरती जाती है। इसके लिए आडि (जौलाई-अगस्त) महीने में नवविवाहित दंपति को एक-दूसरे से अलग कर दिया जाता है। पूरे महीने के अनिवार्य विच्छेद को 'आद्विक्कु अषइतल' कहा जाता है।

प्रसव के बाद करीब एक पखवाड़े तक जच्चा-बच्चा को सबसे अलग निभृतावस्था में रखा जाता है। सातवें या ग्यारहवें दिन सगे-संबंधी नवजात शिशु को नहलाकर और वस्त्राभूषण से संवारकर फूलों से सजे हुए पालने में लिटाते हैं। बच्चों को अकसर बाबा, दादी, कुटुंब के किसी कुछ दिन पूर्व मृत व्यक्ति या परिवार के इष्टदेवता का नाम दिया जाता है। फिर उसकी कमर में आक के रेशों की बनी हुई करधनी पहनायी जाती है। इस मेखला में लहसुन की जड़ के सिरे, कुत्ते की छापवाल तांबे का सिक्का, एक तांबे का अर्द्धचंद्राकार तावीज और धातु का बना हुआ बेलनाकार पोला गंडा, जिसके भीतर बच्चे की नाभिनाल का एक टुकड़ा रखा होता है, आदि चीजें बंधी रहती हैं। बालक के गले में एकांतर ढंग से पिरोये हुए लाल और काले रंग के कांच के मनकों की माला पहनायी जाती है।

तमिलनाडु के ईसाइयों में बच्चे के जन्म के सातवें दिन—साधारणतः उस दिन के बाद पड़नेवाले रविवार को—उसे बपतिस्मा दिलाने को गिरजे में ले जाने की प्रथा होती है। वहां कोई स्त्री उसकी धर्ममाता की भूमिका अदा करती है। उसे बपतिस्मा-माता कहा जाता है। चर्च द्वारा दिये गये प्रमाण-पत्र में जन्मदाता माता-पिता के साथ-साथ बपतिस्मा दिलानेवाले माता-पिता का नाम भी दर्ज रहता है। किसी की बपतिस्मा-माता बनने की भूमिका कोई स्त्री जितनी अधिक बार निबाहती है समाज में उसकी उतनी ही प्रतिष्ठा बढ़ती है।

पलनी पहाड़ियों के मुडुव कबीले के लोग प्रसव के तीन दिन बाद जच्चा-बच्चा को नदी के पानी में नहलाते हैं।

जन्म के बाद बालक के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना होती है मुंडन और कनछेदन संस्कार। सिर के बालों का मुंडन करके और नहलाकर बालक को सुंदर नये कपड़े पहनाये जाते है। फिर उसके कानों को छेदकर उनमें बालियां पहनायी जाती हैं। इस अवसर पर संबंधियों-रिश्तेदारों और इष्ट मित्रों के साथ उत्सव मनाया जाता है। इस संस्कार के बाद बालक को अपने गुप्तांगों को अनावृत्त न रखने की हिदायत की जाती है। लड़कों को लंगोटी और लड़कियों को लगातार 'आरमुड़ी' पहने रहने की तालीम दी जाती है। 'आरमुड़ी' अंजीर के पत्ते के आकार की सोने या चांदी की पट्टी होती है। जो कमर में बांधी हुई करधनी से नीचे की ओर लटकती रहती है। लड़कियों के गुप्तांग का इससे गोपन हो जाता है। लंगोटी या आरमुड़ी पहने रहने से देखने वालों की दृष्टि बच्चों के गुप्तांगों पर नहीं पड़ती है।

स्कूल जाने की उम्र होने पर लड़कियां अपने लंबे बालों को गुंथवा कर चोटी बंधवा लेती हैं। चोटी प्रायः पीठ पर लटकती रहती है। उसके सिरे पर फुंदने बंधे रहते हैं। युवावस्था प्राप्त होने पर चोटी को चित्रविचित्र जूड़ी के रूप में बांध लिया जाता है। मध्यम वय की स्त्रियों का जूड़ा अर्धवर्तुलाकार होता है और वृद्धावस्था में वह 'कोंडइ' कही जानेवाली एक ढीली-ढाली गांठ का रूप धारण कर लेता है। कठिन परिश्रम करनेवाली श्रमिक स्त्रियां बालों को उमेठकर पीछे की ओर खोंस लेती हैं। इसे भी कोंडइ कहा जाता है।

लड़कियों का सयानी होना

लड़कियों के यौवनारंभ को महत्वपूर्ण सामाजिक घटना के रूप में मनाया जाता है। ब्राह्मणेतर जातियां इस समारंभ को एक प्रकार के वैवाहिक विज्ञापन का रूप दे देती हैं जिसमें निकट के संबंधियों और मित्रों को निमंत्रित किया जाता है। वयस्कता प्राप्त करने के दिन निकट की रिश्तेदार स्त्रियां लड़की को नहलाती हैं और फिर करीब सप्ताह भर के लिए उसे एकाकी अलगाव में रखा जाता है। इस दौरान में उसे खूब पौष्टिक भोजन कराया जाता है। उसके बालों में खोंसे हुए फूलों के साथ केशर का एक रेशा मिलाकर उन्हें किसी शुभ मुहूर्त में छप्पर के खपरैल के नीचे रख दिया जाता है। नवें रोज केशर और फूलों को बाहर निकाल कर उन पर दूध छिड़का जाता है। फिर उन्हें जमीन में गाड़ दिया जाता है और लड़की को एकांतवास से मुक्ति मिल जाती है। उसे फिर से नहलाया जाता है और दुलहिन की तरह साज-सिंगार करके मकान के अन्य हिस्सों में जाने की उसे छूट दे दी जाती है। दुष्ट तत्त्वों और बुरी नजर को टालने के लिए उसकी आरती उतारी जाती है। इसके बाद विशाल भोज का आयोजन होता है और निमंत्रित लोग लड़की को कुछ-न-कुछ भेंट-उपहार देते हैं।

यौवनारंभ और विवाह के दरमियान के कालखंड में लड़कियां कपाल पर 'संतुपोट्टु' (काजल की बिंदी) लगाती हैं। काजल आंखों में भी लगाया जाता है। संपन्न परिवारों में इस अवधि में वह परिवार के निकटतम लोगों को छोड़ कर किसी के सामने बाहर नहीं निकलती। सिंगार के लिए प्रयुक्त गहनों और फूलों की विविधता पर भी पाबंदी लग जाती है। वह केवल विशिष्ट प्रकार के फूल और आभूषण ही धारण कर सकती है। उसकी केशरचना भी विशिष्ट प्रकार की होती है। आजकल क्वांरी लड़कियों को कालेज में और अजीविका के निमित्त से दफ्तरों में जाना पड़ने के कारण ये सारे प्रभेद अदृश्य होते जा रहे हैं। अब उनकी केशभूषा, वेशभूषा या आभूषणों के आधार पर उनकी वैवाहिक स्थिति का अंदाजा लगाना प्रायः असंभव हो गया है। विधवाओं के संबंध में चली आने वाली परंपराएं भी अब नष्ट हो रही हैं। उच्च समाज के सुशिक्षित तबकों में इन अर्थहीन परंपराओं के विरुद्ध अब बड़ा मानसिक विक्षोभ उत्पन्न हो गया है। वे अब विधिनिषेधों के सारे बंधनों से मुक्त, कुंठा-बाधाहीन उन्मुक्त जीवन जीना चाहते हैं।

लड़कों का वयस्कता में पदार्पण

चेट्टीनाडु के चेट्टियारों में वयस्कता प्राप्ति के प्रतीक स्वरूप लड़कों के लिए कार्तिगै और लड़कियों के लिए तिरुवधिरै नामक संस्कार संपन्न किये जाते हैं। परंपरा का तकाजा है कि विवाह से पहले किशोरावस्था में हर लड़के-लड़की को इन विधियों से संस्कारित होना ही चाहिये।

इनमें से लड़कों के संस्कार का आयोजन केवल कार्तिगै (नवंबर-दिसंबर) महीने में कृत्तिका नक्षत्र की अवधि में ही हो सकता है और लड़कियों के समारोह की योजना मरगझी (दिसंबर-जनवरी) महीने में तिरुवतिरै नक्षत्र के आरोहकाल के दरमियान। इन विधियों से संस्कारित होकर वयस्कता के क्षेत्र में पदार्पण करने को उद्यत लड़के-लड़कियों के मन में इस समय गौरव, दायित्व और उत्तेजना की मिली-जुली भावना रहती है। लड़कों को बालिग घोषित करने की इस प्रकार की एक प्रथा यहूदियों में भी प्रचलित है। बच्चों को वयस्क स्त्री-पुरुषों की जिम्मेदारियां प्रदान करने वाला यहूदियों का यह परंपरागत संस्कार बार-मित्जवाह का त्योहार कहलाता है।

कार्तिगै संस्कार के दिन लड़के के पैतृक परिवार और ननिहाल के लोग एकत्रित होकर उसे बधाई देते हैं। लड़का शानदार नये कपड़े पहनता है। उसके सर पर साफा बांधा जाता है और कंधों पर दोशाला ओढ़ाया जाता है। फिर घोड़े पर सवार होकर वह मंदिर जाता है। उस रोज गांव या नगर में चेट्टियार जाति के अनेक लड़कों के लिए अनेक घरों में यह समारोह एक साथ होता रहता है। धार्मिक विधियां पूरी होते ही वयस्कता प्राप्त सब लड़के एकत्रित होते हैं और बाद का समारोह सामुदायिक तौर पर मनाया जाता है। सबको घोड़ों पर बिठा कर शहर की मुख्य सड़कों से जुलूस निकाला जाता है। मार्ग में प्रत्येक के घर के सामने यह बारात कुछ समय के लिए रुकती है। यहां उन्हें बुजुर्गों का आशीर्वाद और हमजोलियों की शुभकामनाएं प्राप्त होती हैं। बुरी नजर से बचाने के लिए हर घर के सामने उनकी आरती उतारी जाती है।

कार्तिगै संस्कार संपन्न हो जाने पर ही विवाह की बात सोची जा सकती है। बल्कि इस समारंभ को एक प्रकार से विवाह योग्य लड़कों की पात्रता का विज्ञापन माना जा सकता है। विवाह योग्य लड़कियों के माता-पिता इस बात को

ध्यान में रख कर आगे की बात-चीत शुरू कर देते हैं।

क्योंकि यह संस्कार लड़के का बालिग पुरुष में रूपांतर कर देता है, इसके संपन्न होते ही उसे कई अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जिनमें से एक मृत्यु-संबंधी है। जिनका कार्तिगै संस्कार नहीं हुआ उन्हें नाबालिग बच्चे समझा जाता है। इस अवस्था में मृत्यु हो जाने पर उनकी मृतदेह को जमीन में गाड़ दिया जाता है। परंतु कार्तिगै संस्कार संपन्न हो जाने पर वयस्क पुरुषों के अंत्येष्टि संबंधी सारे अधिकार उन्हें प्राप्त हो जाते हैं जिनमें अग्निदाह-संस्कार भी शामिल है।

लड़कियों के सयानी होने के संस्कार को तिरुवाधिरै या संक्षेप में आधिरै कहा जाता है। आधिरै लोकसाहित्य में उल्लिखित एक सतीसाध्वी का नाम है जो अपनी शालीनता के कारण अमर हो गयी है। आधिरै ने जब मणिमेखलै को एक मुट्ठी भात दिया था, तो बदले में यह कामना की थी कि पूरे संसार को भूख से मुक्ति मिल जाय। तिरुवाधिरै संस्कार के रूप में उस शिव संकल्प की परंपरा आज भी चली आ रही है जो स्त्री के परंपरागत अन्नपूर्णा स्वरूप की अभिव्यक्ति करता है। आधिरै से संस्कारित होने वाली लड़कियां अपनी सहेलियों के साथ गांव भर के सजातीय घरों का चक्कर लगाती हैं और निम्नलिखित समूहगीत गाती रहती हैं :

हम नाचते हुए कूच कर रही हैं;
हमें अवरक्के का भोजन कराओ।
हम गाते हुए आगे बढ़ रही है;
हमें अपने पडवरणकै दो।
हम टोली बना कर आयी हैं;
हमें कोलावरंग मिलना चाहिये।

(आवरक्कै=सेम के बीज; पडवरणकै=लोबिया; कोतावरंग=गवार)

विलक्किडु कल्याणम्

यह प्रथा तिरुनेलवेल्ली के कारकर्तरों में पायी जाती है। यह जाति वेल्लालों का ही एक सगोत्रगामी संप्रदाय है। यह तमिल मास तई (जनवरी) की पहली तिथि को किया जाने वाला विवाह का लघु संस्करण है। उस दिन इस जाति की

सातवें या नवें वर्ष में होने वाली (जिन्हें अभी रजोदर्शन नहीं हुआ) सारी लड़कियों के गले में नवमालै कहलाने वाला मंगलसूत्र पहनना पड़ता है। यह मंगलसूत्र दस मूंगे और नौ सोने के मनकों को एक के बाद एक पिरोकर बनाया जाता है। इसे लड़की के गले में उसके नाना, नानी, मामा या मामी द्वारा पहनाया जाता है। विधि का संचालन करने के लिए ब्राह्मण पुरोहित को बुलाया जाता है। इसके बाद लड़की कांसे के दीवटों में दीपक जलाती हैं। गले का मंगल-सूत्र जब उसका वास्तविक विवाह होता है तभी बदला जाता है। परंतु उस समय भी पुरानी नवमालै की यादगार-स्वरूप उसके कुछ मनके नये मंगलसूत्र में पिरो दिये जाते हैं। इस नये सौभाग्यचिह्न को 'ताली' कहा जाता है।

विवाह

विवाह संबंध साधारणतः जाति के अंतर्गत ही होते हैं और इस दायरे में भी लड़के-लड़कियों को अनिबंध आजादी रहती हो, यह बात नहीं। स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद देश में सामाजिक परिवर्तन की जो प्रवृत्ति दिखाई दी है उसके कारण आजकल कुछ अंतर्जातीय और इक्का-दुक्का अंतर्धर्मीय विवाह भी होने लगे हैं। इतना ही नहीं, विवाह के बाद पति और पत्नी, दोनों को अपने-अपने धर्म की प्रथाएं और अपने-अपने समाज रस्मोरिवाज का पालन करने की छूट रहती है और उनके बच्चों को दोनों में से किसी एक का चुनाव करने की आजादी रहती है। फिर भी, अंतर्जातीय विवाह करने वालों को अब तक कुछ हिकारत की नजर से ही देखा जाता है। जाति के बाहर विवाह करने वालों की अनगिनत कठिनाइयों के किस्सों से जनसाहित्य भरा पड़ा है। उदाहरणतः लोकगीतों के मुथुपत्तन नामक तमिल मजनू का विजातीय प्रेमप्रकरण सफल तो हो गया; पर उसे उच्च-जातियों का रोष जीवनभर सहन करना पड़ा। इसी प्रकार नीची जाति की स्त्रियों के साथ विवाहबाह्य संबंधों की ओर से समाज आंखें भले ही मूंद ले, पर मन में उसे इस बात की खातिरजमा रहती है कि ऐसे संबंधों की संतति को वैध संतान की तरह सांपत्तिक या कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं होंगे।

देशभर के हिंदू समाज की तरह तमिलनाडु में भी विवाह को स्वर्ग में जुड़ने वाला और 'जूड़िया संजोग' के अधीन संबंध माना जाता है। लड़के-लड़की की जन्मपत्रियां मिल जायं, तो विवाह निश्चित ही सफल हो सकता है। जन्मपत्री

के ग्रह मिल जाने पर दोनों ओर के खर्च आदि की बातें तय कर ली जाती हैं। दहेज की नकद रकम और लेनदेन की अन्य वस्तुओं की ब्योरेवार सूचियां बना ली जाती है। इसके बाद सगाई और विवाह की तिथियां निश्चित की जाती हैं। इस व्यवहार में दोनों पक्षों के इष्ट-मित्र और पेशेवर मध्यस्थों की सहायता ली जाती है। ब्योरा तय करने की यह बात-चीत कभी-कभी प्रदीर्घ हो कर सौदेबाजी का रूप धारण कर सकती है। वैसे कहावत यह है कि 'हजार झूट बोलकर भी विवाह संबंध पक्का करवा देने की कोशिश करनी चाहिये।'

ममेरे और फुफेरे भाई-बहिनों के साथ परस्पर विवाह तमिलनाडु में व्यापकता से प्रचलित हैं। कई जातियों में वयस्क पुरुष का अपनी बहन की लड़की (भांजे) के साथ विवाह जायज माना जाता है जबकि कुछ समाजों में यह पूर्णतः निषिद्ध है। सगोत्र या सपिंड विवाह अकसर नहीं किये जाते। मारवार, यधवार और नाडर जातियों में गोत्रबाह्य विवाह करनेवाले छोटे-छोटे समूह होते हैं जो 'किलै' कहलाते हैं। ये किलै ही इनके गोत्र हैं। ये जातियां मातृसत्तात्मक हैं। इनमें वंशपरंपरा माता की ओर से चलती और गोत्र भी माता से पुत्रियों को, इस प्रकार स्त्री परंपरा से माना जाता है।

इन जातियों में एक ही किलै के सदस्यों का अपनी किलै के अंतर्गत विवाह नहीं हो सकता। फूफी या मामा की लड़की के साथ का विवाह संबंध सर्वथा सर्वश्रेष्ट माना जाता है (क्योंकि ये दोनों परिवार आवश्यक तौर पर भिन्न किलै के होते हैं)। इसी प्रकार विवाह की बात-चीत का आरंभ किस ओर से हो, वरपक्ष की ओर से या लड़की वालों की तरफ से, इस बात को लेकर प्रत्येक उपजाति की अपनी-अपनी परंपराएं होती हैं।

थाई (फसल काटने के बाद का महीना) विवाह के लिए सर्वश्रेष्ठ समय माना जाता है। विवाहोत्सुक क्वांरों में एक कहावत प्रचलित है: 'थाई पिरांथाल बझी पिरक्कम' (थाई मास में कुछ-न-कुछ डौल बैठेगा ही)।

विवाह अकसर वधू के घर पर ही होता है। मुक्कुलथर, नाडर, चक्किलियन और कुछ अन्य जातियों में समारंभ वर के घर पर होता है। इनमें की कुछ जातियां आजकल इस प्रथा में परिवर्तन कर रही हैं।

वरपक्ष वधू के घर बाजे-गाजे के साथ बारात लेकर जाता है। साथ में वधू के लिए ताली (मंगल-सूत्र), के उपरांत पान, सुपारी, फल, फूल, हल्दी से रंगा सूत

का लच्छा (कलावा) सूखा मेवा, साड़ियां, आदि वस्तुएं ले जायी जाती हैं। विवाह के लिए भव्य पंडाल (शामियाना) बनाया जाता है जो नारियल के सूखे पत्तों से बुनी हुई चटाई से बना हुआ होता है। वैसे विवाह-मंडप के लिए 'पंडाल' शब्द ही चलता है। पर चेट्टीनाडु में पंडाल शब्द का प्रयोग अंत्येष्टि-क्रिया, शोकसभा, आदि के लिए बनाये गये शामियाने के लिए ही होता है। विवाह आदि शुभ-समारोहों के मंडप के लिए 'कोट्टाहै' शब्द प्रचलित है।

विवाह-मंडप के नीचे यज्ञ की वेदी और वर-वधू के बैठने के लिए चौकियां बनायी जाती हैं। विवाह-संस्कार पूरा होने तक वधू वर के दाहिनी ओर की चौकी पर बैठती है। विवाह की धार्मिक विधियां और वधू के गले में मंगल-सूत्र पहनाना, गठबंधन, वरमाला आदि संस्कार पूरे हो जाने पर वह उसकी बांयीं ओर बैठती है। दोनों को पूर्वाभिमुख बैठाया जाता है। इसके बाद नारियल फोड़े जाते हैं और देवताओं की प्रार्थना की जाती है। मंगल-सूत्र को थाल में रखकर उपस्थित मेहमानों के बीच घुमाया जाता है और सबके आशीर्वाद की याचना की जाती है। इस प्रकार सद्भावनाओं से पवित्र किये हुए मंगलसूत्र को वधू के गले में पहनाने में वर की बहन उसकी सहायता करती है। अकसर तीन गांठें बांधी जाती हैं। इसके बाद शंख ध्वनि की जाती है और तारस्वर में नादस्वरम् (शहनाई) बजाये जाते हैं।

थेवर और अहमुदियार जातियों में कुलवैयिदल नामक एक विचित्र प्रथा पायी जाती है। इसमें विवाह-समारंभ के लिए एकत्रित स्त्रियां ऐन मुहूर्त के समय तारस्वर में चीखना शुरू कर देती हैं। इस चीख-पुकार को ही कुलवै कहा जाता है। इसके पीछे शायद यह हेतु रहा हो कि मंगलसूत्र पहनाते समय किसी के छींकने या विसूरने की आवाज सुनाई न पड़े।

नवविवाहित जोड़े के ऊपर फूल और रंगे हुए अक्षत बरसाये जाते हैं। इसके बाद वर-वधू अपनी फूलमाला एक-दूसरे के गले में पहनाते हैं। फिर वधू का दाहिना हाथ पकड़कर वर मंत्रपूत अग्नि या हवनकुंड (मनवर) की तीन प्रदक्षिणाएं करता है। इसके बाद वर-वधू दोनों के माता-पिता और उपस्थित बुजुर्गों को साष्टांग प्रणाम करते हैं। सब लोग उन्हें दीर्घ आयु और विपुल संतति का आशीर्वाद देते हैं।

अनेक जातियों में विवाह की विधियां संपन्न करवाने के लिए ब्राह्मण-पुरोहितों

को बुलाया जाता है जबकि नाडर और कोंगु बेल्लाल आदि जातियों के लोग इस पद पर सजातीय बुजुर्गों की नियुक्ति करते हैं। ब्राह्मणों के वर्चस्व के खिलाफ चलने वाले 'आत्मसम्मान' के आंदोलन ने इधर काफी जोर पकड़ा है और लोग विवाह-संस्कार में ब्राह्मणों का यथासंभव बहिष्कार ही करते हैं। इन आधुनिक विवाहों की अध्यक्षता प्रायः राजनीतिक नेताओं या साहित्यिक विद्वानों द्वारा की जाती है। सन 1968 से इस प्रकार के विवाहों को कानूनी मान्यता भी प्राप्त हो गयी है।

कुछ दिलचस्प प्रथाएं

यहां पर विवाह के अवसर पर प्रचलित कुछ दिलचस्प प्रथाओं का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। विवाह के भोज में दाल का होना अनिवार्य माना जाता है। यहां तक कि इस संबंध में एक कहावत प्रचलित है: 'बिना दाल के ब्याह कैसा।' ज्योनारों में कुछ विशिष्ट प्रकार के खाद्य-पदार्थों का परोसा जाना इस बात की सूचना देता है कि निमंत्रितों को अब मेजबान से बिदा लेकर चले जाना चाहिए। इस प्रस्थान-सूचक संकेत के लिए विभिन्न जातियों ने अपनी-अपनी बिशिष्ट व्यंजन-सूची निश्चित कर रखी है।

अनेक जातियों के विवाह की रंगरेलियों में किसी न किसी प्रकार की जलक्रीड़ा का समावेश अवश्य होता है जिसमें हल्दी से रंगा हुआ पीला पानी एक-दूसरे पर छिड़का जाता है। साला, साली, सलहज, साढ़ू, बहनोई, देवर, भाभी आदि कुछ रिश्ते अधिक प्यार के माने जाते हैं और इनके साथ खुलकर रंग खेला जाता है। किसी जमाने में विवाह-समारोहों का आरंभ लेन-देन को लेकर तूतू-मैंमैं से ही होता था, जिसकी परिणति प्रायः दोनों पक्षों के बीच अघोषित शीतयुद्ध में होती थी। इस हालत में गरमागमी को कम करने में और चीख-चीखकर सूखे हुए गलों को तर करने में यह हल्दी के पानी का सिंचन किसी ओषधीय नुस्खे का काम करता होगा।

कई जातियों में नालंगु नामक प्रथा पायी जाती है। इसमें दुलहिन कोई गीत गाती है और वर को उत्सव में शरीक होने के लिए निमंत्रित करती है। फिर वह वर के पांवों पर कच्ची हल्दी और गुलाल मलती है। वर भी यही करता है। दुलहिन वर के शरीर पर चंदन लगाती है और वर उसे फूलों से सजाता है।

फिर वह उसे दर्पण दिखाती है। इसके बाद दोनों फूलों की गेंद से बागछड़ी खेलते हैं। मिठाइयां खायी-खिलायी जाती है। साथ-साथ रस्म के हर अंश के अनुरूप गीत गाये जाते हैं।

परंपरावादी ब्राह्मणेतर वैष्णवों में विवाह के कार्यक्रम के अंतर्गत वनदेवता को चढ़ावा चढ़ाने की प्रथा का भी समावेश होता है। उनमें एक ऐसा विश्वास पाया जाता है कि वर का वधू पर सही अधिकार तभी होता है जब वह एक बाघ मार ले। वधू को विवाह के बाद उसका मामा अपने घर ले जाता है। परंपरा से उस पर उसी का अधिकार होता है। बाद में वर द्वारा बाघ के शिकार की शर्त पूरी की जाने पर मामा वधू को युक्त करके वर को सौंप देता है।

तूतीकोरिन समुद्रतट के ईसाई मछेरों के विवाह-संस्कार में भी कुछ इसी प्रकार का रिवाज देखा जाता है। इसे 'वासल पाडि मरिथल' कहा जाता है। वर को वधू के 'परंपरागत स्वामी' को नकदी या जेवर के मुआवजा अदा करना पड़ता है। उसका अनुमोदन और रजामंदी प्राप्त करने के बाद ही वह दुलहिन को शयनकक्ष में ले जा सकता है।

कुछ जातियों में दोनों पक्ष एक-दूसरे को विवाह की दावत में निमंत्रित करते हैं। इस अवसर पर निम्नोक्त गीत मानो अनायास ही उनके गले में से फूट पड़ता हैं :

परुप्पुम अन्नमुम पायसमुम
पलवकै करिकालुम वन्तरुली
वेना मट्टुम वित वितमाहवे
तेन्कै पचड़ी खिचड़ी टंकेर
परंगिकै कुटुदन पलपल करिहल
मंगै उरगै मानामिकु सांबार
रसमुदन दिव्य पच्चनंगलुडने।

अर्थ

दाल-चावल और मीठा हलवा
उत्तम तरकारियों के साथ तैयार है
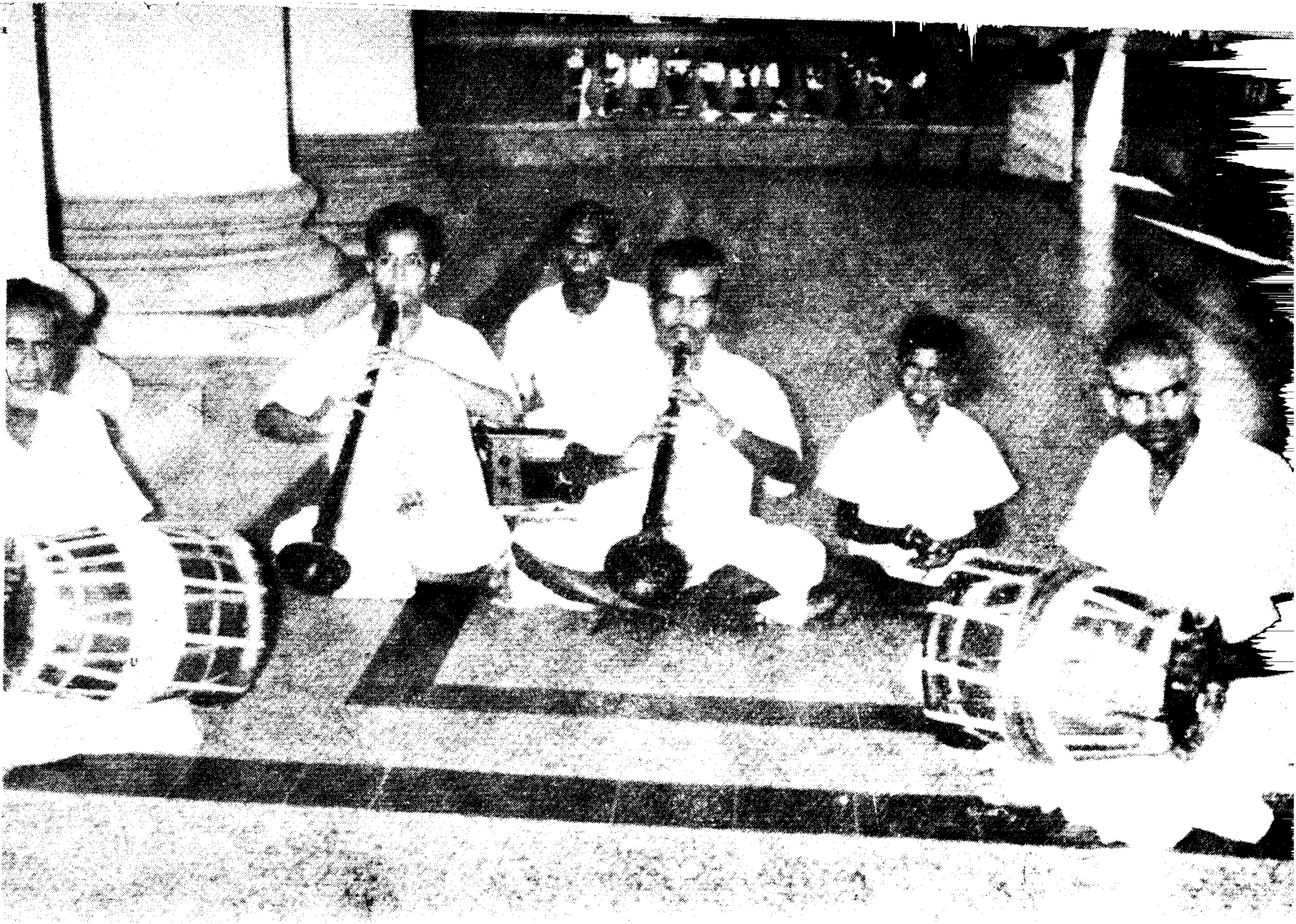
नादस्वरम्

लोक वाद्य तारैं

लोक वाद्य तप्पट्टै

क्या आप भरपेट खा कर
अवसर की शोभा नहीं बढ़ायेंगे ?
नारियल की बरफी और
कुशल रसोइयों द्वारा बनाये हुए
कई प्रकार के व्यंजन
मिर्च-मसाला उचित अनुपात में
पड़ा हुआ स्वादिष्ट सांबार[1]
चटपटा आम का अचार
सुप्रसिद्ध रसम्
और लोकप्रिय नमकीन
सब तैयार है।

जन-जातियों की विवाह प्रथाएं

पझियारों में विवाह एक सीधी-सादी रस्म होती है। दोनों पक्षों ने कबीले के बुजुर्ग मुखियों के सामने अपना इरादा व्यक्त करके उन्हें ठाठदार दावत दी कि विवाह संपन्न हुआ मान लिया जाता है। उनकी पारिवारिक रचना में श्रम का विभाजन भी बड़ा सरल होता है। पुरुष कंदमूल एकत्र करने का और जंगली पशुओं को पकड़ने का व्यवसाय करते हैं। स्त्रियां खाना पका कर पुरुषों का पेट भरती हैं और बच्चों की देखभाल करती हैं। बस, इससे अधिक अपेक्षा कोई किसी से नहीं करता।

टोड जनजाति में अमावस्या सहित किसी भी रोज विवाह समारोह हो सकता है। जनजाति के एक मुंड (आवासस्थान) से दूसरे मुंड तक ढोलों की सांकेतिक आवाजों द्वारा विवाह की सूचना दे दी जाती है। इसमें संदेश वाहक की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके कोई दो सौ मुंड हैं। सबको सूचना मिलते ही हर व्यक्ति के

---

[1]सांबार विभिन्न प्रकार की सब्जियां और मसाले डालकर पकायी हुई पतली अरहर की दाल होती है। कभी-कभी प्याज भी डाला जाता है। दक्षिण भारत की सुप्रसिद्ध इडली इसी के साथ खायी जाती है। एक अमरीकन नौसैनिक ने इसका मजेदार वर्णन कियाहै। उसके अनुसार 'इडली दक्षिण भारत का एक चावल से बना व्यंजन है जिसे सांबार नामक समुद्र में डुबो कर खाया जाता है।'

विवाह में पूरी जनजाति एकत्र हो जाती है और खान पान द्वारा उसे समारोह पूर्वक मनाया जाता है।

विवाह के एक रोज पहले किसी बाग या मैदान में प्रार्थनासभा होती है। विवाहविधि पेड़ों की झुरमुट की घनी छाया में संपन्न होती है। प्रकाश के लिए पास के किसी वृक्ष की कोटर में मशाल जला दी जाती है। रात को पूरे स्थान की सफाई की जाती है। फिर जमीन में वर-वधू के प्रतीक रूप दो लकड़ियां गाड़ी जाती हैं। इन्हें काले कपड़ों से सजाया जाता है और उनकी देवता के समान पूजा की जाती है। वधू द्वारा नयी हंडिया में पकाया हुआ भात केले के पत्तों में इन प्रतीकों के सामने परोसा जाता है। प्रकाश की व्यवस्था के लिए दुलहिन के प्रतीक रूप लकड़ी को चार जगह से सुलगा दिया जाता है। इसके बाद दुलहिन के परिवार का कोई लड़का घड़ा भर कर पानी लाता है और उसे प्रतीक-रूप लकड़ियों पर उंडेल देता है। टोडों की चरम संपत्ति मानी जाने वाली भैंसों पर भी पानी उंडेला जाता है। बचा हुआ पानी वर-वधू के ऊपर उंडेल देता है। इसके बाद दावत होती है।

दूसरे दिन सभी टोड जन जाति के लोग पारंपरिक पोशाक पहन कर एकत्रित होते हैं। स्त्रियां बुजुर्गों से आशीर्वाद मांगती हैं। फिर सभी मद्य पान करते हैं। और विवाह के स्थान पर पहुंचते हैं। यह, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, किसी टीले पर स्थिति पेड़ों के झुरमुट में होता है। वहां घी का दिया जला कर किसी पेड़ पर लटका दिया जाता है।

वर-वधू जनजाति के बुजुर्गों की पूजा करते हैं। वर के पिता की अनुमति से मंगलसूत्र वर को दिया जाता है जिसे वह वधू के गले में पहनाता है। पूरा समय समस्त उपस्थित लोग समूहगीत गाते रहते हैं। इसके बाद सादा भोजन होता है। फिर सब अपने-अपने घर लौट जाते हैं और विवाह समारोह पूरा हुआ मान लिया जाता है।

विवाह की पूरी तैयारी में शुरू से आखिर तक वर-वधू, दोनों हाथ बंटाते हैं। यहां तक कि विवाह के दिन भी अपने हिस्से का मेहनत-मशक्कत का काम वे बिना किसी सकुचाहट के करते हैं।

कुन्नवार कबीले में सगाई की रस्म विवाह के जितनी ही महत्वपूर्ण मानी जाती है। योजनानुसार विवाह-समारोह निर्बिघ्न पूरा होने के लिए प्रार्थनाएं

की जाती हैं। देवताओं पर चंदन और फूल चढ़ाए जाते हैं और उनकी स्तुति के स्तोत्र गाये जाते हैं। उदाहरणार्थ :

कोत्तेन मालइयम्
कुलचिट्टेन चंदनमुम्
आरुक्कु उहन्ततु
कल्लु दि[illegible]कम् अवरुक्के उहन्ततु टल्लुलोलम् ।

तलाक और पुनर्विवाह

मुक्कुलतारों में तलाक को एक साधारण-सी बात माना जाता है। पति-पत्नी दोनों में से कोई भी किसी समय विवाह-विच्छेद कर सकता है।

पति-पत्नी में यदि अन-बन हो जाय तो वे अपनी जाति के पंचायतदार बुजुर्गों के पास जाकर नालिश करते हैं। तुरंत पंचायत बैठती है, दोनों ओर की शिकायतें सुनी जाती हैं और तुरंत निर्णय सुना दिया जाता है। यह निर्णय कानून की कसौटी पर खरा चाहे न उतरे, पर वह मनुष्यता के पहलू को दृष्टि में रखकर किया जाता है और उससे प्रायः दोनों पक्षों का समाधान हो जाता है इस निर्णय को कार्यान्वित करने में यथासंभव अधिक से अधिक समय लगाया जाता है ताकि दोनों पक्षों को अपने मतभेदों को सुलझा कर समझौता करने का पर्याप्त समय मिल सके। इस पर भी यदि वे तलाक पर ही अड़े रहें, तो पंचायतदार अपना फैसला सुना देते हैं और विवाह-विच्छेद की अनुमति मिल जाती है।

यह फैसला सुनाने की रस्म बड़ी दिलचस्प होती है वर पक्ष के लोग अपने घर के छप्पर से कुछ खपरैल निकालकर उन्हें पान-सुपारी के साथ पत्नी के मायके वालों को भेज देते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि अब तो मनमुटाव इतना बढ़ गया है कि एक छप्पर के नीचे रहना संभव नहीं; अतः परिवार को टूटा हुआ मान लिया जाय। तलाक हो जाने पर बच्चों की देख-भाल अकसर पिता द्वारा की जाती है।

इसके बाद पति बुजुर्गों के निर्णयानुसार निश्चित रकम मुवावजे के रूप में पत्नी को देता है। विवाह के समय कन्याविक्रय के रूप में कुछ रुपये का आदान-प्रदान हुआ हो, तो तलाक चाहने वाली स्त्री को वह रकम पति को लौटा देनी पड़ती है।

इसके बाद वह अपनी चूड़ियां उतार कर पति के दरवाजे पर रख देती है और चली जाती है। तलाक के बाद दोनों को नया जीवनसंगी चुनने की आजादी रहती है। अक्सर ऐसा देखा गया है कि इसके बाद दोनों सुख-शांति से रहते हैं। और दोनों के मनों में कोई मैल नहीं रहता। अपनी भूतपूर्व पत्नी के प्रति लोग किसी प्रकार की दुश्मनी नही रखते और कोई झगड़ा-फसाद भी नहीं करते फिर चाहे वह पड़ौस में ही किसी और के साथ घर बसाकर क्यों न रह रही हो। कुछ नीची मानी जाने वाली जातियों में तो स्त्री के साथ इस हद तक उदारता बरती जाती है कि उसके बदचलन हो जाने पर या जारज संतान पैदा करने पर भी उसे समाजच्युत नहीं किया जाता।

खेती-बारी करनेवाले बड़े काश्तकार, जिनके पास पर्याप्त जमीन होती है, अपने विवाह बाह्य संबंधों को सामाजिक मान्यता दिलवाने के हेतु से, नियमित रूप से अपनी पत्नियों को तलाक देते रहते हैं। बहुविवाह-प्रतिबंधक कानून के बावजूद आज भी वे लगातार वयस्क स्त्रियों को तलाक देकर, खेतीबारी के काम में उनकी सहायता कर सकने वाली कम उम्र की लड़कियों से विवाह करते रहते हैं।

मुक्कुलतार और अन्य कई जातियों में विधवा को पुनर्विवाह की छूट रहती है।

मृत्यु

नाते-रिश्ते और वंश-गोत्र के संबंधों की आत्मीयता का मौत-मांदगी के अवसरों पर उत्कटता से परिचय मिलता है। विवाह की तरह मृत्यु के बाद के सारे क्रियाकर्म में भी स्त्री के पीहर वालों के सुनिश्चित अधिकार और कर्तव्य होते हैं। उदाहरणार्थ विधवा के लिए सफेद वस्त्रों का प्रबंध उसके मायके के परिवार का मुखिया ही करता है। अपनी लड़की के दुःख के प्रति संवेदना प्रकट करने के लिए उसे मृत व्यक्ति के क्रियाकर्म के खर्च का बोझ भी आंशिक रूप से अपने ऊपर लेना पड़ता है। फिर उसे नगदी के रूप में अदा किया जाय या वस्तुओं के रूप में, यह अलग बात है।

बच्चों के नामकरण या शादी-विवाह के अवसर पर मामा की ओर से बहुमूल्य वस्त्र और सोने के आभूषण भेंट दिये जाते हैं। विवाह में दहेज की रकम का

कुछ भाग मामा देता है। अपनी बहन के पुत्र-पुत्रियों के विवाह में अगुआ बनने का अधिकार भी मामा को ही होता है। सुख के या दुःख के, हर्ष के या शोक के किसी भी अवसर पर सारे सगे-संबंधियों को एकत्र करके उनका मार्गदर्शन करने की जिम्मेदारी भी अकसर उसी को निबाहनी पड़ती है।

तमिल परंपरा के अनुसार अमुक व्यक्ति 'मर गया' यह कहना टाला जाता है। इसके बदले वह 'स्वर्गवासी हो गया' या 'कैलासवासी हो गया' या उसे 'विष्णु के परमपद की प्राप्ति हो गयी' अथवा वह 'पल्लिपर्द येइतनम्' (मृतात्माओं के लोक में) पहुंच गया' इत्यादि मंगलवाची शब्दों की योजना की जाती है।

दिसंबर-जनवरी में पड़ने वाले 'मरगझी तिरुवदरै' के दिन या किसी भी एकादशी के रोज मृत्यु होना अत्यंत पुण्यशाली माना जाता है। किसी भी नगर या गांव में होने वाले किसी उत्सव या समारोह के दरमियान मृत्यु होना मरने वाले के लिए अशुभ माना जाता है। इन दिनों किसी के भी घर के सामने शोकसूचक संगीत बजाना निषिद्ध होता है। अतः मृत व्यक्ति को बिना बाजे गाजे के और बिना धूम-धाम के चुपचाप जाना पड़ता है।

शनिवार को होने वाली मृत्यु उसी परिवार में निकट भविष्य में होने वाली किसी और मृत्यु की पूर्व सूचना मानी जाती है। मसल मशहूर है: ' शनिप्पोनम् तानिय पोकट्टु' (मृतात्माएं शनिवार को अकेली नहीं जातीं)। शनिवार को होने वाली मृत्यु के अशुभ परिणामों को टालने के लिए या तो मकान के जिस हिस्से में मृत्यु हुई हो उसे ढहा कर नये सिरे से बनावाया जाता है या फिर अरथी को बाहर निकालने के लिए विद्यमान दरवाजों को छोड़ कर नया दरवाजा बनाया जाता है। ताकि मौत को भुलावा दिया जा सके कि जिस घर में वह घुसी और जहां से वह बाहर निकली, यह वही मकान है या कोई और। शनिवार को मृतात्माओं के अकेले न जाने की मान्यता का हल कभी-कभी एक सरल तरीके से कर लिया जाता है अरथी के साथ एक मुर्गा बांध दिया जाता है और उसे मृत व्यक्ति के साथ ही जला या दफना दिया जाता है।

किसी भी वयस्क व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर सबसे अधिक शोकान्वित उसकी पत्नी होती है। वह अपनी चूड़ियां तोड़ देती है, मांग का सिंदूर और माथे का कुमकुम् पोंछ डालती है और बालों को बिखेर कर करुण विलाप करती है। मातम की अवधि उच्चवर्णीय समाजों में बारह से सोलह दिन तक की होती है।

जिन्हें रोज की रोटी का जुगाड़ रोजाना मेहनत-मजदूरी करके करना पड़ता है, उन जातियों में यह अवधि कम (एक से तीन दिन) होती है। अब समय बदल रहा है। शोकप्रदर्शन की पररंपरा लंबी अवधि का पालन अब या तो गांवो में हो पाता है या काफी फुरसत वाले धनिक वर्गो द्वारा। शहरों में तो समय के विरुद्ध मनुष्य की जो दौड़ चलती है उसमें इन परंपराओं का कठोरता से पालन करना अब संभव नहीं रहा। अत: अब सारा काम सप्ताह भर में और कभी-कभी तो इससे भी कम समय में निबटा लिया जाता है।

दु:खार्त पारिवारिक जनों के शोक में सगे-संबंधी, इष्ट मित्र और बिरादरी के लोग बड़ी संख्या में सहभागी होते हैं। मृत व्यक्ति की उठावनी में जाना अनिवार्य सामाजिक कर्तव्य माना जाता है। शोकसंतप्त संबंधियों के यहां जाकर उनका सान्त्वन करने से चूक जाने को घोर कर्तव्यच्युती और पातक की कोटि का सामाजिक अपराध माना जाता है। कई बार मृतक की विधवा अपने क्रंदन में उपयुक्त संदर्भ जोड़कर देर से आनेवाले शोकप्रदर्शकों पर ताना भी कस देती हैं।

मातम की अवधि में मृतक के यहां शोकप्रदर्शन के लिए जाने वाले हर व्यक्ति को सूतक लगता है। अत: वहां से लौटने पर सबसे पहले वह स्नान करता है। परंपरानुसार इस शुद्धिस्नान से पहले पानी पीना भी निषिद्ध होता है। उसके बाद ही वह कुछ खा-पी सकता है और अपने मकान के भीतर के हिस्सों में प्रवेश कर सकता है।

नाते-रिश्तेदारों के एकत्र हो जाने के बाद और उनके द्वारा मृतक का अंत्यदर्शन हो जाने के बाद मृत देह को नहलाया जाता है। फिर उसे चंदन से सुवासित कर के नये कपड़े पहनाये जाते हैं। उसकी सद्यविधवा पत्नी को शव के पास बैठा कर उसे सफेद कपड़े दिये जाते हैं। पति की मृत्यु के बाद जीवन भर उसे सफेद वस्त्र ही पहनने पड़ते हैं। संबंधी जन मृत देह की तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं। इसके बाद मृत देह को सुसज्जित अरथी पर रखा जाता है और श्मशान यात्रा आरंभ होती है।

सगोत्र और सपिंड होने वाले सारे संबंधी जनों को कफन थामने का अधिकार होता है। कंधा तो कोई भी दे सकता है। स्त्रियां श्मशान में नही जातीं। एक वैराग्यपरक कहावत है कि स्त्री घर से ही साथ छोड़ देतीं हैं, सगे संबंधी मर्त्ती के

नुक्कड़ से, और पुत्र श्मशान में। (वीडु वरइ मनइवी, वीथि वरइ उख, काडु वरइ पिल्लइ)।

श्मशान यात्रा में रास्ते भर शोकपरक संगीत एकतानता से बजता रहता है। हर चौराहे पर अर्थी को कंधा देने वाले तीन बार चक्कर काटते हैं। ऐसा मृतदेह का पीछा करने वाले दुष्टतत्त्वों को चकमा देने के लिए किया जाता है ताकि वे गांव पर और संकट न बरसा सकें। मंदिरों के सामने शोकसंगीत नहीं बजाया जाता। मृतक के घर के आसपास को मंदिर हो, तो मृतदेह के उठ जाने तक मंदिर में पूजाअर्चा रोक दी जाती है।

जिन जातियों में अग्निदाह का रिवाज होता है उनमें मृतदेह को पास के किसी तालाब या नदी के किनारे ले जाया जाता है और चिता पर रख कर उसका अग्निदाह कर दिया जाता है। दूसरे दिन आन कर चिताभस्म को पास के तालाब या नदी में विसर्जित कर दिया जाता है। जो जातियां मुरदों को गाड़ना पसंद करती हैं उनमें मृतदेह को गांव की सीमा के बाहर दफनभूमि में गाड़ दिया जाता है। किसी अविवाहित व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर अरथी के सिरों पर कच्चे बिखे बांध दिये जाते हैं। यह मृतक की विवाह से पहले हो जाने वाली अकालमृत्यु का प्रतीक होता है। छोटे बच्चों की मृत्यु हो जाने पर उन्हें हल्दी से रंगे कोरे कपड़े के पालने में लिटा कर ले जाया जाता है। जैसे कि पहले कहा जा चुका है, बालकों और किशोरों की मृतदेहों को गाड़ दिया जाता है। दाहसंस्कार केवल वयस्कों का होता है।

चिता को अग्नि दिखाने से पहले संबंधीजन मृतक के मुंह में एक-एक कौर चावल रखते हैं। चिता के बड़े लक्कड़ों पर शव को लिटा कर ऊपर से छोटी लकड़ियां और उपले चुन दिये जाते हैं। चिता में अग्नि यथासंभव ज्येष्ठ पुत्र लगाता है। इससे पहले उसका मुंडन और क्षौर किया जाता है। पानी से भरा मिट्टी का पात्र लेकर वह चिता के सामने फोड़ देता है। इसके बाद सब लोग शुद्धि स्नान करते हैं और फिर औपचारिक तौर पर मृतक के घर तक वापस जाते हैं।

मातमकाल में कुछ शोक मनाने वाले अपने शोक की अभिव्यक्ति विलापगीतों के रूप में करते हैं। कुछ जातियों में तो मरने वाले के घर की स्त्रियां—विशेष तौर पर उसकी पत्नी—बरसों तक मरसिये गाती रहती हैं। संवेदना व्यक्त

करने के लिए जब भी कोई मिलनेवाला आता है कि उनका करुणक्रंदन शुरू हो जाता है। मृतक के जीवनकाल में होने वाली विभिन्न घटनाओं का बिसूर-बिसूर कर वर्णन करने वाले इन मरसियों में विधवा के दुःख-शोक के आवेगों को फूट पड़ने की राह मिल जाती है।

यदि कोई गर्भवती स्त्री प्रसव से पहले ही मर जाय, तो उसकी शवयात्रा के मार्ग में कुछ पत्थर रख दिये जाते हैं। हेतु यह है कि जन्म-मरण के दैवी तत्त्व उन पत्थरों पर बैठ कर दो घड़ी विश्राम कर सकें और हो सके तो जन्म न ले पाने वाले गर्भस्थ जीव का कहीं और अवतारण कर दें। यह कूटयुक्ति 'सुमइ तंगी' कहलाती है और तीन पत्थरों द्वारा संपन्न होती है। मनुष्य के ऊंचाई के दो पत्थरों को जमीन पर खड़ा करके तीसरे को उन पर आड़ा रख दिया जाता है। प्रायः इसकी स्थापना गांव के बीचोंबीच की जाती है। साधारण समय में इसका उपयोग खोमचे वालों और पैदल यात्रा करने वाले पथिकों को होता है। सिर पर बोझा ढोने वाले ये लोग दो घड़ी के लिए अपने भारी बोझ को उस पर रख कर सुस्ता लेते हैं और फिर आगे बढ़ जाते हैं।

दुर्घटना या आत्महत्या के कारण होने वाली मृत्यु परिवार के लिए अशुभ मानी जाती है। लोगों का विश्वास होता है कि इन स्थितियों में मरने वालों की मुक्ति नहीं होती और प्रेतयोनि प्राप्त उनकी आत्माएं जहां उनकी मृत्यु हुई हो उसके आसपास के किसी कुएं या वृक्ष पर मंडराती रहती हैं।

ब्राह्मणों और मुसलमानों में अंत्येष्टि-क्रिया अत्यंत संक्षिप्त और सरल होती है। सारा अनुष्ठान मौन रहकर किया जाता है और बाजे वाजे नहीं बजते। गांवों में विभिन्न धर्मों में विश्वास रखनेवाली विभिन्न जातियों के लिए अलग-अलग दफन भूमियां होती हैं।

जिस मकान में मृत्यु हुई हो उसे भी सूतक लगता है और कुछ दिनों के लिए वहां खाना नहीं पकाया जाता। प्रायः पास-पड़ोस के लोग खाना दे जाते हैं। मृतक की अरथी उठ जाने के बाद और सूतककाल में और भी कई अवसरों पर पूरे मकान को धोया-पखारा जाता है। मृत्युस्थान पर चौबीसों घंटे घी का दिया जलाया जाता है। मृतात्मा की तृषा के निवारण के लिए मिट्टी के घड़े में पानी भरकर उसे पीपल के पेड़ पर लटका दिया जाता है। मृतक की क्षुधा-निवारण के हेतु से समूचे अशौच काल में गरीब-गुरबों को भोजन कराया जाता है।

तमिल समाज के अधिकांश लोग मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं। यह प्रतीति व्यापकता से पायी जाती है कि मृत्यु के बाद जीवात्मा को पशु-पक्षी आदि विभिन्न योनियों में से गुजरना पड़ता है। यह आवागमन मोक्षप्राप्ति होकर जीवात्मा के परमात्मा में विलीन हो जाने तक चलता रहता है। इहलोक में पापकृत्य करने वालों को यमलोक में मृत्यु के अधिष्ठाता यमराज द्वारा दी जाने वाली नरक यातनाओं के संबंध में बड़ी भीषण कल्पनाएं जनसाधारण में प्रचलित हैं।

मृत्यु की वार्षिक तिथि (बरसी)

ब्राह्मणेतर जातियों में मृत्यु के बाद तीन सप्ताह तक जिस वार को मृत्यु हुई हो उस दिन किलमँ नामक रस्म अदा की जाती है। उस रोज मृतक के कपड़ों और अन्य स्मृतिचिह्नों की पूजा की जाती है और उसको प्रिय होने वाले खाद्यपदार्थ बनाकर परिवार के लोगों को परोसे जाते हैं। बरसी के दिन फिर से एक बार सगे-संबंधियों का समूह जुड़ता है, ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दी जाती है और साधु-संन्यासियों एवं गरीब-गुरबों को भोजन कराया जाता है।

सुमंगलियों की स्मृति में होने वाले समारंभ

यदि किसी स्त्री की सधवावस्था में मृत्यु हो जाय, तो उसकी याद को विभिन्न विधियों और अनुष्ठानों द्वारा ताजा रखा जाता है। चेट्टीनाड के चेट्टियारों में प्रचलित एक प्रथा का निम्नोक्त उदाहरण दिलचस्प हो सकता है:—

मृतक पूर्वजों की आत्मा को प्रार्थना एवं अन्न-जल के अर्पण द्वारा संतुष्ट करने के लिए उनके वंशजों और संबंधियों द्वारा मनाये जाने वाले वार्षिक सम्मेलन-समारोह को पदाइत्पु कहते हैं। बहुत से परिवारों के पुश्तैनी मकानों में इसके लिए एक अलग कमरा होता है। उसे किसी मंदिर के गर्भगृह से भी अधिक पवित्र माना जाता है।

पदाइप्पु समारंभ विशेष तौर पर परिवार की किसी सुहागिनी स्त्री की मृत्यु की स्मृति में मनाया जाता है। इससे परिवार के लोगों की दुष्ट तत्त्वों से रक्षा होती है। सधवा स्त्री की मृत्यु के बाद उसके बच्चे उसके पति के सहारे रह जाते हैं जो प्रायः दूसरा विवाह कर लेता है। विमाता द्वारा सौतेले बच्चों की ठीक से

देखभाल होने की सभावना कम ही रहती है। इस स्थिति को संभाव्य मानकर उसके खिलाफ जागरूकता की कार्रवाई के रूप में परिवार की सधवा मृतस्त्रियों को पारिवारिक देवी-देवताओं के बीच स्थानापन्न करके उनकी पूजा की जाती है।

इस अनुष्ठान के लिए कोई निश्चित दिन नहीं होता। प्रमुख उपासक (मृत स्त्री के ज्येष्ठ पुत्र) की सुविधानुसार वर्ष का कोई भी दिन इसके लिए चुना जा सकता है। प्रायः इस समारोह का आयोजन परिवार में होने वाले किसी विवाह से एक दिन पहले, विदेशगमन के लिए की जाने वाली समुद्रयात्रा से पहले के दिन या किसी नये व्यवसाय का आरंभ करने के बाद वाले दिन किया जाता है। मृतक स्त्री के सारे संबंधी जनों को निमंत्रित किया जाता है। इस बहाने परिवार के लोगों का लंबे समय के बाद सबसे मिलना हो जाता है। मृत स्त्री के पहनने के कपड़ों को धोकर उन्हें उसके तैलचित्र या फोटो के सामने रखा जाता है। उसे पसंद होने वाली खाने-पीने की चीजें बड़ी सावधानी से बनायी जाती है और केले के बड़े-बड़े पत्तों पर उनका अन्नकूट फोटो के सामने सजाया जाता है।

परिवार की इस दिवंगत पुरंध्री के आभूषण भी सही-सलामत रखे जाते हैं और इस मौके पर उसकी तस्वीर के सामने उनकी सजावट की जाती है। इन समारंभों में सम्मिलित होने वाली हर सधवा स्त्री की मन ही मन यही प्रार्थना होती है कि उसे भी अपने पति की मृत्यु से पहले ही चली जाने का सौभाग्य प्राप्त हो ताकि विधवावस्था के कष्टों से छूटकर वह भी इस सम्मान की अधिकारिणी बन सके। हिंदू स्त्री की नजर में उसके पति-पुत्रों द्वारा किया गया उसका यह मरणोत्तर सम्मान किसी की स्मृति में बनवाये गये ताजमहल से रत्ती भर भी कम नहीं होता।

पर्वतीय जन जातियों में अंत्येष्टि की प्रथाएं

नीलगिरि के कोटों में मृतदेह को कुडीगट नामक रथनुमा अरथी पर रखा जाता है। मृत्यु के दिन का सारा मरणोत्तर क्रिया-कर्म समाज द्वारा किया जाता है। जाति का हर व्यक्ति मरने वाले के पांवों पर अपना मत्था टेकता है। इसे 'धावमूट' प्रथा कहा जाता है। इसके बाद मृतात्मा की शांति के लिए प्रार्थना की जाती है। मृतक की चिताभस्म और अस्थियों को एकत्रित करके वरदवतालम् नामक स्थान पर रख दिया जाता है। यहां प्रतिवर्ष एक बार सारी जन-जात की

मृतात्माओं की तुष्टि के लिए धार्मिक विधियां होती हैं। पहले वर्ष की यह विधि हो जाने पर मृतक की स्त्री विधवावस्था का त्याग करके पुनर्विवाह करने के लिए मुक्त हो जाती है।

नीलगिरि के टोडों की अंत्येष्टि की विशिष्ट विधियां उनकी संस्कृति का उल्लेखनीय अंग है। उनके मरणोत्तर नियम-विधान और विधि-अनुष्ठान कुछ जटिल होते हैं, पर सब का एकमात्र हेतु मृतात्मा के परलोक-निवास को सुखी बनाना होता है। टोडों में भैंसों को समृद्धि का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक माना जाता है। अत: मृतक की कल्याण-कामना से भैंसों की बड़ी संख्या में बलि दी जाती है ताकि वे परलोक में मृतका का साथ निबाह सकें। जंगली भैंसों को खदेड़ कर पकड़कने में टोंड पुरुषों की बहादुरी की भी परीक्षा हो जाती है और अंत्येष्टि के समारोह उनके लिए अपनी रंग-बिरंगी पोशाकों में सज्ज होकर रागरंग और नाचगाने का अवसर भी प्रस्तुत कर देते हैं।

5 मेले और उत्सव

तमिलनाडु मंदिरों का देश है। यहां तक कि प्रादेशिक सरकार की राज्यमुद्रा पर भी मंदिर का गोपुरम् अंकित है। भारत के धर्म निरपेक्ष संघराज्य में तमिलनाडु ही एक ऐसा प्रदेश है जिसकी राज्यमुद्रा पर मंदिर का गोपुरम् अंकित हो।

मंदिरों और उत्सवों का चोलीदामन का साथ है। बिना उत्सवों के मंदिर की और बिना मंदिर के उत्सवों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मंदिरों के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए ये उत्सव केवल धार्मिक समारोह ही नहीं होते; बल्कि उनका सांस्कृतिक और तिजारती महत्व भी होता है। वे लोगों के जीवन के अभिन्न अंग बन गये हैं। उनके कारण बिछड़े हुए परिवारों का पुनर्मिलन होता है। लंबी अवधि के बिछोह के कारण लोगों का कौटुंबिक उत्साह ज्यों ही ठंडा पड़ने लगता है कि ये उत्सव-समारंभ उन्हें फिर से एक-दूसरे से मिलने का मौका देकर उनके वैयक्तिक सुख के साथ सामाजिक आनंद और पारिवारिक उमंग का भी मेल कर देते हैं।

एकादशी और स्कंद-षष्ठी के रोज श्रद्धालु लोग उपवास करते हैं। इन्हें छोड़कर बाकी सारे हिंदू त्योहार डटकर खाने-पीने के अवसर होते हैं।

मौसमी समारोह

तमिल में षड्ऋतुओं के नाम हैं—कार (वर्षा), कुठिर (शरद्), मुन पनी (हेमंत), पिन पनी (शिशिर), इलावेनिल (वसंत) और मुदुवेनिल (ग्रीष्म)।

वर्ष का विभाजन छह-छह महीनों के दो भागों में होता है—(1) उत्तरायणम्: लंबे दिन और छोटी रातों का कालखंड (मध्य जनवरी से मध्य जौलाई तक); (2) दक्षिणायनम्: छोटे दिन और लंबी रातें, वर्षा-पानी एवं निष्ठुर और उग्र

मौसम का काल (मध्य जौलाई से मध्य जनवरी तक)। इनमें से पहला, उत्तरायण काल उत्सवों-समारोहों के लिए योग्य माना जाता है, जबकि दूसरे काल में मेलों-उत्सवों को यथासंभव टाला जाता है। दक्षिणायनम् के आरंभ में साधु-संन्यासी और संत-महंत चातुर्मास्य का पालन करते हैं। वर्षा-तूफान के इन चार महीनों में साधु-संन्यासी परिव्रजन बंद करके एक ही स्थान पर निवास करते हैं और उत्कट उपासना-तपस्या एवं चिंतन-मनन युक्त जीवन बिताते हैं।

धार्मिक समारोह

पूरे वर्ष के हिसाब से देखा जाय, तो तमिलनाडु में देश के अन्य किसी भाग से कहीं अधिक धार्मिक उत्सवों का आयोजन होता है। नब्बे प्रतिशत लोग हिंदू हैं और बहुसख्यक प्रजा के इन समारोहों की विशेषताओं की प्रतिच्छाया ईसाई और मुस्लिम समारंभों पर भी पड़ती है। उत्सवों-समारंभों के दिन जनसाधारण के लिए मुक्तहस्त खरीदारी और शाहखर्च खातिरदारी के मौके होते हैं। मंदिरों में तो लोग अपनी हैसियत से अधिक चढ़ावा चढ़ाते हैं।

अधिकांश मंदिरोत्सवों का अनुष्ठान सितंबर-अक्तूबर में और फसली समारोहों का आयोजन फसल कट जाने के बाद, मार्च से जून के महीनों में होता है। इस समय लोगों के पास खर्च करने को पैसा भी होता है और खेती-बारी के कामकाज से फुरसत भी।

अधिकांश उत्सवों की अवधि तीन से दस रोज तक होती है। कुछ इससे भी लंबे चलते हैं। उत्सव के प्रधान देवता की मूर्ति को जगमगाती हुई रंगबिरंगी पोशाकें पहनाई जाती हैं और अतीत के बहुमूल्य और अप्राप्य रत्नाभूषणों से उसे सजाया जाता है। फिर वाहनम् नामक रथों पर बठाकर मंदिर के इर्द-गिर्द उनका जुलूस निकाला जाता है। मदुरै, श्रीरंगम् और अन्य कई शहरों की तो नगर रचना ही इस बात को ध्यान में रखकर की गयी है। इन स्थानों के बाजारों के नाम भी मदिर के उन उत्सवों पर आधारित हैं जिनमें देवता का रथ उन मार्गों पर से गुजरता है। देवता को इस प्रकार रथ में बिठाकर नगर भर में घुमाने का मुख्य हेतु शायद यह रहा हो कि व्याधिजर्जर, अतिवृद्ध और अपंग लोगों को भी देवता के दर्शन हो सकें। स्वातंत्र्यपूर्व काल में इसका एक अन्य महत्वपूर्ण प्रयोजन यह भी रहा हो कि जिन जातियों का मंदिरों में प्रदेश निषिद्ध था उन्हें भी देवता की

झलक मिल सके और साल में कम से कम एक दिन वे उसकी पूजा-प्रार्थना कर सकें।

भड़कीली सजावट वाले अंबारी से सज्ज हाथी इन जुलूसों के अग्रभाग में चलते हैं। बच्चे उन्हें देखकर बहुत खुश होते हैं। सूरज की प्रखर धूप से देवता की रक्षा करने के लिए बड़े-बड़े रेशमी छात्रों का प्रयोग किया जाता है। उत्सव के मुख्य दिनों में प्रतिदिन रात को जब देवता का जुलूस निकलता है, तो मार्ग में आने वाले हर गृहस्थ के घर के सामने उसका आरती से स्वागत किया जाता है और उस पर नारियल, फल, फूल चढ़ाये जाते हैं। अर्चना नामक स्रोतों द्वारा देवता की प्रार्थना की जाती है। उत्सव के पूरे कालखंड में धार्मिक प्रवचन, कथा-वार्ता और कीर्तन होते रहते हैं; तेवरम् और प्रबंदम् के परंपरागत गायक भजन गाते रहते हैं, रात-रात भर संगीत-सम्मेलन चलते रहते हैं और हर प्रकार की लोककला को प्रश्रय मिलता है। भक्तगण इन सबमें उत्साहपूर्वक सम्मिलित होते हैं। सूर्योदय से कुछ पहले जब देवता मंदिर में वापस लौट जाते हैं तब तक ये समारंभ चलते रहते हैं और लोग अपना आपा भूलकर उनमें भाग लेते रहते हैं।

देवता के आशीर्वाद की कामना से जनसाधरण द्वारा गली-कूंचों में लोकनाट्य का आयोजन होता है। इनमें हरिश्चंद्र नाटक सबसे अधिक लोकप्रिय है। रानी तारामती मृत पुत्र रोहित के शव को लेकर मयनाकंदम् नामक श्मशान के रखवाले अपने स्वामी हरिश्चंद्र के पास आती है, वह प्रवेश तो अत्यंत प्रभावशाली होता है। उसे कल्याणकारण भी माना जाता है। लोगों का विश्वास है कि उसका अभिनय करने से वर्षा प्रचुर होती है। आंसुओं की वर्षा तो प्रत्यक्ष हो ही जाती है।

रथयात्रा के समय देवता को 'थेर' नामक परम पवित्र रथ पर आरूढ़ कराया जाता है। रथ कुशल कारीगरों द्वारा लकड़ी से निर्मित होता है और उस पर विविध पुराणकथाओं को विशद करने वाले काष्ठशिल्प बारीक नक्काशी के साथ अंकित रहते हैं। रथ संगति, सौष्ठव और संतुलन की मानो जीती-जागती प्रति-मूर्ति होता है। उसका शिखर सुदर्शन और सुसज्जित होता है जो देखने में अत्यंत भव्य मालूम देता है। शिखर में एक के ऊपर एक कई स्तर होते हैं। कई रथ तो पूरे के पूरे सोने या चांदी से मढ़े हुए होते हैं। रथ विशाल और भारी लकड़ी के पहियों पर अत्यंत मंद गति से चलता है। सब जातियों का मनुष्य-समुदाय उसे

खींचने में सहायता करता है। जुलूस रास्ते में आने वाले मंडपम् नामक स्थानों पर रुकता हुआ आगे बढ़ता है। ऊंचे-ऊंचे पत्थर के स्तंभों और विशाल दालानों वाले ये मंडप खासतौर पर रथ की विश्रांति के हेतु से ही बनाये जाते हैं। रथारूढ़ देवताओं पर चढ़ावा इन्हीं स्थानों पर चढ़ाया जाता है।

तिरुवरुर मंदिर का विशाल रथ देश में सबसे बड़ा है। उसे खींचने के लिए आमतौर पर दस हजार लोगों की आवश्यकता पड़ती थी। परंतु अब चूंकि इतनी बड़ी संख्या में लोग उपलब्ध नहीं होते, उसमें लकड़ी के स्थान पर इस्पात की धुरियां और पहिये लगा दिये गये हैं और उसे रोकने के लिए द्रवचालित (hydraulic) ब्रेक लगा दिये गये हैं। अब उसे दो हजार लोगों की सहायता से खींचा जा सकता है।

इन उत्सवों पर जमने वाले जनसमूहों का एक उपयोग यह भी होता है कि विवाह-योग्य लड़के-लड़कियों को देखने-दिखाने का मौका मिल जाता है जिसकी परिणति अकसर विवाह-संबंध जुड़ने में होती है। पहले से जुड़े हुए संबंधों को अधिक दृढ़ करने में भी ये अवसर सहायक होते हैं। उत्सव के नगर में रहने वाले लोग बाहर से आने वाले सगे-संबंधियों को दावतें देते हैं। इतना ही नहीं, किसी कारण से आपस में थोड़ा-बहुत मनमुटाव हो गया हो, तो इस उत्साह के वातावरण में वह मिट जाता है और पुराने घाव भर जाते हैं। आपसी स्नेह संबंधों के पुराने बंधन और भी मजबूत हो हो उठते हैं और नये जोड़े जाते हैं।

ग्रामीण लोगों के तो झुंड के झुंड दूर-दूर के स्थानों से आ कर उत्सव में सम्मिलित होते हैं। अकसर ये लोग बैलगाड़ियों के काफिलों में एक साथ चलते हैं। पाथेय के रूप में सूखी या तली हुई खाद्यसामग्री साथ रखते हैं। मार्ग में वे छत्रम् नामक यात्रियों की धर्मशालाओं में रात गुजारते हैं। ये पांथशालाएं तमिलनाडु के पुराने शासकों एवं धनी श्रेष्ठियों द्वारा सैंकड़ों की संख्या में बनवायी गयी थीं और देश भर में फैली हुई हैं। कई छत्रों के पास प्रचुर धर्मादाय संपत्ति होती है और आज भी उनके अन्नछत्रों में यात्रियों को ठहरने का स्थान और पका हुआ भोजन मुफ्त दिया जाता है। रामेश्वरम् से लगा कर वाराणसी तक के मार्ग में तो इन छत्रों का जाल फैला हुआ है। अमरीकन प्रवासियों को जो सुविधाएं राजमार्ग के मोटेल्स में मिलती हैं, कुछ उसी प्रकार की, पर निःशुल्क सेवा इन छत्रों द्वारा यात्रियों को दी जाती है।

लोगों के मन में यह धारणा घर कर गयी है कि महत्वपूर्ण उत्सवों के दिन आंधी-तूफान का मौसम जरूर रहेगा और वर्षा अवश्य होगी। वैयक्तिक स्तर पर और पूरे गांव पर पड़ने वाली दैवी आपत्तियों को टालने के लिए लोग इन दिनों में मन, वचन और कर्म से यथासंभव शुद्ध रहने का प्रयत्न करते हैं। रजस्वला स्त्रियां किसी भी उत्सव में सहभागी नहीं हो सकतीं। मासिक धर्म को स्त्रियों के लिए सबसे अधिक अपवित्रता की स्थिति माना जाता है।

धार्मिक उत्सवों को ले कर तमिल प्रजा का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक है। अतः मंदिरों के उत्सव केवल तमिलनाडु तक ही सीमित नहीं हैं। बड़ी संख्या में तमिल यात्री तिरुपति-तिरुमलै (आंध्र प्रदेश) और गुरुवय्यूर (केरल) के मंदिरोत्सवों में भी सम्मिलित होते हैं। जनवरी में होने वाला केरल का अय्यप्पा उत्सव हजारों तमिल यात्रियों को आकर्षित करता है। उत्सवों में शरीक होने वाले यात्री इस अवधि के लिए निर्धारित धार्मिक विधिनिषेधों का निष्ठा से पालन करते हैं। उत्सव से पहले चार सप्ताह तक वे ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और यात्रा के दुर्गम मार्ग में आने वाले प्राकृतिक संकटों और वन्य पशुओं के खतरे का मुकाबला करते हुए उत्सव के स्थान तक अकसर पैदल यात्रा करते हैं। इन यात्रियों से विभिन्न प्रदेशों के बीच की सद्भावना बढ़ती ही है।

तमिल वर्ष के चार महीने आदि, पुरुत्तसी, मरगझी और पांगुनी विवाहादि पारिवारिक कार्यों के लिए केवल इसी कारण से निषिद्ध माने गये हैं कि आदि-पूरम्, आदि-तपस्, नवरात्रि, तिरुवधिरै और महाशिवरात्रि के धार्मिक त्योहार इन्हीं महीनों में पड़ते हैं और लोग अपना पूरा समय और शक्ति इन उत्सवों में ही खर्च करें ऐसी सामाजिक अपेक्षा होती है। अब बदलते हुए युगधर्म के साथ केवल आदि और मरगझी ही विवाह के निए निषिद्ध माने जाते हैं।

उत्सवों के आवश्यक अंग के रूप में प्रधान मंदिरों में निर्धारित स्तोत्रों का पाठ किया जाता है। मद्रास के कपालीश्वरर और पार्थसारथी मंदिर, कांचीपुरम् के एकाम्ब्रेश्वरर मंदिर और तिरुनेलवेली के नेल्लायप्पर मंदिरों में स्तोत्रपाठ की सुनिश्चित परंपरा पायी जाती है। तिरुवरमियुर के मरूंदीश्वर और त्यागेश्वर मंदिरों में पांगुनी (मार्च-अप्रैल) मास में होने वाले जलयात्र उत्सव में निम्नोक्त स्तोत्र मंदिर के जलाशय की नावों में बैठ कर गाये जाते हैं। इनमें से पहला पद शिव की लीलाओं की गाथा गाता है और दूसरा मंदिर के स्थान माहात्म्य, उसके

गोपुरम् के सौंदर्य, उसकी प्रतिमाओं के सौष्ठव आदि का जीवंत वर्णन करता है और देवता की उपासना का अवसर भक्तों को लगातार मिलता रहे ऐसी कामना व्यक्त करता है।

(1) इव्वयिल सूझ सप्पनि नूड वन्दडरकु
ओवेन्नु अझैतारकु ओंकार वट्टतरकु
पितानेन्नु अझैतारकु पिराबदी पट्टतरकु
पैंकल उटालै सुदलैक्कू ताडिन तरकु।

(2) तेन्नन सोलैयिल सूझ
तिरुवन्मियुर स्थलातिल
तिरुवन्मियुर त्यागेसर
तिगट्टत कनिभैप पोल
तेन पाण्डी तेन्सोलइ नाट्टाने
सोर्ना सुबै कोपुरातिन अझगम्
सूतसामन्न नन्दी अझगम्
वर्ण पंचत्सर अझगम्
वन्दु पनिन्दिड तोन्ती अझगम्
एन्नेरामम् उन्दन सन्नधि तनिलुल्ले
इरक्कु वेन्डुम ऐयने।

कोइंबतोर से चालीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित चित्तूर नामक स्थान में ग्रामदेवी चित्तूरम्मन के उत्सव में चेर प्रदेश पर होने वाले कोंगू शासकों के आक्रमण की घटनाओं का उल्लेख आज भी होता है। नाटक में युद्ध के दृश्यों को पुनर्प्रस्तुत किया जाता है और स्कूल के बच्चे कोंकपदै नामक संगीतगाथा के पद गाते हैं।

तमिलनाडु में विभिन्न महीनों में होने वाले कुछ हिंदू उत्सवों का ब्योरेवार वर्णन यहां उचित होगा। उत्सवों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण कुछ को छोड़ देना अनिवार्य है।

चैत्रोत्सव

तमिल वर्षगणना के अनुसार चैत्र वर्ष का पहला महीना होता है। इसमें वसंत के आगमन का उत्सव मनाया जाता है। अधिकांश समारोह मदुरै में मनाये जाते हैं। मदुरै और उसके इर्द-गिर्द के प्रदेश के मंदिरों की देवमूर्तियों को जुलूस के रूप में वैगइ नदी के पात्र में ले जाया जाता है। साथ में लाखों भक्तगण और संगीतज्ञ रहते हैं। दरअसल यह मदुरै की अधिष्ठात्री देवी मीनाक्षी के भगवान शिव के साथ के विवाह का उत्सव होने के कारण पूरा वातावरण आनंद और उत्साह से भरापूरा रहता है।

इर्द गिर्द के कोई सौ एक किलोमीटर के दायरे से लोगों के झुंड के झुंड इस दैवी विवाह के दर्शन करने के लिए मदुरै में उमड़ पड़ते हैं। पूरे प्रदेश में कई दिनों तक कामकाज की छुट्टी हो जाती है। मदुरै जिले में खेतिहर मजदूरों को उनका वेतन एक चैत्रोत्सव से लगाकर दूसरे तक वार्षिक रूप में चुकाया जाता है। अतः आर्थिक दृष्टि से भी इस उत्सव को पुराने वर्ष का अंत और नये का आरंभ माना जा सकता है।

वैकसी वैशाखम्

वैशाख तमिल वर्ष का दूसरा महीना है। वैशाखी पूर्णिमा शंकर के पुत्र भगवान सुब्रह्मण्य (कार्तिकेय) के जन्मोत्सव का दिन है जिसे मुरुगन के मंदिरों में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। तिरुचेंदुर और तिरुपरंकुंदनम् के मंदिरों में लोग दूध से भरे कलश चढ़ाते हैं। इस उत्सव को तमोहरण और ज्ञानोदय का त्योहार माना जाता है।

भगवान बुद्ध का जन्म भी इसी दिन हुआ माना जाता है। इतना ही नहीं, उन्हें ज्ञान-प्राप्ति और निर्वाण-प्राप्ति भी इसी रोज हुई थी। उत्तर भारत में बुद्ध पूर्णिमा के नाम से यह उत्सव अत्यंत लोकप्रिय है और धूमधाम मनाया जाता है।

वैष्णवों के उत्सव

कांचीपुरम् के वरदराज स्वामी मंदिर का गरुड़ोत्सव अत्यंत दर्शनीय होता

है। वैष्णव भक्तों की अनगिनत पीढ़ियां एक भी गरुडोत्सव में सम्मिलित होते से नहीं चूकीं। वैकसी वैशाखम् (वैशाखी पूर्णिमा) वैष्णव भक्त शिरोमणि नाम्म आलवार का जन्म दिन है। ऐसा माना जाता है कि इस रोज भगवान ने नाम्मालवार मंदिर में प्रकट होकर अपने परम भक्त को आशीर्वाद दिया था।

अनि महीने की तूर्णिमा केइट्ट (ज्येष्ठ) नक्षत्र में आती है। उस रोज श्रीरंगम मंदिर में होने वाला 'ज्येष्ठा अभिषेकम्', मन्नारगुडि का जलयात्रा महोत्सव और मदुरै के अलगार मंदिर का 'पडि उत्सवम्' (सोपानोत्सव) दूर-दूर तक प्रसिद्ध हैं।

पदिनेट्टम् पेरुक्कु

इसका अर्थ होता है 'अठारहवीं की बाढ़'। यह उत्सव तमिल मास की अठारहवीं तिथि (लगभग पहली अगस्त) के रोज कावेरी के नदीमुख दोआबों में रहने वाले लोगों द्वारा मनाया जाता है। प्रायः निरपवाद रूप से उस रोज कावेरी नदी में भारी बाढ़ आती है। तिरुचिरापल्ली और तंजाउर जिलों से होकर बहने वाली यह दक्षिण गंगा उस रोज अपने कूलों की मर्यादा को तोड़ देती है। और अपने किनारों पर बने हुए असंख्य स्नानघाटों की समस्त सीढ़ियों को डुबोती हुई बेलगाम होकर बहती है। तमिलनाडु के दक्षिणी भाग में कावेरी के इस महोत्सव को बहुत बड़ा त्योहार माना जाता है।

उत्सव का आरंभ होने के दो-तीन रोज पहले से ही नदी की ओर जाने वाले रास्तों और घाटों पर बिक्री के लिए सजाये हुए अनगिनत 'छप्परम्' दिखाई देने लगते हैं। ये मंदिर के रथों की आकृति में बने हुए खिलौने होते हैं। लकड़ी के छोटे-छोटे पहियों पर ढालू स्तूपाकार गोपुरम् वाले देवालयों की प्रतिकृति को चमचमाती हुई सुनहरी-सुनहरी पन्नी और रंगीन कागज की फूल-पत्तियों द्वारा सजाया जाता है। बीच में कुछ खाली जगह छोड़कर उसमें देवी-देवताओं के छोटे-छोटे चित्र जड़ दिये जाते हैं। कुशल कारीगर एक प्रकार की मुलायम और लचकीली लकड़ी में से कुछ ही दिनों में ऐसे 'छप्परम्' बना सकते हैं। पदिनेट्टम् पेरुक्कु के दिन भोर से ही पक्की सड़कों पर बच्चों द्वारा डोरी लगाकर खींचे जाने वाले इन नन्हें रथों की घरघराहट सुनाई देने लगती है। शाम को बच्चे उनके मध्य भाग में छोटी-छोटी मोमबत्तियां जला लेते हैं और रथों को खींचते हुए सड़कों पर खेलते रहते हैं।

सर्वसंग्राहक हिंदू धर्म की विभिन्न जातियों में प्रचलित भिन्न-भिन्न प्रथाओं ने अनुसार पूजा-आर्चा भी विभिन्न रूप धारण करती है। कुछ जातियों के लोग मिट्टी की मूर्तियां बनाते हैं और उन पर केशर, कुंकुम्, धूप-दीप, गुड़ का भात और नारियल (काप्परिसी) चढ़ाते हैं। इस मौके पर केसर के रंगे हुए सूत के लच्छों को जनेऊ की तरह कंधे पर डालने की प्रथा है। विवाहित जोड़े इनसे गठबंधन कर लेते हैं। चूड़ियां और काले मनकों की माला का चढ़ावा नदी माता को समर्पित किया जाता है। फिर पान खाकर लोग घर लौट जाते हैं। कुछ लोग विवाह के रोज एक-दूसरे को पहनायी हुई फूल-मालाओं को आज के दिन कावेरी में विसर्जित कर देते हैं। मालाओं को इस प्रकार विसर्जित करने की इच्छा हो, तो उन्हें बरसों तक सहेज कर रखा जाता है।

ब्राह्मण प्रात: स्नान के बाद माता कावेरी को दूध और पुष्प समर्पित करते हैं। इस अवसर पर उनके घरों में मीठा 'पायसम्' (लपसी) बनाया जाता है। शाम को स्त्रियां और बच्चे नये वस्त्र धारण करके फिर एक बार नदी के किनारे जाते हैं। यहां 'चित्रान्नम्' पकाया जाता है। यह रंगबिरंगे चावलों से बनाया हुआ एक प्रकार का पुलाव होता है। इसका कुछ अंश नदी को समर्पित करके लोग वहीं बैठकर भोजन करते हैं। इससे पूरे समारोह को सामुदायिक वन-विहार का रूप प्राप्त हो जाता है। दिन ढलने के बाद लोग घर लौट जाते हैं। पदिनेट्टम पुरुक्कु मुख्यत: स्त्रियों और बच्चों का उत्सव है।

इस मंगलोत्सव के दिन ताड़ पत्र पर लिखे हुए जीर्णशीर्ण अनुपयोगी हस्तलिखित पोलियो को आग में जलाने के बजाय नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। मध्याह्न के समय प्रदेश भर के देवी-देवताओं की मूर्तियों को कावेरी तट पर बने हुए मंडपों में ले जाया जाता है।

अवनी मूलम्

यह उत्सव अवनी मास में पड़नेवाले मूल नक्षत्र के दिन मदुरै में मनाया जाता है। इसमें भगवान शिव ने जब मनुष्य का अवतार लेकर मदुरै में साधारण मजदूर का जीवन बिताया था उस समय की पौराणिक शिव लीलाओं का निरूपण किया जाता है। यह गहरे स्थानीय पुट वाला एक अत्यंत नयनाभिराम उत्सव है। भक्तों की दृष्टि से इस दिन के क्रियाकलाप में 'पिट्टु' नामक मधुर पदार्थ

का भोजन भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

नवरात्रि

पुरत्तसि (सितंबर-अक्तूबर) महीने का महत्व इसीलिए अधिक होता है कि दशहरे का त्योहार और नवरात्रि का उत्सव उसी में मनाया जाता है । तमिलनाडु में इस उत्सव का प्रचलन मैसूर के शासकों द्वारा हुआ हो ऐसा मालूम होता है । कुछ शताब्दियों पूर्व तक तमिलनाडु के कई इलाकों पर इसी राज्यवंश का शासन था । आज भी यह उत्सव प्रधानतः उन्हीं नगरों में मनाया जाता है जिनका कर्नाटक के किसी राजा या सरदार से संबंध रहा हो । नवरात्रि का उत्सव मनाने की और इस अवसर पर विभिन्न प्रकारों के एवं चित्र-विचित्र पोशाकों वाले नानाविध खिलौनों का प्रदर्शन करने की प्रथा समाज के उच्च स्तरों तक ही सीमित है । गांवों के साधारण लोग इसके स्थान पर 'पुरवी एड्डुप्पु' नामक उत्सव मनाते हैं । यह समारोह अय्यनार के मंदिरों में सजे हुए खिलौने के घोड़ों को लेकर मनाया जाता है । इस प्रथा ने तमिलनाडु में मिट्टी के खिलौने बनाने की विस्मयजनक प्राचीन कला को जीवित रखा है । ये खिलौने चिकनी मिट्टी और कागज की लुगदी के मिश्रण से बनाये जाते हैं और उन्हें भड़कीले रंगों से रंगा जाता है । ये कलाकार मुख्यतः कुम्हार जाति के होते हैं । यद्यपि उनमें किसी भी कथा-प्रसंग को मिट्टी के खिलौनों का रूप देने की क्षमता होती है फिर भी वे अकसर पुराने ढांचों और परंपरागत रचना-प्रणालियों से ही चिपके रहते हैं ।

दीपावली

दशहरे के बाद का महत्वपूर्ण त्योहार दीपावली है । इस दिन सुबह सुगंधित तेल-उबटन लगा कर अभ्यंग स्नान किया जाता है, सुस्वाद पकवान खाये जाते हैं, पटाखे छोड़े जाते हैं, आतिशबाजी जलायी जाती है । फिर भी तमिलनाडु में इस त्योहार का उत्तर भारत के समान महत्व नहीं है । निर्धन किसान परिवारों की इसमें विशेष दिलचस्पी नहीं होती । यह खर्चीला त्योहार है; और उनके पास न तो उतना पैसा होता है न खरीफ के फसल काल में उतनी फ़ुरसत । अतः दीपावली के प्रति सिर्फ बड़े नगरों के उच्च वर्णों में ही कुछ आकर्षण पाया जाता

है। कुछ इने-गिने धनवान लोग दीपावली का त्योहार मनाने के लिए बनारस जाते हैं और गंगा मैया में डुबकी लगा आते हैं।

कार्तिगै दीपम्

यह तमिलनाडु का दीपोत्सव है जिसे तोलकप्पियम् के दिनों से मनाया जाता है। इस दिन पूरे मकान में मिट्टी के दीपक जलाये जाते हैं और आमोद-प्रमोद मनाया जाता है। बच्चे पटाखे और आतशबाजियां छोड़ते हैं।

कई प्रदेशों के वैष्णव मकानों को प्रकाशित करने के लिए अपने हाथों से बनायी हुई विशिष्ट प्रकार की दीपमालाएं जलाते हैं। इन्हें 'पोरी वानम्' कहा जाता है। इसे सूत की बाती के गिर्द 'कवट्टैक-कंबु' नामक सरकंडे का चूर्ण, लकड़ी या बुरादा, कपड़े के चिथड़े, कोंकणी राल और मुरुड वृक्ष के फलों (मुरुतंकै अथवा रामर काइ) का चूर्ण लपेट कर बनाया जाता है। यह मिश्रण अत्यंत तेज रोशनी देता है। कुम्हारों द्वारा बनाये हुए हाथी की आकृति के दीपक माता-पिता द्वारा विवाहित लड़कियों को भेंट के रूप में भेजे जाते है।

यह त्योहार नवबंर-दिसंबर में आने वाले कृत्तिका नक्षत्र के दिन पड़ता है। तिरुवन्नमलै में इसका महत्व बहुत अधिक माना जाता है। तिरुवरुर में जन्म, काशी में मृत्यु और चिदंबरम् में पूजा-अर्चा का अवसर भाग्यवानों को ही मिलता है; परंतु तिरुवन्नमलै मंदिर के तो स्मरण मात्र से मानव प्राणी को मोक्ष की प्राप्ति होती है। यहां कार्तिगै के दिन भगवान शिव पंचमहाभूतों में से एक, अग्नि का रूप धारण करके उसकी प्रज्ज्वलित शिखा के रूप में प्रकट हुए थे। यहां की पहाड़ी की स्थापना भी भगवान भूतनाथ ने स्वयं अपने हाथों से की थी। अत: पहाड़ी की चोटी पर वर्ष में एक दिन प्रज्ज्वलित की जाने वाली पावन अग्नि शिखा के प्रकट होते ही इस पवित्र उत्सव का आरंभ किया जा सकता है और उसे निश्चित अवधि तक निरंतर जारी रखा जा सकता है। यहां के अधिष्ठाता देवता भगवान अरुणाचलेश्वर इसके मूक साक्षी रहते हैं।

कार्तिगै उत्सव पूर्णिमा के दिन ही पड़ता है। लोग 'अन्नामलैयरक्कु अरोहार' के नारे लगा-लगाकर शिव का जयजयकार करते हैं। तांबे के एक बड़े हवनकुंड में प्रचुर मात्रा में बढ़िया कपूर, घी और सूत की बातियां सजायी जाती हैं। पहाड़ी पर शाम के ठीक पांच बजे दीपदान की ज्योति के प्रज्ज्वलित होते ही

अज्ञान और अंधकार नष्ट होकर ज्योतिस्वरूप परमात्मा में विलीन हो जाते हैं।

इस उत्सव के साथ-साथ तिरुवन्नमलै में दस दिनों तक विशाल मवेशी पेंठ भी लगती है। महत्वपूर्ण मौकों पर देवताओं के विभिन्न प्रकार के रथों में स्थापित कनके उनका जुलूस निकाला जाता है। ये जुलूस मनुष्य की श्रद्धा शक्ति के जीवंत प्रतीक होते हैं। उन्हें देखने का मौका कभी नहीं चूकना चाहिये; और एक बार देख लेने पर उन्हें भुलाना तो असंभव है।

तिरुप्पली एभुची

मरगझी (दिसंबर-जनवरी) का पूरा महीना सूर्योदय से पहले किये जाने वाले स्नान, ध्यान, प्रार्थना और पूजा-अर्चा का काल माना जाता है। इन दिनों भयानक शीत होने पर भी लोग उसकी परवाह नहीं करते। इस समय तिरुपवै और तिरुवम्पवै नामक पद गाये जाते हैं।

तिरुवधिरै

तिरुवधिरै अथवा अरुद्र दर्शन उत्सव मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। यह भगवान शिव के नर्तक रूप, नटराज का महोत्सव है। तमिलनाडु के शैवों के चिदंबरम् स्थित परम पवित्र शिवालय नटराज मंदिर में भक्तों के झुंड के झुंड उमड़ पड़ते हैं। इस दिन भगवान शंकर ने अपने प्रिय भक्त संत माणिकवचकार को उसके शिव महिमा स्तोत्र तिरुवम्पवै की परिसमाप्ति से संतुष्ट होकर दर्शन दिये थे। पेरुर अथवा मेलइ चिदंबरम् में भगवान शिव ने कामधेनु को भी इसी रोज दर्शन दिये थे। उस रोज ब्रह्ममुहूर्त से ही शिवलिंग पर दूध, दही, घी, मधु और नारियल के पानी का अभिषेक आरंभ हो जाता है जो सूर्योदय (स्वर्गीय धेनु को दर्शन होने का समय) तक चलता रहता है।

वैकुंठ एकादशी

मरगझी मास में शुक्लपक्ष के आरंभ से लगाकर बीस दितों तक श्रीरंगम के मंदिर में तह महोत्सव होता है। चिदंबरम् का शिवालय जिस प्रकार तमिलनाडु के शैवों का सर्वोच्च तीर्थस्थान है उसी प्रकार श्रीरंगम यहां के वैष्णवों का परम पुनीत यात्राधाम है। दसवें रोज के 'नचियार कोलम्' अथवा मोहिनी-अवतार

उत्सव और ग्यारहवें रोज के एकादशी महोत्सव में लाखों लोग सम्मिलित होते हैं। इस अवसर पर आलवार संतों के समस्त चार हज़ार पदों का पारायण किया जाता है। अठारहवें रोज तिरुमंगै अलवार के साथ भगवान रंगनाथ की मुठभेड़ का निरूपण होता है और बीसवें रोज इसी आलवार संत द्वारा चलाये गये तिरुवैमोझी समारोह से उत्सव की समाप्ति होती है। ग्यारहवें रोज से लगा कर प्रतिदिन भगवान रंगनाथ परमपथ वासल (स्वर्गीय महाद्वार) से प्रवेश करके भक्तों द्वारा अर्पित नैवेद्य ग्रहण करने के लिए और उन्हें आशीर्वाद देने के लिए स्वयम् मंदिर में पधारते हैं। उसके बाद उनका समारोहपूर्वक जुलूस निकाला जाता है और वे वैकुंठ लोक को लौट जाते हैं।

तई पूसम्

तई महीना भगवान मुरुगन सुब्रह्मण्यम् से संबंधित पलनी और तिरुत्तनी के उत्सवों के लिए प्रसिद्ध है। यह उत्सव भी पूर्णिमा के ही दिन होता है। हजारों श्रद्धालु भक्त भगवान कार्तिकेय का गुणगान करते हुए लंबी-लंबी पदयात्राएं कर के यहां एकत्रित होते हैं आते समय वे अपने सिर पर करगम पात्र और कंधों पर कावड़ी रखकर लाते हैं। इन दोनों का वर्ण आगे के किसी परिच्छेद में किया जायगा।

उसी दिन मदुरै के मंदिर में जलविहार का अत्यंत लोकप्रिय उत्सव मनाया जाता है। मंदिर के समस्त देवी-देवताओं को रेशमी पोशाकें, रत्नाभूषण और फूलों से सजाकर के उन्हें जलूस के रूप में नगर के पूर्व भाग में स्थित 'मरिअम्मन तेप्पाकुलम्' नामक विशाल जलाशय तक ले जाया जाता है। यहां उन्हें सजे हुए विशाल बजरों में स्थापित करके जलाशय के चक्कर लगाये जाते हैं। बजरों को हजारों रंग-बिरंगे बिजली के बल्बों से सजाया जाता है। पुरे समय मधुर संगीत बजता रहता है। मार्च-अप्रैल में जलविहार का ठीक ऐसा ही उत्सव मायला पोर (मद्रास) के कपालीश्वर शिवालय में भी मनाया जाता। उस रोज शैवों के त्रेसठ महान संतों की प्रतिमाओं का भी जुलूस निकलता है। मद्रास नगर के धार्मिक जीवन में इस उत्सव का बहुत अधिक महत्व रहा है।

पोंगल

यह तमिलनाडु का सबसे बड़ा, सबसे व्यापक और धर्मनिरपेक्ष उत्सव है। इसे खरीफ की फसल की सफल परिसमाप्ति पर मकर संक्रांति (14 जनवरी) के दिन मनाया जाता है। उस रोज सब लोग नयी फसल के चाल को समारोहपूर्वक पकाकर बड़े आनंद से खाते हैं। दूसरे दिन गाय बैलों का उपकार मानने का त्योहार मनाया जाता है।

पोंगल के दिन हर माता अपनी विवाहित पुत्रियों को मिट्टी के बरतन, चावल, फल, सब्जियां, केशर, गन्ना आदि की भेंट भेजती हैं। इन भेटों का आदान-प्रदान उत्कट आस्था से और समारोहपूर्वक होता है। यदि कोई माता इस कर्तव्य से चूक जाय, तो लड़की की सास इस अपराध को मरते दम तक नहीं भूलेगी और कदम कदम पर उसे ताने सुनाती रहेगी।

इस रोज सूर्य मकर राशि में प्रवेश करके छह महीने तक लगातार उत्तर की ओर झुकता रहता है। इसी को मकर संक्रांति या उत्तरायण कहते हैं। पोंगल इसी घटना को मनाने का त्योहार है उस रोज वनस्पति-सृष्टि के अधिष्ठाता भगवान सूर्य को पोंगल (नयी फसल में कटे हुए चावल का भात) का भोग लगाया जाता है। खेतों और बागों की अन्य पैदावार गन्ना, लौकी, काशीफल, वल्लीकंद आदि को समारोह-पूर्वक सजाकर प्रकृति की देन का प्रदर्शन किया जाता है। मिट्टी के नये घड़े को केशर-कुंकुम से चर्चित करके और दूध और पानी के मिश्रण से भर कर आग पर चढ़ा दिया जाता है। चूल्हा मकान के आंगन या बरामदे में, और वहां जगह न हो तो प्रवेश द्वार के सामने सड़क पर बनाया जाता है।

दूध में उबाल आते ही परिवार का सबसे बड़ा या सबसे छोटा सदस्य (जो भी उस रोज उपलब्ध हो), भक्तिभाव पूर्वक उसमें नयी फसल के चावल डालता है। कुछ देर तक चावल को सीझने दिया जाता है। पक जाने पर उसमें विभिन्न प्रकार के मेवा मसाले डाले जाते हैं ताकि स्वाद और महक में कोई कमी न रहे। इतनी तैयारी होते ही लोग 'पोगलों पोंगल' (पोंगल की जय हो) के निनाद से पोंगल का जय जयकार करते हैं। फिर तीन पत्तलों पर पके हुए पोंगल को परोस कर भगवान सूर्य को भोग लगाया जाता है। इष्टदेवता और कुल देवता सहित

सारे देवी-देवताओं का आवाह्न करके अगले पोंगल तक परिवार के लिए सुख-समृद्धि-सौभाग्य का आशीर्वाद मांगा जाता है। कपूर जलाकर समस्त देवगण की आरती उतारी जाती है। फिर सब पोंगल का प्रसाद ग्रहण करते हैं।

दरअसल 'पोंगल' चावल पक जाने के बाद दूध में आने वाले उबाल को कहते हैं। परंपरा से पूरे समारोह को यही नाम दे दिया गया है। सगे संबंधी और इष्ट मित्र एक-दूसरे का अभिवादन भी पारंपरिक प्रश्नोत्तरों से करते हैं। प्रश्न पूछा जाता है। "उबाल आ गया?" और उसके अनुरूप उत्तर दिया जाता है। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद के वर्षों में पोंगल के शुभचिंतन कार्डों का आदान-प्रदान समाजिक शिष्टाचार ही नहीं, एक अनिवार्य रिवाज बन गया है। पोंगल के व्ययपत्रक में परिवार के नौकर चाकरों और कारोबार के मजदूरों को नये कपड़ देने की गुंजाइश अवश्य रखी जाती है। यह वर्ष का वह समय होता है जब किसानों-जमीनदारों के कोठार अनाज से भरे होते हैं और जेब में रुपया भी खनकता रहता है। अतः हर आदमी दिल खोल कर इस आनंद का उपभोग करता है और उदारता पूर्वक दूसरों को भी उसमें सहभागी करता है। यह एक मात्र उत्सव है जो हमेशा एक निश्चित दिन, तई मास की प्रतिपदा (अंग्रेजी तारीख के अनुसार (14 जनवरी) को मनाया जाता है। अन्य त्योहार तिथि-नक्षत्र के घटने बढ़ने के हिसाब से आगे-पीछे होते रहते हैं। इस उत्सव के दरमियान मकानों को चूना सफेदी से साफ करके रंग-रोगन द्वारा सजाया जाता है और सजावट की हर वस्तु को कील-कांटे से लैस करके लकदक रखा जाता है

आज कल पोंगल से शुरू होने वाले तीन दिनों की सांस्कृतिक समारोह के रूप में मनाया जाता है। इन दिनों साहित्यकारों की गोष्ठियां, कवि-सम्मेलन आदि का आयोजन होता है। यह सब सामूहिक शिक्षा और पोंगल के त्योहार के धर्म-निरपेक्ष स्वरूप को ध्यान में रखकर किया जाता। वैसे भी, इस उत्सव को मनाने के पीछे कोई खास धार्मिक उद्देश्य कभी नहीं रहा।

पोंगल के दूसरे दिन के समारोह को 'मातुप पोंगल' कहा जाता है। गाय-बैलों को नहलाकर उन्हें सुंदर रंगों से रंगा जाता है। फिर रंग-बिरंगी गोटे-किनारी वाली जरी-रेशम की झूल, फूल-मालाएं, घंटियां आदि से उन्हें सजाया जाता है। अंत में उनके प्रति कृतज्ञता और पूज्यभाव व्यक्त करने के लिए उन्हें भी पोंगल

खिलाया जाता है। उस रोज मवेशियों के लिए विशिष्ट प्रकार का पोंगल अलग से पकाया जाता है।

बैलों की दौड़

तीसरे पहर बैलों को मैदान के एक ओर अहाते में एकत्र किया जाता है। यहां उनका पगहा, नाथ वगैरह निकाल कर उन्हें मुक्त कर दिया जाता है। फिर उन्हें उकसा कर एक-एक करके बाहर छोड़ा जाता है। पूरा समय ढोलों का तुमुल निनाद और एकत्र जनसमूह का कोलाहल होता रहता है। इससे बिदल कर मवेशी पहले तो गाड़ियों को एक-दूसरे से सटा कर बीच में छोड़े हुए संकीर्ण मार्ग से आगे बढ़ते है। फिर मानो चुनौती का स्वीकार कर रहे हों इस तरह बिफर कर और कान, पूंछ फटकार कर चारों दिशाओं में भाग छूटते हैं। अब लोगों में बैलों के सीगों से बंधे हुए कपड़े को झपट कर उन्हें काबू में लाने की स्पर्धा शुरू होती है। इसमें बड़ी सावधानी, सतर्कता, समयावधान, पांवों की चपलता और कलेजे की दिलेरी की आवश्यकता पड़ती है। जो अधिक-से-अधिक बैलों को वश में कर सकते हैं वे लोगों की नजर में सूरमा हो उठते हैं। मानी हुई बात है कि इस उपक्रम में उन्हें काफी चोट-खरोंच लगती होंगी।

बैलों की दौड़ की यह स्पर्धा और भी कई रोज होती है। मदुरै, रामनाड और पुद्दुकोट्टइ प्रदेशों में तो यह खेल किसानों के दिलबहलाव का प्रमुख साधन बन गया हैं। इस मनोरंजन का आयोजन करने में प्रचुर धन खर्च किया जाता है और लंबे-चौड़े इंतजाम की आवश्यकता पड़ती है। अरलिप्परइ, सिखायाल, उरंगनपट्टी, विरलीमालै और पुद्दुकोट्टै में इसका प्रदर्शन अकसर होता रहता है। इन स्थानों पर इस खेल को उसकी पूरी शान के साथ आयोजित होते देखना एक अविस्मरणीय अनुभव होता है।

तमिलनाडु की यह बैल-भिड़ंत स्पेन आदि देशों में प्रचलित बुल-फाइट से नितांत भिन्न-कोटि की होती है। वहां पर बैल के मुकाबले में मनुष्य का पलड़ा बहुत भारी होता है जबकि यहां पूरी स्थिति बैल के पक्ष में होती है। ये मुठभेड़ें मारवा जाति के लोगों में अधिक लोकप्रिय हैं। खेतीबारी करने वाला हर किसान और पशु पालन करने वाला हर अहीर इसमें दिलचस्पी रखता है। बैलों को काबू में करते समय वे उनसे बिलकुल इस तरह पेश आते हैं मानो अमरीका में

गायों के हांके में कोई काउबॉय गायों को घेर रहा हो।

जो बैल किसी प्रकार किसी के भी काबू में नहीं आते उनकी प्रतिष्ठा और कीमत बहुत बढ़ जाती है। धनी ज़मींदार उन्हें खरीद कर अपने बाड़ों में दाखिल कर लेते हैं और कुशल प्रशिक्षकों द्वारा उन्हें तालीम दिलवाते हैं। बड़ी-बड़ी बैल-भिड़ंतों में तमाशे के व्यवस्थापक गण साधारण बैलों की अपेक्षा मंदिरों और जमींदारों के बाड़ों के सीखे और सधे हुए बैलों की मुठभेड़ करवाना अधिक पसंद करते हैं।

बैलों की भिड़ंत कभी-कभी बड़े खतरे का कारण भी हो सकती है। किसी नौजवान की मर्दानगी की जांच करने की यह एक अग्निपरीक्षा है। कहा जाता है कि रामनाड के राजा और उनके सरदारों के परिवारों की लड़कियां इन द्वंद्वयुद्धों को बड़ी दिलचस्पी से देखती थीं और सफलता प्राप्त करने वाले प्रतिद्वंद्वियों को ही अपना जीवनसाथी चुनती थीं।

इन मुठभेड़ों के पीछे कुछ कर्मकांडी अभिप्राय भी रहा है। उसका संबंध फसल की उर्वरता के साथ लगाया जाता है। प्राचीन क्रीट के निवासियों में भी धार्मिक कर्मकांड के एक विभाग के रूप में मनोरंजन का यह प्रकार प्रचलित था। ए. एल. बाशम् ने अन्य कई तथ्यों के साथ इस बात के आधार पर भी तमिल प्रजा का संबंध भूमध्यसागर की अतिप्राचीन संस्कृतियों के साथ जोड़ा है।

माहम्

यह उत्सव मासी महीने में आता है। इस दिन देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को जुलूस के रूप में समुद्र स्नान के लिए ले जाया जाता है। सागर से दूर होने वाले स्थानों में स्नान और जलविहार का अनुष्ठान नदी या तालाबों में संपन्न किया जाता है।

माहम् वैसे भी बड़े महत्व का वार्षिक पर्व होता है। पर बारह साल में एक बार तो उसका महत्व कल्पनातीत हो उठता है। गुरु ग्रह के सिंह राशि में प्रवेश करने पर कुंभकोणम् के प्रसिद्ध जलाशय महामाहम् में दक्षिण भारत का कुंभमेला जुड़ता है। उन दिनों अपार जनसमूह कुंभकोणम् में उमड़ पड़ता है। बड़े-बड़े संत महंतों, दार्शनिकों, महान् विभूतियों और राजपुरुषों के कंधे से कंधा

भिड़ा कर नगण्य से नगण्य आदमी भी कुंभकोणम् के जलाशय में डुबकी लगा सकता है। ऐसा माना जाता है कि उस रोज भारत की समस्त पवित्र नदियां कुंभकोणम् के जलाशय में आन कर मिलती हैं। अतः उस रोज उसमें डुबकी लगाने से भारत की सारी पवित्र नदियों में स्नान करने का पुण्य एक साथ मिल जाता है।

महाशिवरात्रि

मासी (फरवरी-मार्च) महीने की कृष्ण त्रयोदशी के दिन महाशिवरात्रि का पर्व पड़ता है। शैवों की दृष्टि में इससे पवित्र ओर कोई उत्सव नहीं। परंपरा से चली आने वाली जनश्रुति है कि इस रोज महादेवजी ने देवताओं और दानवों द्वारा अमृतप्राप्ति के लिए किये गये क्षीरसागर के मंथन में से निकले हुए हलाहल विष का पान कर के समूची सृष्टि की रक्षा की थी।

उस रोज सुर-असुर और मानवों ने मिल कर भगवान शिव की जिस पद्धति से उपासना की थी उसी को प्रतिवर्ष शिवरात्रि के दिन आज तक दोहराया जाता है। इस कथा का एक और पाठांतर यह है कि महाप्रलय के समय जब पूरी सृष्टि महाप्लावन के सर्वग्रासी अंधकार में डूब गयी थी तब भगवती गिरिजा ने भगवान शिव की प्रार्थना कर के संसार में प्रकाश की पुनःस्थापना की थी। कहा जाता है कि शिवरात्रि के रोज जनसाधारण द्वारा महादेवजी की अर्चना-उपासना के लिए आजकल जिस पद्धति का प्रयोग होता है वह वही है जिसे किसी युग में भगवान भोलानाथ को प्रसन्न करने के लिए देवी पार्वती प्रयुक्त किया था।

महाशिवरात्रि का उत्सव देश के हर शिवालय में ही नहीं, शैवमत पर थोड़ी बहुत भी श्रद्धा होने वाले हर हिंदू परिवार में उतने ही भक्तिभाव से मनाया जाता है। और अब तो शैवों और वैष्णवों के बीच का वह पुराना विद्वेष नहीं रहा। अब तो हर हिंदू शैव और वैष्णव, दोनों मतों पर एक साथ समान रूप से श्रद्धा रख सकता है। शिवरात्रि के दिन पूरी रात जागरण करके अखंड नामस्मरण किया जाता है। शिव भक्तों का सबसे लोकप्रिय मंत्र है ॐ नमः शिवाय। इसके अलावा शिव की महिमा गाने वाले अनगिनत स्तोत्र उपलब्ध हैं। दूसरे दिन सुबह स्नान-ध्यान और शिवोपासना से निवृत्त हो कर लोग व्रत का

पारण करते हैं। रात भर शिव मंदिरों पर रंगबिरंगी रोशनी की जाती है। रात के बारह घंटों में तीन-तीन घंटे के हर प्रहर में अलग-अलग पद्यति से अर्चना होती है। शिवलिंग पर पहले प्रहर में दूध का, दूसरे में दही का, तीसरे में घृत का और चौथे में मधु का अभिषेक होता है।

पांगुनी उत्तिरम्

पांगुनी वर्ष का अंतिम महीना होता है। इसमें प्रदेश के अधिष्ठाता देवी-देवता के विवाह का वार्षिकोत्सव तमिलनाडु के हर देवालय में मनाया जाता है।

यह महीना भगवान मुरुगन सुब्रह्मण्यम् के सम्मान में होने वाले उत्तिरम् नामक दस दिन के समारोह के लिए प्रसिद्ध है। ग्रामीणों की दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण उत्सव होता है। इस समय खेती बारी के काम से फुरसत होने के कारण लोग अपना पूरा ध्यान इसमें लगा सकते हैं। हाथ में आयी हुई धान की फसल का कुछ हिस्सा लोग आवश्यक तौर पर मंदिरों को समर्पित करते हैं।

अंतिम दिन तड़के ही भगवान सुब्रह्मण्य के प्रिय आयुध भाले का जलूस निकाल कर नदी के तीर तक ले जाया जाता है। नदी में लोग विविध प्रकार के चढ़ावे चढ़ाते हैं। मंदिरों में कार्तिकेय की प्रतिमा के साथ-साथ उनकी खड़ाऊं, कावड़ी (पालकी के आकार का कंधों पर उठाने का छोटा-सा वाहन जो घंटियों, मोरपंख आदि से सजा रहता है) और 'इदम्बन ताड़ि' नामक उनके प्रिय बल्लम की भी पूजा की जाती है।

पांगुनी उत्तिरम् के बाद वाला दिन इदम्बन उत्सव के लिए सुरक्षित रखा जाता है। उस रोज भगवान सुब्रह्मण्य के इदम्बन नामक सामंत की पूजा-अर्चा की जाती है। उपासना के दरमियान इदम्बन की प्राणशक्ति का कई भक्तों के शरीर में संचार हो जाता है और वे उन्मत्तों का सा बर्ताव और प्रलाप करने लगते हैं। कभी वे सिर धुनने लगते है। तो कभी इदम्बन ताड़ि (बल्लम) से अपने ऊपर प्रहार करने लगते हैं तो कभी भविष्यवाणी करने लगते हैं। इन जटिल भविष्यवाणियों का सही-सही अर्थ लगाना आसान बात नहीं। श्रद्धालु लोग मानते हैं कि इन प्रलापों में विभिन्न प्रतीकों की आड़ में भविष्य में होने

वाली घटनाओं की पूर्व सूचना छिपी रहती है और भक्तों के माध्यम से स्वयं इदम्बन ये सूचनाएं देते हैं।

कृष्ण जयंती (श्रीजयंती)

यह भगवान विष्णु के कृष्णावतार लेने के उपलक्ष्य में विष्णुमंदिरों में मनाया जाने वाला उत्सव है। इस समारोह में प्रधान स्थान प्रार्थनाओं और भजनों का रहता है। दसवें दिन कृष्णजन्म का उत्सव बड़े आनंद और उत्साह के साथ मनाया जाता है। छाछ भरी मटकी के मुंह पर पीला कपड़ा बांध कर उसे बांस के ऊपर बांध दिया जाता है। कमरे के बाहर खड़ा हुआ कोई व्यक्ति घिरनी की सहायता से मटकी को ऊपर-नीचे करता रहता है। लड़कों के हाथ में मटकी को फोड़ने के लिए एक-एक डंडा दे दिया जाता है। जैसे ही कोई मटकी को फोड़ने का प्रयत्न करता है, उसे ऊपर की ओर खींच कर उसकी पहुंच के बाहर कर दिया जाता है। लीला का दर्शन करने वाले भक्तगण ग्वालबालों की पोशाक पहने कृष्ण के इन सखाओं पर केशरिया पानी और गुलाल छिड़कते रहते हैं। डोरी से मटकी को ऊपर खींचने वाले का ध्यान कुछ इधर-उधर होने पर या किसी ग्वाले द्वारा बहुंत ऊंचा उछल कर वार किया जाने पर मटकी अंत में फूट ही जाती है। फोड़ने वाले को विजेता (कृष्ण) घोषित किया जाता है।

कंबम उत्सव

कंबम (स्तंभों का उत्सव) मुख्यतः गांवों में मनाया जाता है। इसका आरंभ मंगलवार के दिन अय्यनार देवता पर अलरी के फूल चढ़ाने से होता है। उसके बाद वाले मंगलवार को नीम की तीन शाखाओं वाली डाली ला कर उसे समारोह-पूर्वक अय्यनार मंदिर के सामने रोपा जाता है। इस प्रथा को ध्वजारोपण के समकक्ष माना जा सकता है। इसके बाद उत्सव का अधिकृत तौर पर प्रारंभ होता है और फिर उसकी समाप्ति तक कोई गांव छोड़ कर नहीं जा सकता। सप्ताह भर तक शाम को लोग रोपे हुए कंबन के गिर्द नाचते रहते हैं।

उसके बाद वाले मंगलवार को भी लोग मंदिर के अहाते में पोंगल पकाते हैं। बुधवार को रथयात्रा निकलती है। चलते हुए रथ के पहिये के नीचे एक जीवित मेमने की गरदन रख कर उसकी बलि चढ़ाई जाती है। यह क्रिया हर

मोड़ और हर चौराहे पर दोहरायी जाती है। बलि चढ़ाये हुए सब मेमने धोबियों को बांट दिये जाते हैं और इसे रथ की सजावट में उनके योगदान का पारिश्रमिक मान लिया जाता है। गुरुवार को बीस-पच्चीस लोग शरीर में सूइयां और तेज नोक वाली सलाखें भोंक कर जुलूस निकालते हैं। स्त्रियां मविलक्कु नामक दीपक जलाती हैं। चावल के आटे के मीठे पिंड में ऊपर को छोटा सा गड्ढा बना कर उसमें घी भर दिया जाता है और सूत की बाती जला दी जाती है। हर स्त्री अलरी के फूलों से सजी थाली में माविलक्कु रख कर थाली को अंजलि पर रख कर चलती है। रात को देवता को सजी हुई पालकी में बिठा कर गांव भर में उसका जुलूस निकाला जाता है। उत्सव की शोभा बढ़ाने के लिए आतिशबाजी और पटाखे छोड़े जाते हैं। शुक्रवार को उत्सव समाप्त हो जाता है। रोपे हुए कंबम को उखाड़ कर उसका जुलूस निकाला जाता है और अंत में उसे किसी कुएं में विसर्जित कर दिया जाता है। जुलूस के दरमियान लोग हल्दी से रंगा पानी एक-दूसरे पर छिड़कते रहते हैं। घर-घर की स्त्रियां हथेलियों के संपुट में माविलक्कु उठाये उसे देवता पर चढ़ाने के लिए मंदिर तक जाती हैं।

आठवें रोज मंदिर का पांडरम् (पुजारी) उपवास करता है। इससे पहले उसे जुलूस के रूप में कुएं तक ले जाया जाता है। वह अपने सिर पर फूलों और नीम की पत्तियों से सजा हुआ कोरा घड़ा (कुंभम्) उठाकर चलता है। स्नान करवाने के बाद ब्राह्मण पुरोहित द्वारा उसकी कलाई पर एक ताबीज बांधा जाता है। इसके बाद पांडरम् मंदिर के भीतर चला जाता है और तीन रोज तक मंदिर के दायरे से बाहर नहीं निकलता।

नवें रोज देवता को सामुदायिक रूप से पोंगल का भोग लगाया जाता है। भोग का ठीक समय गांव के हर परिवार को ढिंढ़ोरा पीट कर बता दिया जाता है। पोंगल पकाना चाहने वाले लोगों को जुलूस के रूप में गांव के चौराहे तक ले जाया जाता है। वहां ये लोग अलग-अलग पोंगल पकाते हैं; उसे सामूहिक रूप से देवता को अर्पित करते हैं और फिर उसे उपस्थितों में प्रसाद के रूप में बांट दिया जाता है।

दसवें रोज फिर माविल्क्कु का दीपदान होता है। जुलूस के अंत में सार्वजनीन कुंभम् को कुएं में विसर्जित कर दिया जाता है। पांडरम् कलाई पर से तावीज़ खोलकर उसे भी कुएं में डाल देता है। रात को लोकनाट्य (तेरुक्कूतु) या लोकनृत्य का आयोजन होता है।

'मदुरै वीरन' ग्रामीणों का एक और महत्वपूर्ण और लोकप्रिय उत्सव है। इसके दौरान में पशुओं की बलि दी जाती है।

मोन्तियान उत्सव

यह उत्सव आदि महीने में मदुरै के पास के तिरुवलवयनल्लूर नामक स्थान पर मनाया जाता है। उसकी कुछ विशिष्टताओं के कारण यहां उसका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

इल उत्सव का आरंभ देवता की अनुमति मिलने पर ही होता है। देवता की इच्छा छिपकली के चिचियाने के रूप में व्यक्त होती है। वह यदि किसी विशिष्ट दिशा की ओर मुंह करके या आम या नारियल के वृक्ष पर चिचियाये, तो इसे देवता की स्पष्ट अनुमति मान लिया जाता है। जब तक छिपकली चिचियाती रहे, प्रार्थना चलती रहती है। शीघ्र ही किसी भक्त के शरीर में देवी या देवता का संचार होता है और वह सिर धुनता हुआ उत्सव के आयोजन की रूपरेखा के संबंध में आदेश देने लगता हैं। उत्सव का दिन निश्चित होते ही पुआल की रस्सियों में बंधी हुई नीम पत्तियों से सड़कों और गलियों को सजाया जाता है। अय्यनार मंदिर का पुजारी मिट्टी के घोड़े बनाने के लिए मंदिर के तालाब में से प्रतीकात्मक रूप से चिकनी मिट्टी के कुछ ढेले खोदता है। खिलौने के ये घोड़े उत्सव के दरमियान देवता को अर्पित किये जाते हैं। मिट्टी के घोड़े बनाने के लिए पुजारी को थोड़ा बहुत पारिश्रमिक भी दिया जाता है।

घोड़े की आकृति के मिट्टी के इन खिलौनों को समारोहपूर्वक जुलूस के रूप में अय्यनार मंदिर में ले जाया जाता है। रास्ते में ग्रामदेवता (मोन्तियन) की पूजा की जाती है। यहां से खिलौने के घोड़ों को रथ पर सवार कर दिया जाता है। सोनाचामी मंदिर से जुलूस बनाकर आने वाले चक्कीलियनों का दस्ता मुख्य जुलूस में यहीं पर शामिल होता है। ये लोग रंग बिरंगी पोशाकें पहने रहते हैं और उनके हाथों में बिना छड़े धान से भरी हुई ताड़पत्र की छबड़ियां होती हैं। हर छबड़ी में एक छोटा चाकू और एक छोटा सा डंडा रखा रहता है। मोन्तियन मंदिर में चक्कीलियनों का पुजारी धान भरी छबड़ियां अश्वप्रतिमाओं को अर्पित करता है, एक मुर्गे की बलि देता है और उसके खून को मिट्टी के घोड़ों की आंखों में आंजता है। यह करते समय पुजारी अपनी आंखों को सफेद कपड़े

की पट्टी के बांधे रहता है। इसके बाद अश्वप्रतिमाओं को लेकर समूचा समुदाय अय्यनार मंदिर में जाता है। जुलूस के अग्रभाग में सर पर मिट्टी के कोरे घड़े उठाये हुए कनक्कन के परिवार की स्त्रियां चलती हैं। मंदिर पहुंचते ही अय्यनार की पूजा की जाती है। उसे पके हुए भोज्य पदार्थों का भोग लगाया जाता है और रक्तरंजित बलि समर्पित की जाती है।

चौथे (अंतिम) दिन गांव वाले बैलों को खदेड़ने के दिलबहलाव का आयोजन करते है। बैलों को बांधने के रस्से पल्लनों द्वारा पुआल के साथ मूंज और नारियल के रेशों को बट कर बनाये जाते हैं। रस्सा (वडम्) जब बट लिया जाता है तो उसे पल्लनों के कुलदेवता कनियालन् के सामने रखा जाता है। कुछ तांत्रिक अनुष्ठानों के बाद पल्लनों के पुजारी के शरीर में देवता का संचार होता है। वह रस्से को पल्लनों के हाथ में देकर आगे बढ़ने का आदेश देता है। पल्लन रस्से को जुलूस के रूप में मोन्तियन मंदिर तक ले जाते हैं। यहां रस्से को देवता के आशीर्वाद से पवित्र किया जाता है। रस्से का एक सिरा जमीन में मजबूती से गाड़ी हुई बल्ली से बांध दिया जाता है। रस्से को पकड़कर सुरक्षित रखने के लिए इस छोर पर चार आदमी भी उपस्थित रहते हैं। दूसरे सिरे को बैल के गले में बांध दिया जाता है। बैल को फूल मालाएं, रुपयों की हमेल और खाद्यपदार्थों की मालाओं द्वारा सजाया जाता है। इसके बाद मजमे के लोग बैल को तरह-तरह से उकसाना-भड़काना शुरू करते हैं। शीघ्र ही वह उन्मत्त होकर चारों खुरों से उछलने लगता है। वह रस्से को तोड़ कर भागने का प्रयत्न करता है; पर वैसा कर नहीं पाता और शीघ्र ही थक कर ढेर हो जाता है। इस मनोरंजन में भाग लेने के लिए लाये जाने वाले बैलों में से पहला आवश्यक तौर पर किसी मुसलमान का होता है। बैलों की इस रगेद के बाद ग्रामदेवता को फिर एक बार बलि चढ़ायी जाती है। जिसमें काफी खून-खराबा होता है। इसके बाद उत्सव समाप्त हो जाता है।

नाडपव उत्सव

'नाडवावि' नाडपवै का ही अपभ्रंश है। 'वावि' का अर्थ होता है कुआं।

कांचीपुरम् में होने वाले इस उत्सव में मद्रास नगर के व्यापारी बड़ी संख्या में उपस्थित रहते हैं। वर्ष भर में व्यापार की धकापेल में उन्होंने जो मन्नतें-प्रतिज्ञाएं

की होती हैं, उन्हें यहां आकर पूरा करते हैं। पूरे उत्सव के दरमियान गरीबों के लिए खाने-पीने का इंतजाम रहता है।

अत्यंत महत्वपूर्ण होने पर भी यह एक स्थानीय उत्सव है। इसे अप्रैल-मई में पड़ने वाली पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। इसे आरंभ करने का श्रेय कोडी कन्निकदानम् ताताचारियर को है। उसने वरदराजपेरूमल का मंदिर बनवाने के लिए चंदा इकट्ठा किया था। रास्ते में डाकुओं ने उसे लूटना चाहा पर महावीर हनुमानजी ने उसकी रक्षा की। इससे अभिभूत होकर उसनेआंज नेय (हनुमानजी) का मंदिर बनवाया और विशाल तालाब खुदवाया। पर उसके मन में यह भावना बराबर बनी रही कि रुपया तो भगवान वरदराजपेरूमल का मंदिर बनवाने के लिए इकट्ठा किया गया था। अंत में वरदराज के भक्तों ने निश्चय किया कि भगवान को उनकी वर्षगांठ के दिन अष्यंगारकुलम् पहुंचा दिया जाय। भगवान वरदराज का आविर्भाव यज्ञाग्नि में से हस्तम् के ऊपर हुआ था। आज भी इस उत्सव के दरमियान उनकी प्रतिमा को नादपवँ कुएं के भीतर बने हुए मंडपम् में ले जाया जाता है। यह कुआं स्थापत्य की भव्यता का अद्वितीय प्रतीक है। उसके स्तंभों और भीतरी दीवारों पर नितांत सुंदर शिल्प कृतियां तराशी हुई हैं। यह कुआं संजीवराय मंदिर के बहुत पास है और मंदिर के महाद्वार से लगा कर कुएं तक बजरी की पगडंडी बनी हुई है। कुएं के अनेक स्तंभों वाले महाद्वार से ही एक गहन गुफा की शुरूआत हो जाती है। यहां से कुएं के भीतर तक सीढ़ियां बनी हुई हैं। उत्सव के समय कुआं पानी से लबालब भरा रहता है। पानी सबसे ऊपर वाली सीढ़ी को छूता रहता है। भगवान वरदराज पेरुमाल की मूर्ति को इस मार्ग से सीढ़ियों पर होकर कुएं में लाया जाता है। प्रतिमा को कुएं के जल में निमज्जित करके बाहर निकाल लिया जाता है।

कोडा उत्सव

यह मातृशक्ति को बलि बढ़ाने का उत्सव है जो कन्याकुमारी जिले के समुद्र किनारे के गांवों में मनाया जाता है। इसकी अधिष्ठात्री होती हैं भगवती अम्मान। असाध्य रोगों से पीड़ित हजारों श्रद्धालु इसे अंतिम उपाय मानकर यहां आते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि अन्य स्थानों पर चिकित्सा के सर्वश्रेष्ठ उपायों को भी असफल होते देखकर निराश हो चुकने वाले रोगियों को यहां

आते ही अपने स्वास्थ्य में चमत्कारपूर्ण सुधार महसूस होने लगता है। यह उत्सव मलयालम मास कुंभम् (फरवरी-मार्च) में पड़ता है। उसकी समाप्ति महीने के अंतिम मंगलवार को होती है। माता भगवती के चरणों में अपने अहम् को विसर्जित करके सुदूर केरल तक के यात्री पैदल चलकर उत्सव में सम्मिलित होने आते हैं। चढ़ावे में चावल, काली मिर्च, गुड़, हल्दी खिलौने और रोगपीड़ित अंगों की चांदी या लकड़ी की बनी प्रतिकृतियों का समावेश होता है। अंतिम दिन आधी रात के समय संपूर्ण नीरवता में पुजारी ओडुक्कु नामक तांत्रिक पूजा-विधि करवाता है। यह श्रद्धाभक्ति के साथ भंग भी प्रेरित करती है। इस समय हल्दी-चूना और अन्य द्रव्यों से बना हुआ लाल रंग का द्रवपदार्थ देवी को समर्पित किया जाता है।

कुंभाभिषेकम्

कुंभाभिषेकम् का शब्दार्थ होता है पवित्र नदियों के जल द्वारा मंदिरों के 'विमानम्' (गर्भ गृह के शिखरों) और रायगोपुरम् (बाहरी शिखरों) के कलशों का अभिषेक करके नये बने हुए या जीर्णोद्धार किये हुए मंदिरों को पवित्र करना। इससे देवालयों की प्राणप्रतिष्ठा होकर वे देवार्पित हो जाते हैं। यह किसी भी शुभ दिन किया जा सकता है। यह एक लंबा अनुष्ठान है जिसमें पहले यागशालाओं का निर्माण आदि कई प्राथमिक विधियां करनी पड़ती हैं और जिसकी पराकाष्ठा मंडल-अभिषेकम् में होती है।

तमिलनाडु के बड़े मंदिर और विस्तृत वास्तुविन्यास होते हैं जो सरसरी निगाह से देखने पर न तो नजर के दायरे में आते हैं न मन की पकड़ में। उनकी छितरी हुई रचना पद्धति का एकबारगी या एकदम आकलन संभव नहीं होता। दूर से देखने पर ये मंदिर छोटे-बड़े गोपुरों और शिखरों के पुंज दिखाई देते हैं; परंतु पास जाकर देखने पर वे बहुविध कार्यकलाप वाली अनेकावयवी इकाइयां मालूम देने लगते हैं। कुंभाभिषेकम् उत्सव की विशेषता ही यह है कि उस समय लोगों को सारे गोपुरों के एकबारगी दर्शन हो जाते हैं। अत: आश्चर्य की बात नहीं कि भक्तों की भीड़ इस समारंभ को टकटकी लगाकर देखती रहती है।

हिंदुओं को विश्वास होता है कि निखिल ब्रह्मांड और पूरी चराचरा सृष्टि पृथ्वी, जल, अग्नि (तेज), वायु और आकाश इन पंचमहातत्वों से बनी हुई है।

इनमें का प्रत्येक महातत्व किसी-न-किसी वास्तविकता का प्रतीक है। पृथ्वी उपादान का, जल प्राणतत्त्व का, अग्नि मनस्तत्त्व का, वायु आंतरिक शक्ति का और आकाश आध्यात्मिक आनंद का प्रतिनिधित्व करते हैं। कर्मकांड में इन तत्त्वों के निश्चित वर्ण भी निर्धारित कर दिये गये हैं। पृथ्वी का रंग पीला, जल का सफेद, अग्नि का लाल, वायु का काला और आकाश का वर्ण नीला विहित किया गया है। जल और वायु, इन दो प्राणदायी तत्त्वों के अभाव में पृथ्वी पर जीवन की सृष्टि संभव ही नहीं। हमारे पूरे धार्मिक अनुष्ठानों में इन तत्त्वों का महत्व छाया हुआ है।

कुंभाभिषेकम् अनुष्ठान का सबध इनमें से जल तत्त्व के साथ है। सबसे पहले पवित्र संत पुरुषों द्वारा पवित्र नदियों का जल उनके उद्गम स्थान के पास से तांबे या चांदी के शुद्ध कलशों में भरा जाता है। इन कलशों पर बाहर की ओर चित्रविचित्र नक्काशी होती है और उन्हें फूलों से सजाया जाता है। यागशाल के विशिष्ट मंडप में स्थापना करके कलशों की पूजा की जाती है। उपासना की आध्यात्मिक शक्ति एवं जल की पवित्रता को बढ़ाने के लिए मंत्रोच्चारण किया जाता है।

कलशों को जल से सिंचित करने की इस क्रिया को ही कुंभाभिषेकम् या संप्रोक्षणम् कहते हैं। इस अनुष्ठान द्वारा देवताओं के निमित्त से बनवाये गये मंदिरों के पीछे की धर्म-भावना एवं पुण्य प्रयत्नों का चरमोत्कर्ष साधा जाता है। इसके पीछे दार्शनिक अभिप्राय यह रहा है कि मानव हृदय के भीतर आध्यात्मिक दृष्टिकोण की प्रतिष्ठापना करते समय मनुष्य को पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य का हृदय ही परमात्मा का निवासस्थान है। अतः उससे संबंधित हर वस्तु की पवित्रता के विषय में संदेह की गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए।

कुंभाभिषेकम् के निमित्त से समय-समय पर देवालयों की देखभाल भी हो जाती है। प्रतिमाओं के कंपन और दोलन को रोक कर उन्हें मजबूती से खड़ी करने के लिए उन्हें अष्टबंधनम् नामक रासायनिक पदार्थ की सहायता से पीठ (मूर्तियों के खड़े होने की वेदी या पीठिका) के साथ जोड़ दिया जाता है। यह योगिय रसायन कोम्बरक्कु (लकड़ी की राख), चुक्कन्न थूल (चूने के पत्थर का बुरादा), कुनकिलियम (कोंकड़ी राल), करकावी (गेरू), सेम पंच (सेमर की

रुई), काथी लिगम् (पारद भस्म), मेझुगु (मोम) और नेरुमै वेन्नाइ (भैंस के दूध का मक्खन) के योग से बनाया जाता है। इन घटकों का मिश्रण करने वाले और देव प्रतिमाओं की स्थापना करने वाले राज-मजदूर पहले स्नान करके ही काम का आरंभ करते हैं। पूरा समय वे जिस देवता के मंदिर के कुंभाभिषेकम् का काम हो रहा हो, उनका नामोच्चार करते रहते हैं और उसकी महिमा के स्तोत्र या भक्तिरस के भजन गाते रहते हैं।

कुंभाभिषेकम् अत्यंत लोकप्रिय उत्सव होता है। इन आकर्षक और प्रेक्षणीय उत्सवों को देखने के लिए लोग लाखों की संख्या में उपस्थित रहते हैं। अनपढ़ ग्रामीण तो आस-पास के किसी बड़े मंदिर के कुंभाभिषेकम् के वर्ष के आधार पर ही समय गणना करते हैं। अमुक घटना अमुक मंदिर के कुंभाभिषेकम् से इतने वर्ष पहले हुई थी, या इतने वर्ष बाद। जनगणना अधिकारी को किसी बच्चे की उम्र बताते समय, परिवार में होने वाले ब्याह-शादी के समारोहों का उल्लेख करते समय, यहां तक कि अदालत में गवाही देते समय भी किसी घटना का समयोल्लेखन करने में वे इसी पद्धति का सहारा लेते हैं।

किसी भी प्रदेश में होने वाले कुंभाभिषेकम् समारोह में शामिल होने से उस इलाके का कोई भी व्यक्ति शायद ही चूकता हो। गांवों के लोग गिरोह बनाकर इनमें सम्मिलित होते हैं। आते समय वे अनेक प्रकार के वाद्य, आलवत्तम् (पौराणिक कथाओं के चित्रांकन वाली रंग-बिरंगी पताकाएं), विशाल छत्रम् और मंदिरों की पूजा-अर्चा में काम करने वाले और भी अनेक विध उपकरण साथ लाते हैं जिन्हें मंदिर में चढ़ा दिया जाता है।

सैंकड़ों मील की यात्रा लोग कभी बैलगाड़ियों से तो कभी अन्य किसी वाहन द्वारा; पर अधिकांश में पैदल चलकर तय करते हैं। कुछ लोग खाने की तैयार वस्तुएं साथ लेकर चलते हैं तो कुछ खाना पकाने के बर्तन साथ रखते हैं और मार्ग में मौका मिलते ही खाना बना लेने हैं। इन सबों का पड़ाव अकसर सूखी हुई नदियों के पात्रों में, धर्मशालाओं में या गांव के चौपाल की पांथशालाओं में पड़ता हैं। कुंभाभिषेकम् में उपस्थित रहना भगवान का आशीर्वाद प्राप्त करके पुण्य संचय करने का अत्यंत प्रभावशाली साधन माना जाता है।

लोकसाहित्य में कुंभाभिषेकम् के महत्व को लेकर एक संवाद प्रचलित है। कंभाभिषेकम् में सम्मिलित होकर वापस लौटने वाले किसी मनुष्य को इस बात

को लेकर खेद हुआ कि इस मौके को चूक कर गांव में रह जाने वाले एक व्यक्ति ने मोक्ष-प्राप्ति का एक सुनहरा अवसर खो दिया।

उत्सव में सम्मिलित न हो पाने वाले व्यक्ति ने जवाब दिया : "यहां मैं केवल शरीररूप से उपस्थित रहा। मेरा मन और मेरे विचार तो वहीं की दौड़ लगा रहे थे। मेरी आत्मा भी वहीं थी। मुझे विश्वास है कि भगवान ने मेरी प्रार्थना सुन ली होगी और मेरी मजबूरी को समझकर वे मुझे उतने ही पुण्य का भागी बनायेंगे। बल्कि एक तरह से देखा जाय तो मैं तुमसे भी अच्छा रहा। तुम वहां सिर्फ शारीरिक रूप से उपस्थित थे। तुम्हारा मन तो घर पर छोड़े हुए बच्चों की चिंता और घर की वस्तुओं की सुरक्षा के विचारों में उलझ रहा होगा। जबकि मैं सोते-जागते वहीं का विचार कर रहा था।"

ईसाई समारोह

तमिलनाडु में कई ईसाई उत्सवों का भी आयोजन होता है। इनमें चिरकुमारी माता मेरी को लेकर होनेवाला वेलनकन्नी उत्सव प्रधान है। यह प्रतिवर्ष 28वीं अगस्त से दसवीं सितंबर तक के दिनों में मनाया जाता है। इसमें बड़ी संख्या में रोमन केथलिक और अन्य पंथों के ईसाई ही नहीं, अन्य धर्मों के लोग भी न सिर्फ भारत के विभिन्न भागों ले बल्कि समुद्रपार के सुदूर मलयेशिया आदि देशों तक के आकर सम्मिलित होते हैं।

कुमारी मॅरी की प्रार्थना बड़ी फलदायिनी मानी जाती है। उसकी चमत्कारिक रोग निवारक शक्तियों को लेकर तो दंतकथाएं जुड़ गयी हैं। यहां तक कि माता मेरी के इस स्थान को पूर्व का लूर्द्स[1] माना जाने लगा है और विभिन्न धर्मों और जातियों के यात्री हजारों की संख्या में यहां आते हैं। कभी-कभी विदेशी भक्त इस धर्म स्थान को चढ़ावे भेजते हैं। चढ़ावे की वस्तुओं को बोतलों या बांस की पोली नलियों में मुहरबंद करके और उन पर इस तीर्थस्थान का पता-ठिकाना लिखकर समुद्र में छोड़ दिया जाता है। बात आश्चर्य की है, पर न मालूम कैसे और किन स्रोतों से ये वस्तुएं इस पवित्र स्थान तक पहुंच जाती हैं जहां उन्हें गिरजे की प्रदर्शनी में जमा कर दिया जाता है।

---

[1]फ्रांस में स्थित एक जलचिकित्सा केंद्र जहां के पानी में विस्मयकारक रोगशामक गुणधर्म पाये जाते हैं। प्रति वर्ष हजारों यात्री रोगनिवारण के लिए वहां जाते हैं।

मुस्लिम त्योहार

रबी उल सानी महीने में कंदूरी समारोह मनाया जाता है। तिरुनेलवेली जिले के पोट्टलपुदुर की प्राचीन मस्जिद पवित्रता की दृष्टि से तंजाउर जिले की नागोर मस्जिद के जितनी ही प्रसिद्ध है। पोट्टलपुदुर मस्जिद मोहिद्दीन अंदावर को समर्पित है, जिन्हें पैगंबर साहब का वंशज माना जाता है। उनके एक निकट शिष्य. ओलिविल्ला कादरी ने उनकी यादगार में यह मस्जिद बनवाई थी। पोट्टलपुदुर में ग्यारह दिन तक होने वाला कंदूरी समारोह पूरे तिरुनेलवेली जिले के भाविका को आकर्षित करता है। इस दरमियान मस्जिद ने पांचों वक्त की नमाज होती है। कंदूरी समारोह में होनेवाली अन्य कई विधियों पर हिंदू मंदिरों में होनेवाले अनुष्ठानों की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। चंदन, घी और हल्दी को एकत्र जला कर बनाई हुई पवित्र ऊदी भक्तों को बांटी जाती है। नमाज के उपरांत लोग अपनी शक्ति अनुसार दान-दक्षिणा मस्जिद को अर्पित करते हैं; इतना ही नहीं, रोगनिवारण की कामना से शरीर के व्याधिग्रस्त अंगों या आंखों की सोने-चांदी की बनी हुई प्रकृतियां भी चढ़ाते हैं। शारीरिक व्याधियों से पीड़ित लोग अंदावर से दुआ मांगते हैं और रोगमुक्ति के बाद योग्य चढ़ावा चढ़ाने की मन्नत मानते है। मुर्गों-बकरों का बलिदान भी दिया जाता है और फिर उसे हिंदू और मुसलमान भक्तों की उत्सुक भीड़ को बांट दिया जाता है। ये सब स्पष्ट रूप से हिंदू संस्कार हैं।

नागोर में हजरत सैयद शकु हमीद कादर वली साहब की दरगाह है। कहा जाता है कि ये संत धर्म या जाति का भेदभाव किये बिना अपने अनुयायियों पर नियामतों की वर्षा करते रहते थे। इनके नाम के साथ कई चमत्कार जुड़े हुए हैं। उनमें से एक यह है कि उन्होंने किसी सुराख वाले जहाज के सारे नाविकों को बचा लिया था।

इस दरगाह में चढ़ने वाले चढ़ावे में फूल, चंदन, अगरू शक्कर और नगदी का समावेश होता है। समारोह के दरमियान एक रोज वली साहब के किसी वंशज को पीर के रूप में चुनकर उसका चढ़ाओं से सम्मान किया जाता है।

दसवां रोज सबसे महत्वपूर्ण होता है। उस रोज वली साहब के मजार को चंदन-चर्चित किया जाता है। घिसे हुए चंदन को चांदी के पात्र में रख कर और

चंदनक्कुडु नामक रथ में स्थापित करके पहले उसका जुलूस निकाला जाता है। फिर दरगाह के बड़े खलीफा मजार पर उसका लेप करते हैं। इसके बाद वे जैसे प्रेतग्रस्त होकर बेहोश हो जाते हैं और उन्हें पुलिस के पहरे में घर ले जाया जाता है। होश आने पर वे चंदन को प्रसाद के रूप में जनसमुदाय में बांट देते हैं।

मेले

उत्सवों का ही एक भाग होने के कारण पारस्परिक मेलों ने अपनी धार्मिक पीठिका कायम रखी है। ग्रामीण लोगों के लिए यह खरीद-फरोख्त का अच्छा मौका होता है। आजकल ये मेले विशिष्ट वस्तुओं के थोक क्रय-विक्रय की मंडियों का काम करते हैं। तमिलनाडु के बड़े मेलों में हर गुरुवार को भरी जाने वाली पोल्लाची की पैंठ सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उस दिन पोल्लाची (पैंठ) का बाजार भीड़ से भरा रहता है। अन्नामल्लै पहाड़ियों, पोल्लाची घाटी और पालघाट के प्रदेश की पैदावार के लिए इस पैंठ ने सुस्थापित मंडी का रूप धारण कर लिया है। बेचे जानेवाले माल में कपड़ा, धान, दालें नारियल, मूंगफली, सब प्रकार के तेल, सब्जियां, फल, कच्चा, और कमाया हुआ चमड़ा और मुर्ग-बत्तख मुख्य हैं। इर्द-गिर्द के जंगलों से काटी हुई इमारती लकड़ी और पकड़े हुए हाथियों का क्रय-विक्रय भी इन्हीं पैंठों में होता है। तमिल में एक कहावत है कि मां-बाप को छोड़कर पोल्लाची पैंठ में कोई भी वस्तु खरीदी जा सकती है।

कन्याकुमारी जिले के वादसेरी नामक स्थान पर हर गुरुवार और रविवार को कनकमूलम् नामक मेला लगता है। यहां से थोक भाव में खरीदे हुए नारियल सब्जी-तरकारियां और मीठी नीम के पत्ते तमिलनाडु और केरल के दूर-दूर के बाजारों में बिकते हैं। इसी जिले में इरनियल नामक स्थान पर हर सोमवार को पैंठ भरती है। इस मेले में बिकनेवाली मुख्य वस्तुएं हैं हाथकरघे का कपड़ा, मवेशी और मुर्ग-बत्तख।

नवंबर-दिसंबर में प्रसिद्ध कार्तिगैदीपम् उत्सव के अंतर्गत भरा जाने वाला तिरुवन्नमलै का मवेशी मेला तमिलनाडु की अत्यधिक व्यस्त पैंठों में एक है। यह चार रोज तक चलता है। अंदाजा है कि इन चार दिनों में करीब बीस हजार ढोरों का क्रय-विक्रय होता है। इसमें गाय, भैंस, बैल, भेंड़, बकरी, टट्टू आदि सब प्रकार के पशुओं का समावेश होता है।

मदुरै के चैत्रोत्सव के साथ लगने वाला मेला उस जिले के काश्तकारों के लिये महत्वपूर्ण अवसर होता है। ग्रामीण जनता को तो मेलों के बिना का जीवन सूना-सूना और अधूरा लगता है। इन मेलों-पैंठों में आनेवाली स्त्रियां अपनी भेंट की यादगार स्वरूप चूड़ी-कंघी या बिंदी-काजल जैसी कोई न कोई चीज अवश्य खरीदती हैं।

6 मौखिक साहित्य

तमिल में लिपिबद्ध लेखन कला का विकास अत्यंत प्राचीन काल में ही हो चुका था। फिर भी तमिल साहित्य उसके लिखित साहित्य से कहीं पुराना है। उस अति प्राचीनकाल के आरंभिक गौरवग्रंथों के विभिन्न पाठ-भेदों में इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि बहुत लंबे युगों तक उन रचनाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से ही आगे बढ़ाया गया था। एट्टुथोगै, पतिनेन-कीलकनक्कु, और अन्य उपलब्ध काव्यसंग्रहों से यही सिद्ध होता है कि वे किसी प्राचीन मौखिक परंपरा के अविस्मरणीय गीतों के वर्गीकृत एवं लिपिबद्ध परवर्ती संकलन मात्र हैं।

मौखिक परंपरा के वैतालिक

मौखिक परंपरा के आरंभिक वैतालिकों और भाट-चारणों के कई प्रकार थे। पानर, कुठार, पोरुनार, विरलियार, पुलवर, और अकवुनर—सब इसी परंपरा के बंदी जन थे। जीभ की सहायता से उच्चारित वाणी ही उनकी अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम थी। इन गीतो की रचना ही नहीं, उनके अभ्यास और संप्रेषण की प्रक्रिया भी पूर्णतः मौखिक ही थी। संसार की हर भाषा के प्राचीन इतिहास में यही देखा जाता है कि वैतालिकों की मौखिक रचनाएं विद्वत्तापूर्ण लिपिबद्ध साहित्य की पूर्ववर्तिनी होती हैं।इन कवियों ने अपने विषयों का चुनाव तत्कालीन स्थानीय इतिहास या लोकप्रिय लोकसाहित्य में से किया था। पानर तो इन गीतों के उत्कृष्ट गानेवाले थे। वे यायावर बंदीजन थे और याझ नामक बीन की संगत पर गाते थे। यह बीन कभी तो छोटी सारंगी की तरह होती थी तो कभी वृहदाकार वीणा। पोरुना भी एक प्रकार के चारण थे जो छोटे डफों की संगत पर गाते थे। उनके गीतों के विषय अच्छी फसल के कारण होने वाले सरल

आनंद से लगा कर युद्धक्षेत्र की महान उपलब्धियों तक फैले हुए थे।

लिखित साहित्य का प्रभाव

मौखिक और लिखित साहित्य सदा एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। लिखित साहित्य के बहुत से उपख्यानों को किसी परवर्ती युग का मौखिक साहित्य अपना लेता है और मौखिक साहित्य की उपलब्धियों को लिखित साहित्य अंगीकार कर लेता है भाषाशिल्प और भावनाओं के क्षेत्र में तो सदा लिखित साहित्य मौखिक परंपराओं से प्रभावित रहता है।

तोलकप्पियार ने लोकगीतों के प्रभाव को पहचान लिया था। अपने पिंगल संबंधी परिच्छेद में उसने उन्हें स्थान दिया है और उनकी चर्चा की है। उसने उनका उल्लेख 'वयमोझी' (मौखिक साहित्य) कहकर किया है।

इलांगो अड़िगल के चिलप्पदिकारम् नामक संकलन में समुद्रतटीय गीत, शिकारियों के गीत, एवं गांव की ग्वालिनों और पहाड़ी प्रदेशों की किरातबालाओं के गीतों का क्रमबद्ध संचयन पाया जाता है। तमिल मौखिक साहित्य में उसे भद्रकाली से अभिन्न माना गया है। मलयालम के बहुत से गाथागीतों में इस अलौकिक वीरांगना का गुणगान किया गया है। कोंडुगल्लुर के परनी उत्सव को चिलप्पदिकारम् का ही आनुष्ठानिक रूप मानना होगा। तमिलनाडु में प्रचलित कोवलम् और कनक्की की लोककथा भी इसी कहानी का पाठांतर है। लेकिन जिन्होंने चिलप्पदिकारम् नहीं पढ़ा, उनमें यह कहानी लोककथा के माध्यम से ही प्रचलित हुई है।

तमिलनाडु के राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्यम् भारती की रचनाओं पर लोकगीतों का प्रभाव स्पष्ट जाहिर होता है। उदाहरणार्थ भारती के 'स्वातंत्र्यपल्लु' में कृषक लोकगीतों के 'पल्लुप-पत्तु' नामक छंद को ही परिष्कृत साहित्यिक रूप दे दिया गया है। स्त्रियों के उद्धार संबंधी गीतों में उन्होंने कुम्मी छंद का प्रयोग किया है। पुडिय कोनंगी (नया विदूषक) नामक गीत में लोक साहित्य के विदूषकों द्वारा प्रयुक्त ठेके का प्रयोग हुआ है। 'कन्नंन एन कदली' नामक रचना में समाविष्ट 'तंगमे-तंगम' और 'उन्नगतु नायक्ये एंगल मुतुमारि' नामक गीत भी स्पष्ट रूप से लोकगीतों पर आधारित हैं। लोकगीतों के इस व्यापक अंगीकार के सहारे ही भारती बड़ी सरल सुबोध शैली का प्रयोग कर सके जिसके कारण जन

साधारण में उनके प्रभाव का दायरा बहुत व्यापक हो गया।

मौखिक साहित्य के लक्षण

लिखित साहित्य के वर्तमान कालिक 'वरुकिरतु' ''पोकिरतु' आदि रूप मौखिक साहित्य में 'वरदु', 'पोकुतु', इ. हो जाते हैं।

लिखित साहित्य की अडितल, पिडितल वैतल आदि दंत्य तकारांत क्रिया संज्ञाओं का रूप तालव्य चकार में बदल कर अडिचल, विडिचल, वाचल इ. हो जाता है। इसी प्रकार क्रिया के स्वरांत समापक रूप भी बदल जाते है। उादाहरणार्थ तीतुत्तन का तीचुत्तन और मोइततु का मोचतु हो जाता है।

मौखिक साहित्य में व्यक्तियों का नामोल्लेख नहीं किया जाता। उनका उल्लेख और अभिज्ञान किसी उपनाम या संबोधन के परिचित नाम द्वारा होता है। इनमें के कई उपनाम चमड़ी के रंग को लेकर गढ़ लिये जाते हैं तो कुछ किसी शारीरिक व्यंग्य-वैगुण्य के आधार पर तो कुछ किसी आदत या लत को लेकर। कभी-कभी कथित व्यक्ति के मकान का गांव में स्थान या उसकी संपत्ति की किसी विशेषता को लेकर ही उसका नामकरण हो जाता है तो कभी स्कूल के हमजोलियों द्वारा चिढ़ाने के लिए गढ़ा हुआ नाम जीवन भर साथ चलता है। किसी का नाम उसके गांव की दिशा का पता देता है तो किसी का उसकी पत्नी के गांव का संकेत देता है। पत्नी की शारीरिक लंबाई चौड़ाई भी कई व्यक्तियों को पहचानने में सहायक होती है। इसी प्रकार कई लोगों का उल्लेख उनकी पोशाक या सिर पर पहनी जानेवाली पगड़ी, टोपी आदि के आधार पर होता है। व्यवसाय के स्थान या पेशे के आधार पर नामकरण होनेवालों की संख्या की तो गिनती नहीं की जा सकती।

मौखिक लोकपरंपरा में विशेषणों का खास तौर पर उनके तर-तम रूपों का प्रयोग दिल खोलकर होता है और अतिशयोक्ति को दूषण नहीं माना जाता। किसी ने बड़ी मर्मस्पर्शी बात कही हो, तो 'कोन्नुट्टन' शब्द का प्रयोग होगा, जिसका अर्थ होता है, कि उसने उनकी (सुनने वालों की) धज्जियां उड़ा दीं।'

शब्दों को काट छांटकर छोटा कर देने की या उनका रूप बिगाड़ देने की प्रवृत्ति तो मौखिक साहित्य में सब जगह पायी जाती है। उदाहरणार्थ 'नीरंब' का 'रोंब' हो जाता है, 'इराबु' का 'रा' और 'इरक्कइ' का 'रक्कइ'।

यहां मौखिक साहित्य के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

लोक कथाएं और संवाद

मान लीजिये कि क और ख दो आस्तिक श्रद्धालु आदमी हैं। क कट्टर शैव है। और ख की उतनी ही एकांतिक श्रद्धा वैष्णव मत पर है। क के पास एक गाय थी। दुहना पूरा होने से पहले ही वह दूध दुहे हुए बरतन को लात मार कर गिरा देती थी। मरकही गाय से परेशान होकर क उसे बेचना चाहता था। ख के पास दुर्दम्य बैलों की एक जोड़ी थी जिन्हें लाख प्रयत्न करने पर भी वह हल या गाड़ी में नहीं जोत पाता था। अतः वह भी उन्हें बेचना चाहता था। बात कुछ ऐसी बनी कि क और ख ने, जो एक-दूसरे से नितांत अपरिचित थे, अपने-अपने मवेशी एक-दूसरे को ही बेचे कुछ महीने बाद जब वे एक दूसरे से मिले तो दोनों की यही धारणा हुई कि उनके बेचे हुए मवेशी अपने नये स्वामी के साथ जरूर पहले से कुछ अच्छा बर्ताव करते होंगे। पर बात ऐसी नहीं थी गाय अब भी दुलत्ती मार दूध का बरतन गिरा देती थी। और बैल भी हल या गाड़ी को देखते ही चारों खुरों से उछलने लगते थे। बैलों का नया स्वामी क, जो कट्टर शैव था, कहता :

"उन्हें गाड़ी या हल में जोतने पर क्या हालत होती है ! शिव शिव ! उसका वर्णन नहीं कर सकता। और बांयें बैल को दाहिनी ओर और दांयें को बांयी ओर कर दिया जाय, तो भी शिव शिव।"

ख, जिसकी धर्म श्रद्धा क से रत्ती भर भी कम नहीं थी, जवाब देता : 'गोविंद गोविंद ! दूध दुहने बैठते ही वह मुझे लताड़ती है और दुहने का बरतन लुढ़का देती है। गोविंद गोविंद !"

एक आस्तिक और एक नास्तिक के बीच का वार्तालाप : एक बार एक परंपरानिष्ठ आस्तिक और एक धर्म के नाम से भी घृणा करने वाला नास्तिक अलग-अलग राहों से जा रहे थे। आस्तिक राह में पड़ने वाले किसी मंदिर में गया; वहां उसने प्रार्थना की और अपने काम से आगे बढ़ा। कुछ दूर जाने पर उसके पांव में किसी नुकीले पत्थर से चोट लग गयी। सामने से नास्तिक आ रहा था। उसे वहीं सड़क पर एक रुपया पड़ा हुआ मिला। उसने आस्तिक से कहा, "मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता। फिर भी मुझे धन लाभ हुआ। तुम्हें क्या मिला ?

कुछ भी नहीं। उलटे, पांव में चोट लग गयी।"

धार्मिक व्यक्ति ने जवाब दिया। "ऐसा नहीं है। राह बाट में संकटों की कोई कमी नहीं रहती। मुझे सांप डस सकता था और मेरी मौत हो सकती थी। यह मेरी धार्मिक श्रद्धा और भगवान की कृपा का ही परिणाम है कि मैं सांप के काटने से बच गया और मामूली चोट पर ही छुटकारा हो गया। इसके खिलाफ राहबाट में धनप्राप्ति होने वाले तुम जैसे भाग्यवान आदमी को तो विपुल संपत्ति मिल सकती थी। पर तुम्हें मिला क्या? सिर्फ एक रुपल्ली। यह इसीलिए हुआ कि तुम्हारे मन में विश्वास नहीं है। विश्वास होता तो तुम्हें कोई छिपा हुआ खजाना या सोने की खान मिल सकती थी अब रोओ अपने भाग्य को…।"

ज्योतिषी की कहानी : एक ज्योतिषी का भविष्यकथन जब शब्दशः सच्चा पड़ने लगा तो उसे बड़ी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। एकबार किसी आदमी की गाय चोरी हो गयी। वह गया ज्योतिषी जी के यहां। पंडितजी ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी गाय अमुक दिन अपने आप वापस आ जायगी। फिर ज्योतिषीजी महाराज ने उस आदमी की गाय के रंगरूप, आकृति-प्रकृति और शिनाख्ती चिह्नों की ब्योरेवार जानकारी हासिल की और अपनी ख्याति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए वैसी ही गाय खरीद कर, आधी रात बीते उस आदमी के बाड़े में बांध आये!

मद्रास नगर की आख्यायिका : गांव के लोग जब मद्रास जाते हैं, तो वहां की बड़ी-बड़ी इमारतों को देख कर हक्का-बक्का हो जाते हैं। किसी बड़ी इमारत का नाम पूछने पर किसी ग्रामीण को बताया गया कि वह कालेज है। बस, ग्रामीण ने उसी आधार पर हर बड़ी इमारत का नामकरण शुरू कर दिया। चिड़ियाघर को उसने नाम दिया युइर कालेज (जीवित प्राणियों का कालेज) और अजायबघर को कहा सेता कालेज (मृत प्राणियों का कालेज)। बात भी ठीक थी अजायबघर में अन्य वस्तुओं के साथ मरे हुए प्राणियों का संग्रहालय भी था।

सन 1942 में जब जापानी बममारी के भय से लोग मद्रास शहर से भाग रहे थे तो अनेक मकान खाली पड़े थे। उन पर अंग्रेजी में बोर्ड लगे रहते 'टू लेट' (To let) अथवा 'फारसेल' (For Sale)। अंग्रेजी वर्णमाला मात्र का ज्ञान

होने वाले कुछ ग्रामीणों ने अनुमान भिड़ाया कि ये तख्तियां उन मकानों के मालिकों के नाम की होनी चाहिए। बस, उन्होंने गांव में जाकर प्रचार शुरू कर दिया "मद्रास में मिस्टर टू लेट के जितने मकान हैं उतने उनके निकटतम प्रतिस्पर्धी फार सेल साहब के नहीं हैं।"

खेती संबंधी लोकगीत : मौखिक साहित्य का बहुत बड़ा हिस्सा खेतीबारी से संबंध रखता है। काश्तकारी की विभिन्न क्रियाएं करते समय किसान अनेक प्रकार के लोकगीत गाते रहते हैं।

लंबे बांस में बंधी हुई मोट और बैलजोड़ी की सहायता से सिंचाई के कुओं से पानी उलीचते समय किसान एट्र पत्तु नामक गीत गाते हैं। जनश्रुति है कि तंजाउर जिले के उपजाऊ दोआबे में से गुजरते समय महाकवि कंबन वहां के खेतिहारों के गीतों के माधुर्य से मुग्ध हो उठे थे। यह गीत बांस की पत्तियों पर सोयी हुई ओस की बूंदों को संबोधित करता है। शबनम की उन बूंदों का वर्णन करते-करते अनाम कवि उगते हुए सूर्य की प्रशस्ति गाने लगता है जो अपने गहरे चुंबन से उन बूंदों को सोख लेता है। गांवों में एक कहावत प्रचलित है 'एट्र पुत्तुक्कु एथिर पत्तु इल्लै'। (माधुर्य में एट्र पत्तु गीत की कोई गीत नही कर सकता)।

फसल की कटाई और धान की रोपाई के समय यहां तक कि जमीन जोतने और बीज बोने के समय भी विभिन्न प्रकार के गीत अकेले या सामूहिक तौर पर गाये जाते हैं। इन गीतों में, स्वाभाविक है कि, अच्छी फसल के लिए भगवान की प्रार्थना बराबर दोहरायी जाती हो। निम्नलिखित गीत में भगवान शिव और उनके दोनों पुत्र पिल्लइयरे (गणेशजी) और मुरुग (कार्तिकेय) की प्रार्थना की गयी है। 'पिल्लइयरे वरुम' आदि शब्दों में शुरू होने वाले इस प्रसिद्ध लोकगीत का भावार्थ इस प्रकार है :

हे भगवान्, हे शिवपुत्र,
पुत्रस्वामी, हम तेरी प्रार्थना करते हैं।
शूलधारी नाम है तुम्हारा
व्याघ्राम्बर वेश तुम्हारा

कोलाट्टम

पिन्नाल कोलाट्टम

कावडी नृत्य

करगम नृत्य

अमलतास के फूलों से सजे हुए
हे शिवपुत्र,
फरकती हुई ध्वजापताकाओं के समान
वर्षा के वे दिन फिर से भेजो।
हे कालिया पेरूमल
वर्षा के दिन फिर से भेजो
सुहानी ऋतुएं हों
और ऋतु-अनुसार बरखा हो
तो बंजर जमीनों में भी
फसल लहलहा उठे
वर्षा हो रोज
तो गांव की फसल का पोषण हो।
हे दीप्तिमान, शक्तिमान
भाले के धारक,
हे नाथ अरमूगम्,
कुन्दार कुड़ी के स्वामी,
कुरत्ती के पति,
जंगलों और पहाड़ियों के अधिष्ठाता,
वल्लियों के स्वामी,
हे शूलधारी,
गायें जब लीला हम तुम्हारी
भागे सब कष्ट शोक हमारे।

इसी प्रकार 'अडुक्की नाडुंगोडि अलगु साम्ब, नारू एड्डुतु' आदि शब्दों से आरंभ होने वाले धान के रोपाई के गीत की आंतरिक कामना यह है कि रोपे हुए पौधे सीधी कतार में हों और ऊंचे दर्जे के हों। धान के पौधे कलात्मक ढंग से रोपे जायं, और उनकी जड़े मजबूत हों।

किसानों ने अपने युग-युग के अनुभव पर आधारित बहुत सी कहावतें भी गढ़ ली हैं। 'एचवन एल्लु विथइ; वदिगावन वरगु विथइ; कोलुतवन कोल्लु विथइ;

सोवुक्कु इल्लतवन सोलम विथइ'—इस कहावत में निर्धन किसानों को तिलहन बोने की राय दी गयी है (क्योंकि इस फसल के लिए अधिक वर्षा या अधिक पूंजी की आवश्यकता नहीं पड़ती और उसे बेचकर तुरंत रुपया मिल सकता है)। या फिर वह ज्वार, बाजरा, रागी आदि बोये (क्योंकि इन्हें नहरों के सिंचाई के पानी की या अधिक बारिश की जरूरत नही होती)। धनवान किसान चना बोये और जिसके पास खाने को आटा भी न हो, वह मक्के की खेती करे।

एक और कहावत है: 'एडिप्पट्टम तेडी विधइ'। अर्थ यह कि किसानों को बीज बोने से पहले मौसम का ध्यान रखना चाहिये और आवश्यक पूर्व तैयारी कर लेनी चाहिये। और भी कई कहावतें हैं जिनमें की कुछ किसान को खेती के काम में वैयक्तिक देखभाल और सावधानी का महत्व समझाती हैं तो कुछ खेतों की निराई-गोडाई और प्राकृतिक खादों की उपयोगिता स्थापित करती हैं। एक कहावत है कि खेत घर के पास का ही अच्छा होता है। कम उपज वाला पास का खेत अधिक उपजाऊ पर दूर के खेत से कहीं अच्छा होता है। अन्य कुछ कहावतों का भावार्थ है:—'एक-दूसरे से सटे हुए निकटवर्ती खेत खरीदने के लिए तो घर का हाथी भी बेच देना चाहिये।' 'जलबहुल फसलों के लिए जिसे पानी उलीचना पड़ता हो, उसे परिवार के गुजारे जितनी पैदावार भी हाथ नहीं लगती।'

पलयकोट्टइ के पट्टागर की कई पीढ़ियों से तमिलनाडु के अत्यंत धनाढ्य कृषकों में गिनती होती है। उसका कंगेयम् स्थित मवेशी फार्म पूरे प्रदेश में प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध कंगेयम् बैलों का प्रजनन यहीं होता है। फार्म की देखभाल में वह बेहिसाब रुपया खर्च करता है। यहां तक कि इस बात को लेकर लोकगीत रचे जा चुके हैं कि 'कंगेयम् बैलो की कीमत कितनी ही अधिक क्यों न हो, वह वाजिब है। पट्टागर को अधिक मुनाफा नहीं होता क्योंकि उसकी अधिकांश कमाई फार्म की देखभाल और पोषण में खर्च हो जाती है।' गांवों के अनपढ़ और निर्धन जनसाधारण से ऐसा प्रमाणपत्र पाना कोई साधारण बात नहीं है।

इन बैलों का विक्रय कन्नपुरम् और तिरुप्पुर के रथोत्सवों के साथ भरने वाले लोकप्रिय मेलों के परिसर में पट्टागर की ओर से अस्थायी डेरे बनवा दिये जाते हैं। दस रोज़ तक उसका सदर मुकाम भी यहीं रहता है। इस सारे प्रबंध में नौकरी, रसोइयों, चपरासियों, संदेशवाहकों, बैलों को साधने वालों, उनकी

मालिश-खरहरा करने वालों, दलालों और कर्मचारियों की एक फौज वहां जुटी रहती है जिसको लेकर बेशुमार खर्च होता है। इन दिनों आने वाले मेहमानों की दिल खोलकर खातिर-तवाजह की जाती है सो अलग। लोकगीतों में इन सब पहलुओं का बड़ा जीवंत वर्णन हुआ है।

खेतीबारी के विविध कार्यकलाप में कभी-कभी दो व्यक्तियों के बीच प्रेम उत्पन्न हो जाता है। परंतु अकसर वह इकतरफा रह जाता है और दूसरे पक्ष की ओर से उसे कोई बढ़ावा नहीं मिलता। इस बात का वर्णन करने वाले 'वाड वेत्रिलइ, वातंगक वित्रिलइ' लोकगीत का भावानुवाद इस प्रकार किया जा सकता है :—

मुरझाया हुआ पान, सूखा हुआ पान
मुंह में बेस्वाद लगता है;
माथे पर कल की लगायी हुई बिंदिया
आज भली मालूम नहीं देती;
चिड़ियों द्वारा खरोंचे हुए कनेर के फूल
जूड़े की शोभा नहीं बढ़ाते।
ताउ का नारियल वृक्षों के झुरमुट में
किसी से छिप-छिप कर मिलना
हमें अच्छा नहीं लगता।

यात्रियों के लोकगीत : बीहड़ प्रदेशों में दुर्गम पर्वत शिखरों पर स्थित मंदिरों की पैदल यात्रा करने वाले श्रद्धालु यात्रियों द्वारा गाये जाने वाले भक्तिगीतों का समावेश भी मौखिक साहित्य में ही होता है। साबरीमलै जाने वाले यात्री रास्ते भर अय्यपा की प्रशस्ति के गीत गाते रहते हैं। इसी प्रकार पश्चिमी घाट मदुरै-रामनाथपुरम् के सीमावर्ती समागिरि पर्वत पर स्थित महालिंगस्वामी मंदिर के यात्री 'वली नादै च्चिवडु' से आरंभ होने वाला थके हुए यात्रियों का गीत गाते हैं। यह गीत लगभग ढाई सौ पंक्तियों का है और मार्ग में आने वाले हर स्थान का, नदी के घाटों का, हर छोटे-मोटे देवी-देवता के मंदिर,का और राह में पायी जाने वाली जड़ी-बूटियों के ओषधीय गुणधर्मों का ब्योरेवार वर्णन करता

है। इसकी रचना पति द्वारा पत्नी को संबोधित वृत्तांतकथन की शैली में हुई है। उसकी प्रमुख भावना है परमेश्वर के प्रति श्रद्धा और उसकी प्रार्थना में अडिग विश्वास। कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :

सिद्धि मुत्तियैक कोडुक्कुम
महालिंगनाथ राइयम्, तंगार तिनामे
माक्षिमइयैक कुंबिडुवोम, पोन्नुर तिनमे
अप्पन महालिंगरक्कु अनबुडेन पूजारिगल
मुप्पल अभिषेक मुमतन, तंगार तिनामे
मुक्यिामै नाडातुगिरार पोन्नुर तिनमे
अंबुवाडि वानतोरु आनंद बल्लिक—कोविल
मुनपे चिरुक्कुतु पार तंगार तिनामे
मुलुथम नाम्मैक—कतिडुवल पोन्नुर तिनमे ।

'सालइयिले रेण्डु मारम' आदि शब्दों से आरंभ होने वाला एक और प्रसिद्ध लोकगीत राहगीरों का प्रिय तराना है। इसमें राजमार्ग के दोनों ओर रोपे हुए वृक्षों पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी की गयी है। उसका अर्थ इस प्रकार है :

सड़क के दोनों ओर के ये पेड़
सरकार द्वारा रोपे हुए
ऊंचे और भव्य वृक्ष
दुश्मनों को फांसी देने को उपयुक्त !

लोरी : बच्चों को सुलाने के लिए माताएं लोरी गाती हैं। पेरियालवार ने श्रीकृष्ण को संबोधित करके दस लोरियां गायी थीं। प्रत्येक का अंत 'तलेलो' शब्द से होता है। परापूर्व से लोरी का मौखिक साहित्य में विशिष्ट स्थान रहा है और वे छोटे-बड़े सब को प्रभावित करती हैं। एक ध्यान रखने योग्य बात यह है कि अधिकांश लोरियों की रचना अशिक्षित स्त्रियों द्वारा की जाने पर भी उनमें

मौलिकता और प्राकृतिक माधुर्य की कोई कमी नहीं है। यहां कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

(क) सो जा मेरे लाल, सो जा
तुझे मैंने कष्टों से पाला
सो जा, गहरी नींद सो जा
त्रिभुवन के राजा
तुझे पालना झुलाऊं
फूलों वाला पलना
नक्काशी का पलना
सो जा, सो जा मेरे लाल
तू सोये और मैं गाऊं।
क्यों तू रोता है ?
चुप हो जा और मुझे बता
किसने तुझे पीटा
स्नेह भरे हाथों से
मेरे अनमोल लाल
आंखें बंद कर
और सो जा मेरे प्यारे,
मां के राज़दुलारे।
किसने तुझे पीटा ?
मां ने मारा ?
तुझे खिलाने वाले हाथों से ?
बड़ी दीदी ने पीटा ?
तुझे सहलाने वाले हाथों से ?
या दादी ने पीटा ?
दूध पिलाने वाले हाथों से ?
या चाचा ने पीटा ?
चमेली छड़ से

या बुआ ने मारा ?
काजल लगाने वाले हाथों से ?
मुझे बता दे मेरे लाल
और सो जा, मेरे मुन्ने, सो जा।

लोरियों के विषय विभिन्न और बहुरंगी हैं। माताएं बच्चों के मन में परिवार के बुजुर्गों के प्रति स्नेह और आदरभाव उत्पन्न करने के हेतु से उनकी प्रशंसा करने से कभी नहीं चूकतीं। विशेष तौर पर मामा को बहुत ऊंचा स्थान दिया जाता है। लोकगीतों में किसी भी बालक का मामा हमेशा खानदानी रईस और बड़ा प्रभावशाली व्यक्ति होता है। लोरियों में अनिवार्य तौर पर उल्लिखित एक और विषय है। माता द्वारा संतान प्राप्ति के लिए की गयी तपस्या और गर्भ-धारण एवं प्रसव के समय उठाये गये कष्टों का वर्णन। उदाहरणार्थ :

(ख) वडमल्लिगै हाथ में उठाये
मैं राह-बाजारों में भटकी
सर झुका हुआ मन तरसता हुआ
और हृदय में तीव्र संतान लालसा
तब कहीं मां भगवती ने
तेरा मुंह दिखाया
मेरी आंखों के तारे।
सोमवार को मैं स्नान करती थी
फिर दो रोज तक तपस्या
शुक्रवार को फिर स्नान
फिर कई रोज तपस्या
तई-पूसम् के दिन फिर नहाती
तब कहीं ईश्वर के प्रसाद रूप
तेरा जन्म हुआ।
तू मेरा श्रीरंगम् है, तू मेरा चंदन,
तू मेरे गले का हार, तू ही शिवशंकर का उपहार।

(ग) निम्नोक्त लोरी में मां अपने बेटे के लिए सुख-समृद्धि भरे जीवन की कामना करती है :

सिर पर रेशम का छत्र ताने
खेतों की देखभाल को तू जगाये
मोतियों से सज्जित छत्र ताने
तू धान के रोपों को
अंकुरित हुआ देखेगा।

(घ) बुरी नजर से अपने बच्चे को बचाने के लिए माता दरवाजे बंद करने को कहती है :

मेरे छौना को डीठ लगाने को
ऐरे गैरे नत्थू खैरों का झुंड
इसी तरफ आ रहा है;
···सब दरवाजे बंद कर दो।

(च) निम्नोक्त लोरी भी दिलचस्प है :

(दे. 'तालाट्टु', पृ. 47)
सात समंदर तैर कर
यह फूल कमल का पाया
        दसों समंदर तैर कर
        उसे तोड़ यहां मैं लायी।
उसे तोड़ यहां मैं लायी
छाती से चिपकाने को
आनंद नित नया मनाने को
        दुलराने, लाड़ लड़ाने को
        उसे तोड़ यहां मैं लायी।

वइगै की बाढ़
गारा छितरा जाती है
क्या उस उठते पानी में
यह सुंदर मोती मिलेगा ?
क्या उस घहराते जल में
चंदन का लेप मिलेगा ?
तू चंदन है या वैभव ?
या ईश्वर का वरदान ?

(छ) एक और लोरी लड़कियों को संबोधित करके गायी जाती है। इसे पी. आर. सुब्रह्मण्यम् द्वारा संकलित तिरुचेंदुर की इसक्की अम्माल के निवेदन से लिया गया है :

आ जा चूड़ीवाले
चूड़ीवाले आ जा
यहां घनी छाया में
बैठ तनिक सुस्ता ले
फिर खोल ले अपना बस्ता।
मेरी वल्ली के लिए
नीली चूड़ियां लाया है ?
उसके रंग पर फबने वाली
हरी चूड़ियां लाया है ?
मेरी वल्ली के लिए
गोल चूड़ियां लाया है ?
उसके शील की जोड़ी की
हरी चूड़ियां लाया है ?

गिनती के गीत : लोरी का समय समाप्त होने पर बच्चे गिनती सीखते हैं। यहां मिस टी. क्रिश्चियान्या बाई द्वारा अपने पल्लाचुर स्थित 'सोलाची आची'

नर्सरी स्कूल में सिखाये जाने वाले एक गीत का अनुवाद दिया जाता है :

एक, दो, फूल गुलाब
तीन, चार, कोने में सो जाओ;
पांच, छह, यह है नाश्ते का डिब्बा
सात, आठ, लड्डू ले कर खाओ;
नौ, दस, मीना भाग जाओ।

लोकगीतों के द्वारा बच्चों के मन में धार्मिक भावना भी भरी जाती है :

(अ) अरियिन्नु पै विरिचु
अच्युतन्नु पेर सेल्लि
कृष्णन्नु पडुतवरक्कु
केडिल्लइ ओरुनालम
गोविंदन्नु पड़ुतवरक्कु
कुरइ विल्लै ओरुनालम।

भावार्थ है—

रात को बिस्तर बिछाने के बाद, सोने से पहले भगवान का नाम अच्युत, कृष्ण, गोविंद आदि लेने से सुख-समृद्धि की प्राप्ति होती है।

(आ) प्रत्येक दिन का आरंभ भी प्रार्थना से होना चाहिए। बच्चों को सिखाया जाता है कि बिस्तर लपेटने से पहले वे गाया करें :

पोझुतु एप्प विडियम् ?
पू एप्प मालारम् ?
शिवन एप्प वरुवर ?
वरन एप्प तरुवर ?

भावार्थ :—

सूरज कब उगेगा ?
दिन का आरंभ कब होगा ?
फूल कब खिलेंगे ?
कब शिवशंकर दर्शन देंगे ?
और मुझे वर देंगे ?

अम्मानै गीत : ये लोकगीत देवियों को संबोधित हैं। इनमें के कई 'शिल्पादिकारम्' में संग्रहीत हैं और कई लोकगीतों के वैयक्तिक संकलनों और वर्तमान नाटकों में पाये जाते हैं। भगवती जगदंबा के विभिन्न रूपों की स्तुति करने वाले इन गीतों का अंत हमेशा 'अम्मानै' शब्द से होता है। इसीलिए उनका यह नाम पड़ा है।

'गोवा वाले ओरम्, कोत्ता मालै ओरम्' शब्दों से आरंभ होने वाला अम्मानै गीत अत्यंत लोकप्रिय है। यह गीत अय्यच्चियार (अय्यर स्त्रियों) द्वारा गाया जाता है। देवी के गीत अकसर रासनृत्य करते हुए या झूला झूलते-झूलते गाये जाते हैं। बड़े घुंघरूनुमा धातु के गोलक का ताल के लिएप्र योग किया जाता है। गीतों की कथावस्तु के रूप में किसी महान् योद्धा की वीर गाथा या किसी देवी-देवता की स्तुति या किसी कुलपुरुष की प्रशंसा होती है।

'शिवगंगा अम्मानै' एक ऐतिहासिक गाथाकाव्य है जो अपने साहित्यिक आस्वाद, राष्ट्रीय आवेश और वर्णनप्राचुर्य के कारण बहुत प्रसिद्ध रहा है। इसमें पांचालं कुरिचि के देशभक्त अमात्य शिव सुब्रह्मण्यम् को अंगरेजों द्वारा दी गयी फांसी का वर्णन है। इसकी एक विशिष्टता यह भी है कि उसमें अंगरेजी नामों का उल्लेख लोक-प्रचलित विकृत रूपों में हुआ है। मेजर (Major) 'मेसन' हो गया है और ट्रूप (Troop) 'तुरुप्पु' हो गये हैं। इसी प्रकार गवर्नर (Governor) ने 'गेवुनर' और पिस्टल (Pistol) ने 'पिश्ताल' रूप धारण कर लिया है।

सामाजिक गाथाकाव्य : इनका विषय है अंतर्जातीय विवाह, स्त्रियों के सांपत्तिक अधिकार, जाति प्रथा की निष्ठुर कड़ाई आदि सामाजिक समस्याएं। गांवों के मेलों में अभिनीत 'नल्लतंगल कथा' और पहले के एक परिच्छेद में

उल्लिखित 'मुतुपत्तन कथा' गाथाकाव्य के लोकप्रिय उदाहरण हैं। निम्नलिखित लोकगीत विभिन्न जातियों के लोगों द्वारा जलाशयों के या बहते हुए पानी को दूषित किया जाने की आदत पर व्यंग्य करता है :

घहराता, बलखाता, किनारों को काटता,
कावेरी का नीला दमकीला पानी
बल खाता भंवरदार पानी, मोरी आली
शुद्ध पानी चांदी सा चमकीला
पीने का पानी, नहाने का पानी,
लोग ले जाते भर-भर घड़े, मोरी आली
इसी पानी में कोई दूषण नहीं
कोई उसे रोक नहीं सकता
कोई उसे बांध नहीं सकता।
पानी शीतल ब्राह्मण को
उतना ही शीतल चांडाल को
गांव के निवासी—
बहुजातीय-बहुवर्गीय समाज को
चांडाल से ब्राह्मण तक
मेहतर से राजा तक
इसी पानी को पीते हैं
इसी से पूजा करते हैं
पर···इसी को लेकर लड़ते हैं,
झगड़ते हैं,
और इसे गंदा करते हैं।
सच बात तो यह है कि—
पानी ही जीवन है
पानी ही परमेश्वर है।
यह बहता हुआ ठंडा-ठंडा पानी
—मोरी आली।

महाकाव्यात्मक गाथागीत : ये पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हैं और इसी कारण से जनमानस पर स्थायी प्रभाव उत्पन्न करने में सफल होते हैं। 'एनि एर्रम', 'पोन्नुरवी-मसकै' और सबसे अधिक 'अल्लि अरसनि मालै' इस श्रेणी की महत्वपूर्ण रचनाएं हैं।

'अल्लि अरसनि मालै' में श्रीकृष्ण जिप्सी लड़की का रूप धारण करके प्रकट होते हैं और रानी अल्लि के प्रदेशों की उर्वरता का गुणगान करते हैं। दूसरी ओर वे रानी अल्लि को मोहित करने के लिए अर्जुन को एक ओषधीय कवच बनाने की राय देते हैं। उनकी मंत्रणास्वरूप 'कोचि मालै, कुड मालै, एंगंलातु नाडु' से आरंभ होने वाले गीत का भावानुवाद इस प्रकार किया जा सकता है—

कोचीन की पहाड़ियां और
पश्चिमी घाट हमारे निवासस्थान हैं
तिरुत्तनी में शिवपुत्र का आवास भी
हमारा ही प्रदेश है
पंचमलै और कौरल की पहाड़ियां भी
हमारी ही भूमि है।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "यदि रानी अल्लि का नाम लेते हुए तुमने यह ओषधि तैयार की, तो जैसे-जैसे वह घुटती जायेगी, विरक्त रानी का तुम्हारे प्रति रुख बदलता जायेगा। ओषधि के घटक अपनी विलग सत्ता छोड़कर जैसे ही एक-रस होंगे कि रानी का रवैया बिलकुल बदल जायेगा। फिर वह जो भी निर्णय करे, तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जायेगी।

यह गाथा काव्य उपमा-उत्प्रेक्षाओं से भरा हुआ है और उसमें रचयिता का बागवानी का ज्ञान स्पष्ट जाहिर होता है।

ऐतिहासिक गाथाकाव्य : ऐतिहासिक गाथाकाव्य अपने-अपने युग की राजनीतिक स्थिति की झलक प्रस्तुत करते हैं और उन युगों के युगपुरुषों के चरित्र का निरूपण करते हैं। गाथाओं में चरित्र-निरूपण तो अत्यंत सुस्पष्ट और सूक्ष्म ढंग से होता है पर यथार्थता और सातत्य का उनमें अकसर अभाव होता है।

कथानक के धाराप्रवाह में तो कभी-कभी एकाध शताब्दी का अंतराल हो सकता है। इन सब कमियों के बावजूद मौखिक साहित्य की स्रोत-सामग्री और कल्पनाप्रवण साहित्य के रूप में उनका मूल्य कम नहीं होता।

तमिल के उपलब्ध ऐतिहासिक गाथाकाव्यों में मुख्य हैं इवार राजक्कल कथा, कन्नडियन पादैप पोर, रामप्पैयन अम्मनै, इराविक्कुट्टि प्पिल्लैप पोर, शिवगंगा अम्मनै, पुलि तेवन सिंधु, कट्टबोम्मन कथैप्पदल और खान साहब की गाथाएं। इनमें से प्रत्येक के कई पाठभेद पाये जाते हैं। इनके कथा नायक होने वाले कुछ वीरपुरुषों ने ब्रिटिश हुकूमत का मुकाबला किया था और वे तमिलनाडु में होने वाले भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के अग्रणी रहे थे। इस कारण से इन वीरगाथाओं का गांधीयुग के समाज पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

गेंगी के देसिंगु राजन की गाथा में कथावस्तु में होने वाले भाव-परिवर्तन के साथ छंद-परिवर्तन भी होता रहता है। यहां उसका एक परिच्छेद दिया जाता है—

राजा देसिंग की रण गाथा

बीस हजार घुड़सवारों ने धावा बोला
राजा देसिंग ने अपनी आंखों से देखा
राजा की मूछें फरफर फरकी
घोड़ी पाराशरी थरथर थिरकीं
नवाब की सेना परास्त हुई
एक-एक दस्ता नेस्तनाबूद हुआ
उसके घोड़े हड़बड़ी से बिखर गये
बीस हजार घोड़े, एक-एक करके
तितर-बितर हो गये।

गजवाहिनी की क्रीड़ा से
राजा देसिंग प्रसन्न हुए
सूंड में लोहे का मुगदर लेकर
राज्यहस्ती ने शत्रु का भुरकस निकाल दिया
दूसरे हाथियों ने भी चिंघाड़ कर

दुश्मन को खदेड़ा।
लेकिन घोड़ी पाराशरी
इन सब पर से छलांग कर निकल गयी
राजहस्ती ने भी पैंतरा बदला
म्यान से कटार निकालकर
राजा देसिंग ने दुश्मनों को चुन-चुनकर मारा
—शत्रु धराशायी हुए।
मूसल से प्रहार कर-करके
राज्यहस्ती ने सबका अभिवादन प्राप्त किया
शत्रु के हाथी धरा पर गिरे
और लगे धूल चाटने
कुछ के मस्तक फटे हुए
कुछ की आंतें छिन्न-भिन्न
कुछ पांवों को पटकते
काले धूमिल पहाड़ से
चिंघाड़कर प्राणों को त्यागते।
बीस हजार हाथी उस रोज
तितर-बितर होकर मरे
···और राजा देसिंग ने देखा
एक हाथी पर महावत सलामत बैठा हुआ
राजा ने अट्टहास किया
और घोड़ी को बांयीं ओर एड़ लगायी
पाराशरी कूदी और हाथी के
गंडस्थल पर पांव जमा दिये
राजा ने कटार से वार किया
महावत हुआ धराशायी
कटार उसके सीने के आरपार
—धन्य राजा देसिंग।

कन्नाडियन युद्ध : सन 1265 में वल्लियुर में कुलशेखर उर्फ पोन्नु पांडियन नामक पांड्य राजा राज्य करता था। वडुगा राजकुल की कन्नड़ राजकन्या उसके चित्र को देखते ही उसके प्रेम में मतवाली हो उठी। उसके शौर्य का वर्णन सुन कर तो राजकुमारी सुध बुध खो बैठी। उसके पिता ने विवाह का प्रस्ताव भेजा। पांड्य राजा ने यह कारण बता कर कि वडुगा शासक हीन कुल के हैं, उसकी विनती को ठुकरा दिया। इससे क्रुद्ध हो कर उस कन्नड़ शासक ने पांडयों की राजधानी पर हमला कर दिया। कुलशेखर ने इस आक्रमण का मुकाबला करने के लिए दक्षिण त्रावणकोर के राजा से सहायता मांगी; परंतु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। वह युद्ध में हार गया और उसे बंदी बना लिया गया। फिर उसे पालकी पर बिठा कर, राजकुमारी का पाणिग्रहण करने के लिए जबरदस्ती से ले जाया गया। पर उसने रास्ते में आत्महत्या कर ली। निराश राजकुमारी ने मृतदेह के गले में वरमाला पहनायी और वह उसके साथ सती हो गयी। चिता में से राजकुमारी की आत्मा सूक्ष्म रूप में प्रकट हुई और उसने अपने खिन्न पिता से अपने और अपने पति के स्मारक के रूप में एक मंदिर की मांग की। तुरंत मंदिर बनवा दिया गया। आजकल वह गड्गच्चिमालै के नाम से प्रसिद्ध है।

इरावि क्कुट्टिपिल्लै गाथा : यह एक अत्यंत लोकप्रिय गीत है जिसमें सत्रहवीं शताब्दी के कनियाकुलम् के युद्ध का वर्णन है। इस लड़ाई में वेनाडु के राजा के इरावि क्कुट्टिपिल्लै नामक तरुण और बहादुर सेनापति ने मदुरै के शासक तिरुमल नायक की अनेकगुनी बड़ी सेना से वीरतापूर्वक लड़ते हुए प्राण गंवाये थे। गाथा में वर्णन आता है कि विजेता राजा ने खुद इस वीरपुरुष की दिलेरी की प्रशंसा की थी और उसे अवतारी पुरुष मान कर उसकी स्मृति में उसकी प्रतिमा और समाधि बनवायी थी।

वीनातिवीनम् कथा[1] : वीनातिवीनम् का जन्म कई शताब्दियों पहले तिरुनेलवेली के दक्षिणतम प्रदेश में हुआ था। उसके रिश्तेदारों ने उसकी सारी संपत्ति छीन ली और उसके पास कानी कौड़ी न रही। उसने आजीविका के

[1]यह एक दिलचस्प और लोकप्रिय मौखिक रचना है जिसकी पहली बार ध्वनि मुद्रण सन 1967 में हो गया। प्रो. वनममलै ने इसकी हस्तलिखित प्रति की खोज में लंबी तितिक्षा के दस वर्ष बिताये, तब कहीं यह कार्य पूरा हुआ।

लिए कुछ काम करने का निश्चय किया। पहले उसने एक धोबी से उसे नौकर रख लेने की विनती की पर उसने ऐसे हीन काम के लिए इतनी ऊंची जाति के आदमी को रखने से इनकार कर दिया। उसे भिक्षा तो मिल जाती थी, पर यह अन्न उसे हजम नहीं होता था। फिर उसने सोचा कि वह घूमक्कड़ बैरागी के रूप में कामयाब रहेगा। अतः उसने भगवे वस्त्र धारण किये और अलख जगाता हुआ गांव-गांव घूमने लगा। उसका नारा था 'अरहर दैवम् गुरु, धर्मपिच्चै इदु अम्मा।' पर शीघ्र ही लोगों ने उसका स्वांग पहचान लिया।

इसके बाद उसने आरक्षित जंगलों में से लकड़ी और फल-सब्जियां चुरा कर बेचने का धंधा शुरू किया। परंतु यहां भी वह जंगलात के अफसरों और बाग के चौकीदारों द्वारा रंगे हाथों पकड़ा गया। अंत में उसने लगान वसूल करने वाले पटवारी का स्वांग बनाया और वह गाव के कुओं और तालाबों से पानी भरने वाले लोगों से फी गागर एक-एक कासु (तांबे का अत्यंत कम कीमत का सिक्का) वसूल करने लगा। लोगों ने सोचा कि यह स्थानीय शासक द्वारा नियुक्त अफसर होगा और राजा की जानकारी और आज्ञा से ही कर वसूल कर रहा होगा। अतः कुछ समय तक तो यह चलता रहा। पर एक रोज स्थानीय मंत्री कलिंगन की महरी ने यह प्रतीकरूप कर देने से इनकार कर दिया और क्रोधित होकर वह कहने लगी :

वाविक्करै पेन्कलै सेविक्कावो वन्तै ?
माप्पिलैक्कु आकुवायो पेइप्परची माकने !
नट्टिल कुडक्कसु वंकुम पिनमे नी
नाइक्कुम पेइक्कुम वल्लियूरिल मूप्पु वन्दु पोचो,
उट्टि तेरिक्क किनातुक्कुल्ले तल्लिपोट्टु
उन्डै कल्लइत तनेडुतु मंडियले पोडु।

वीनातिवीनम् ने महरी को लाठी से इतना पीटा कि वह बेहोश होकर गिर पड़ी। इससे डर कर गांव के लोग बिना उज्र के कर देने लगे।

महरी की शिकायत पर मंत्री ने भी कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि वह तो इसी भुलावे में था कि राजा ने खुद वीनातिवीनम् को कर वसूली का अधिकार दिया होगा।

कृत्रिम घुड़सवार नृत्य

जल्लिक कट्टु कृत्रिम खेल

मयिलाट्टम—मयूर नृत्य

कोलम

समय बीतते वीनातिवीनम् ने अपने कर भार का दायरा बहुत विस्तृत कर दिया। उसने विवाह, जन्म, मृत्यु आदि पर भी कर लगा दिया और शीघ्र ही वह बहुत धनवान हो गया। वह मित्रता का जवाब मित्रता से और दुश्मनी का दुश्मनी से देता। विद्वानों और कलाकारों का वह क़द्रदां और आश्रयदाता था। परंतु अंत में उसकी पोल खुल गयी। राजा की आज्ञा से स्थानीय मंत्री ने उसकी संपत्ति पर कब्जा करने के लिए सैनिक भेजे। शीघ्र ही उसे राजदरबार में तलब किया गया और उससे पूछा गया कि यह सब उसने किस अधिकार के अंतर्गत किया।

इससे लज्जित होने के बजाय वीनातिवीनम् ने राज्यकोष भर न सकने वाले लोगों की मंत्री के रूप में नियुक्ति करने के लिए उलटे राजा को ही खूब खरी-खोटी सुनायी। उसने कहा :

उनकलुक्कुप-पुत्ति उंडो?
पाप्पवै मंत्रियै वैतिरुन्त राजवे,
पान्पुडिअये एन वीटिल
पानप-पेरुकंप पारुम।

तैश में आकर उसने राजा से कहा कि उसने बेशुमार सोना और चांदी नितांत वैध मार्गों से जमा किया है जिस पर अंततोगत्वा राज्य के खजाने का ही अधिकार है; जबकि इतने वर्षों में वह अकर्मण्य मंत्री कुछ भी नहीं कर सका। इससे खुश होकर राजा ने उसका उचित सम्मान किया और मंत्रीपद पर उसकी नियुक्ति की।

विविध लोकगीत : अंग्रेजी शासनकाल में प्रचलित होने वाले वैज्ञानिक चमत्कारों ने जनसाधारण के मन को अभिभूत कर दिया था। उसकी अभिव्यक्ति भी लोकगीतों में हुई है। 'एन्जिनु वंडिकलाम, इरु-पुरमम सूच्चियामम' ऐसे ही एक रेल-विषयक लोकगीत की आरंभिक पक्ति है। गीत का भावार्थ है :

इंजन गाड़ियां
दोनों तरफ से खुली हुई

बैलों के बिना चलती हैं
गोरे आदमियों की
जादुई इंजन-गाड़ियां
स्वचालित गाड़ियां
गोरे सहबों की
इंजन गाड़ियां।
इंजन गाड़ी जैसे ही
सामने से आकर
पडिपट्टि स्टेशन पर रुकती है
कि अगले स्टेशन समयनल्लुर
को तार भेज दिया जाता है
कि गाड़ी आने वाली है।

लोकगीतों अन्य विषय हैं गुणकारी अंगरेजी दवाइयां, अस्पतालों में होने वाली सुगम प्रसूति आदि की प्रशंसा। प्राकृतिक पर पीड़ाविरहित प्रसूति होकर प्रसव-यंत्रणा से छुटकारा पाते ही माताएं स्वयं स्फूर्त हर्षोल्लास से इन सुविधाओं की प्रशस्ति गाने लगती थीं। इसी प्रकार के स्तोत्र वर्षा के अभिनियंता भगवान वरुण को संबोधित करके भी गाये जाते थे। इतना ही नहीं, मेलों में लगने वाली साप्ताहिक पैंठे और वहां से खरीदी जाने वाली वस्तुओं की सूचियां भी लोकगीतों का विषय हो सकती थीं।

पहाड़ी वन्य जातियों के लोकगीत

(क) टोड : नीलगिरि के टोडों का मौखिक साहित्य मुख्यत: उनके स्वप्नगीतों में व्यक्त हुआ है। ऐसा माना जाता है कि कुछ पहले जिनकी मृत्यु हो चुकी हो, वे लोग जीवित व्यक्तियों को स्वप्न में दिखाई देते हैं और अपनी अतृप्त कामनाओं की गीतों द्वारा अभिव्यक्ति करते हैं। सपने में दिखाई देने वाले ये मृत व्यक्ति अकसर कबीले के उन विभिन्न कार्यों की पुनरावृत्ति करने की इच्छा व्यक्त करते हैं जिनमें वे अब प्रत्यक्ष हिस्सा नहीं ले सकते। हाल ही में मरी हुई किसी स्त्री द्वारा उसके पति के स्वप्न में गाये गये गीतों में उस स्त्री के प्रति ईर्ष्या की

अभिव्यक्ति होती है जिसे उसका विधुर पति ब्याहने वाला हो। सिर्फ लड़कियों को ही जन्म देने वाली स्त्री भी अपने पति के प्रस्तावित पुनर्विवाह को ले कर बिसूरती रहती है।

टोडा लोकगीतों का एक विस्मयजनक लक्षण है उनका रहस्यमय और सांकेतिक स्वरूप। परंपरा से लोकगीतों में किसी भी व्यक्ति का नाम ले कर उल्लेख नहीं किया जाता। टोडा लोकगीतों की परंपरा है कि किसी भी व्यक्ति का उल्लेख करना हो, फिर वह जीवित हो या मृत, पुरुष हो या स्त्री, तो किसी भैंस को संबोधित करके अन्योक्ति के सहारे बात कही जाती। टोडों के प्रेमगीतों की पहचान का लक्षण यह है कि उनमें कूटप्रश्नात्मक दो चरण होते हैं।

(ख) **पभियार** : यह तमिलनाडु का अत्यंत प्राचीन कबायली—आदिवासी समूह है। मदुरै जिले की पलनी पहाड़ियों की ऊपरी और नीचे की श्रेणियों में इनकी कई बस्तियां हैं, पर इनकी संख्या कुछ हजार तक ही सीमित है। वे दावा करते हैं कि उनकी संस्कृति और सभ्यता भूतल की मानव सभ्यताओं में सबसे पुरानी है।

यहां 'वंडा मेट्टुप पथइयिले' से आरंभ होने वाला उनका एक लोकगीत दिया जाता है जिसमें पहाड़ियों में की जानेवाली अंधाधुंध वनकटाई के प्रति खेद व्यक्त किया गया है :

मैदानों से आने वाले हमलावरों ने
अंधाधुंध पेड़ काटे और
बांडी मेट जाने की सड़क बना दी।
हाथियों से उनके वन छिन गये
उनके रहने की कोई जगह न रही
अब वे राजमार्गों पर भटकते रहते हैं
—कैसा भयानक कांड है।

(ग) **मन्नाडी** : कई पहाड़ी जन-जातियां हर अनुष्ठान के बाद वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं। भारतीय जनजीवन में वर्षा और जीवन एक-दूसरे के साथ अविभाज्य रूप से बुने हुए हैं। यहां प्रतिमास नियमित वर्षा की आकांक्षा करने

वाली एक मन्नाडी प्रार्थना दी जाती है। यदि उनकी बिनती मान्य हो जाय, तो वे बड़ी संख्या में पशुओं की बलि देने को सदा तैयार रहते हैं :

मासमोरु मलइ
पेयट्टुम मन्नाडी
मन्तैक्कोरु कीड
वेट्टिक्को मन्नाडी
तेसमोरु मलइ
पेयट्टुम मन्नाडी
तेतुक्कु ओरु कीड
वेट्टिक्को मन्नाडी !

गीतिकाव्य और प्रेमगीत : तमिल में 'पल्लु' जैसी छोटी-मोटी रचनाएं बड़ी संख्या में पायी जाती हैं। इनकी रचना लोकसाहित्य की अद्भुत विद्या के प्रति दुर्निवार रूप से आकर्षित होने वाले प्रवीण कलाकारां द्वारा लोकगीतों के ढांचे में हुई है। यहां पर मदुरै जिले के पल्लों (हरिजनों) में प्रचलित 'मुक्कुदल पल्लु' नामक लोकगीत के कुछ अंश दिये जाते हैं। इसमें किसी स्त्री की अपने पथभ्रष्ट पति के खिलाफ शिकायत व्यक्त हुई है। वह पंचों से कहती है :

(अ) स्वामी, इस आदमी ने मेरे साथ विश्वासघात किया है।
यह धोखेबाज है।
मछली की सी पूंछ इसकीं, सांप का सा मुंह,
दूध में शहद जैसा दुरंगा इसका व्यवहार,
उस कलमुंही की मेंहदी-हल्दी के लिए
इसने अपना सब कुछ गंवा दिया।
अब यह खुद भी बरबाद हो गया है
और मुझे तो इसने सड़क पर ला खड़ा किया है।
मेरे भाग्य में शर्म बदी है
और उस डायन को दूध मलाई ?

यहां तो इसके पांव ही नहीं टिकते,
और वहां से यह स्वप्न में भी हिलना नहीं चाहता।
भगवान अलगार हम सब के रक्षक हैं,
पृथ्वी के पालक और आकाश के पोषक हैं,
वे ही न्याय करें…
यदि उनकी सेवा के लिए इस निगोड़े की जरूरत हो,
तो वे अभी से उसे काबू में करें
हे मेरे स्वामी !

(आ) इस दईमारे का जनम ही शायद दुराचार के लिए हुआ है
नासपीटे को लाज-शरम कुछ नहीं रही;
उस छैल-छबीली की चिकनी चमड़ी के पीछे
यह दीन-दुनिया को भूल गया।
इसने मेरी खिली जवानी का सुख लूटा,
अब तो ज्वार उतर गया है
अब तो ढलती छाया है
ज्यादा और क्या कहूं ?
हल को हाथ लगाने को भी उसका जी नहीं करता;
मुझे देख कर मानो उसे सांप सूंघ जाता है;
आग से जलने के जख्म भर जाते हैं
जीभ से बेधने के नहीं।
मैं उसके मुंह पर कहती हूं 'तेरा सत्यानाश हो'
और उसे अपना मुंह दिखाना नहीं चाहती
स्वामी, उससे मिल कर उसे समझाने की कृपा अवश्य करें।
लकड़ी में पड़ी गांठ भी
तेज आरी के सामने झुक जाती है
फिर वह तो, इंसान है।
पाजी को गरदन से पकड़ कर
जोर जोर से रहपट लगाना

ताकि उसके बेशर्म भेजे में
दीन-दुनिया का कुछ डर पैठे ;
स्वामी, मैं प्रार्थना करती हूं।

परंपरा से अनुमोदित इन गीतों के अलावा बच्चों को प्रिय होने वाले कुछ गीत और आख्यायिकाएं भी मिलती हैं। इनमें के कुछ गीत हास्यप्रचुर हैं जब कि कुछ केवल अर्थहीन तुकबंदियां हैं। कई गीत तमिलनाडु के कुछ विशिष्ट खेलों से संबंधित हैं। इनकी रचना विभिन्न उम्र के बच्चों के लिए हुई है अतः उनकी विषय वस्तु और शैली में विविधता पायी जाती है। यहां तक कि विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों के हिसाब से उनमें शब्द चयन भी अलग-अलग ढंग से हुआ है। छोटे बच्चों के लिए रची गयी सरल तुकबंदियों से लगा कर विवाह योग्य आयु की लड़कियों के लिए रचे गये कलापूर्ण एवं भावपूर्ण गीतों तक इनका वैविध्य फैला हुआ है। इस उम्र की लड़कियों को नवविवाहित जोड़ों को—विशेष तौर पर शरमीले दूल्हे को—छेड़ने में बड़ा मजा आता है। एक विनोदपूर्ण गीत में बड़े साढ़ू द्वारा छोटे साढ़ू का स्नेहपूर्ण मजाक उड़ाया गया है। बड़े जीजा को छोटी साली के बारे में पूरी जानकारी होती है और यह रिश्ता भी स्नेह पर आधारित है। इस अधिकार, घनिष्ठता और हाजिरजवाबी के बल पर ही नवविवाहित छोटे साढ़ू के साथ छेड़छाड़ की जाती है। उदाहरणार्थ :

तंजावर का दूल्हा,
सुना था वह तहसीलदार है ;
हम तंजावर गये
और वहां पूछताछ की
तो मालूम हुआ कि
तहसीलदार साहब
गांव के ढोलची हैं !
कालीकट का दूल्हा
कहते हैं वह कलेक्टर है
हम कालीकट गये

और जांच-पड़ताल की
तो देखा कि कलक्टर साहब
गधे-चरा रहे हैं।

किशोर आयु की लड़कियों में चूहों की राजकुमारी के साथ किसी राजवंशी चूहे की प्रेमकहानी का गीत भी बहुत लोकप्रिय है। किसी भावुक प्रेमी के आवेश और भावी पति के अभिनिवेश के साथ चूहा चुहिया को विवाह के लिए रजामंद करने के लिए उसका अनुनय करता है और सब्जबाग दिखला कर उसे फुसलाता है :

खाना मत पकाना
घर का और कोई काम भी मत करना
मेरी चुहिया रानी !
सिर्फ मेरे पास बैठी रहना
और मुझसे मीठी-मीठी बातें करती रहना
यही काफी होगा
मेरी चुहिया रानी।
कुएं से पानी भरना
और मैले कपड़े धोना
तुम्हें नहीं करना होगा
मेरी चुहिया रानी !
मेरे पास बैठी रहना
मधुर गीत गुनगुनाती रहना
सिर्फ इतना ही काफी होगा
मेरी चुहिया रानी !

यह मूषकराज अपने प्रस्ताव में ही नहीं, बल्कि अपनी कविता में भी मनुष्यता से कितनी परिपूर्ण है यह आसानी से देखा जा सकता है।

तमिल में प्रेमगीत तो असंख्य हैं। ये एक चिरंतन विषय का वर्णन करते हैं और

जनमानस पर उनकी पकड़ भी उतनी ही उत्कट और शाश्वत होती है। प्रेमी प्रेमिका की नाक की नथ या कान की बाली या हाथ का कगन बन जाना चाहता है ताकि वह सदा उसके साथ रह सके और उसकी शोभा बढ़ा सके। कोई अन्य उत्कट प्रेमी फूल का जन्म चहता है ताकि वह अपनी प्रियतमा के केशकलाप का सौंदर्य बढ़ा सके। ये भावनाएं संसार की सभी भाषाओं के गीतकाव्य में प्रचलित रही हैं और तमिल प्रेमगीत इसका अपवाद नहीं हैं।

इस प्रकार लोकसाहित्य की यह मौखिक परंपरा विषयवस्तु और आकृतिबंध, दोनों दृष्टियों से एक अद्भुत वैविध्य की सृष्टि करती है। गांव के मांझियों के गीतों में तरंगित ताल से युक्त एक प्रकार की मधुर लय होती है। गाड़ीवानों के गीलों में एक प्रकार की मिठास होती है जिसके वश हो कर वे बैलगाड़ी हांकते-हांकते ऊंघते रहते हैं और उनके बैल बोझ ढोते-ढोते सोते रहते हैं।

इन गीतों की स्फुरणा किसी प्रबुद्ध प्रयत्न से नहीं बल्कि एक अर्धजाग्रत, अर्धउन्मीलित अवस्था में होती है। इन लोगों का दृढ़ विश्वास होता है कि गाड़ी को तो अदृष्ट भगवान चला रहे हैं। इतना ही नहीं, दुर्गम चढ़ाइयों में गाड़ी को पीछे से धक्का भी वे ही लगाते हैं। उदाहरण :

जैसे ही दोनों बैल
पहाड़ की कड़ी चढ़ाई वाली
कठिन डगर पर
चलने का प्रयत्न करते हैं
कि वह अदृश्य अगोचर
पीछे से गाड़ी को ठेलता है।
उसका अदृष्ट हाथ
उस महान परमेश्वर का हाथ
पलनी पहाड़ियों के
स्वामी का हाथ
पीछे से गाड़ी को ठेलता है।

इन प्रेमगीतों, गाथागीतों, पेशेवर लोगों के गीतों और बच्चों के गीतों के

अलावा अनगिनत उत्सव गीत भी प्रचलित हैं जिन्हें मंदिरों के उत्सवों या वैयक्तिक समारोहों में गाया जाता है। इन सबके उपरांत ब्याह-शादी के हर्षोल्लास से पूर्ण हजारों गीत प्रचलित हैं।

शोकगीत (मरसिये)

इन्हें ओप्परि या पिलक्कानम् कहा जाता है। किसी निकट संबंधी की मृत्यु के बाद स्त्रियों द्वारा इन्हें गाया जाना शोक प्रदर्शन का समाजमान्य तरीका है। पति की मृत्यु के बाद स्त्री के शोक की सीमा न रहे यह स्वाभाविक है। कम उम्र में ही विधवा हो जाने वाली किसी तरुणी ने अपने हृदय की व्यथा दो पंक्तियों में व्यक्त की है :

> कंटीले फूलों से भरे इस जंगल में मुझे अकेली छोड़ कर
> तुम सिधार गये, मेरे प्रियतम !

इस संसार रूपी जंगल को वह 'नेरूंजिल' कहती है। जवानी में हाल ही पदार्पण करने वाली कमसिन विधवा के चारों तरफ की दुनिया वैसे तो रंगबिरंगे फूलों से भरी दिखायी देती है। पर उसकी नजर में हर फूल कांटों से घिरा हुआ है।

किसी बड़े परिवारिक केंद्रों में जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो मृतक की विधवा अपने पति को याद कर-करके तो क्रंदन करती ही है, परिवार के पितृकुल और मातृकुलों में हुई हाल की मौतों को याद कर-कर के भी बिसूरती है। विवाहित स्त्रियों को इन मरसियों को सुनने का और उनमें सहभागी होकर उन्हें गाने का मौका अकसर मिलता रहता है। कुछ भी कहें, मृत्यु के ये प्रसंग अपने किसी आत्मीय साथी, बालक, प्रियजन या माता-पिता से चिरबिछोह होने के प्रसंग होते हैं। अत: इन गीतो में शोक की सरिता बहना स्वाभाविक है। हिंदू पारिवारिक व्यवस्था में स्त्री सदा किसी न किसी पर आश्रित ही रहती है। पति के साथ वह केवल भावात्मक स्तर पर ही नहीं बंधी रहती बल्कि धन कमाने का दायित्व और अधिकार पुरुष का ही होने के कारण आर्थिक स्तर पर भी स्त्री संपूर्णत: अपने पति के आधीन होती है और भरणपोषण के लिए उसी पर निर्भर रहती है।

इस हालत में परिवार के कर्ता और कमाऊ पुरुष की मृत्यु हो जाने पर परिवार की इकाई और स्थिरता छिन्न-भिन्न हो उठती है। इस अस्थिरता के कारण बचे सदस्यों को परिवार का पुनर्गठन करना पड़ता है और सबको किसी नयी स्थिति के अनुकूल होना पड़ता है। बच्चों के छोटे होने पर इस दुःखदायी पुनर्रचना का दायित्व उस असहाय सद्यविधवा पर ही पड़ता है जिसके लिए वह अपनी संपूर्ण पराधीनता के कारण अकसर सर्वथा असमर्थ होती है।

शोक और वेदना की कसक पुरुष के भरजवानी में चले जाने पर और भी तीव्र हो उठती है। इस हालत में युवती विधवा को अपने बच्चों को संभालते हुए शेष जीवन दुःख दर्द और एकाकीपन में ही बिताना पड़ता है। कभी-कभी उसे अपने मायके में या किसी भाई-बहन के यहां आश्रय मिल जाता है। उम्र अधिक हो, तो समस्या कुछ आसान हो जाती और वह अपने किसी पुत्र या पुत्री के साथ रह सकती है।

यहां कुछ ओप्परि गीत (मरसिये) दिये जाते हैं। इनका मूल पाठ शिवगिरि के श्री एस. एम. गोर्की द्वारा संग्रहीत और श्री एन. वनममलै द्वारा सपादित 'तमिल नट्टुप पड्डुलकल' नामक संग्रह से लिया गया है—

(क) राई के दानों जैसा छोटा मंगलसूत्र
मनकों से जड़ा अभागा मंगलसूत्र
इस मनकों-जड़े मंगलसूत्र को
उतार फेंकने का दिन आज आ गया।

(ख) काली मिर्च के दानों जैसा छोटा मंगलसूत्र
रुपयों जड़ा यह मंगलसूत्र
रुपयों जड़े इस मंगलसूत्र को
उतार फेंकने का दिन आज आ गया।

(ग) रेशम मैंने त्याग दिया
सिर से एड़ी तक
सफेद सूती वस्त्र धारण किये
सुहाग का लाल रंग मैंने त्याग दिया
और सफेद सूती वस्त्र धारण किये।

(च) मनकों का मंगलसूत्र
जौ के दाने जैसा बोर
किसी सुनार-लुहार की मदद के बिना
उनके पेच अचानक कैसे खुल गये ?

(छ) सोने का मंगलसूत्र
देवदारु के दाने जैसा बोर
किसी सुनार-लुहार की मदद के बिना
उनके पेच अचानक कैसे खुल गये ?

(ज) गोल पहाड़ी की ढलान पर
मैंने काले उड़द सुखाये
उन्हें समेटने से पहले
यह नगाड़े की आवाज क्यों सुनाई दी ?

(झ) ढलवां पहाड़ी के किनारे
मैंने बाजरा सुखाया
बाजरा समेटने से पहले
यह शंख ध्वनि क्यों सुनाई दी ?

माता की मृत्यु पर शोकगीत—संपादक : (के. पी. एस. हमीद। अनुसूचक : तायम्मल, करियामानिक्कपुरम् जिला कन्याकुमारी। अनुवादक : के. पी. एस. हमीद। उन्हीं के अप्रकाशित प्रबंध 'तमिलनाडु के लोकगीत' पृ. 89 से।)

जमीन पर चलते हुए
मेरे कोमल तलवे दुखते थे
पैदल चलने से
मेरे नाजुक पांव दुखते थे
मां की छाती पर पालना झूली
गोद में पहले कदम उठाये
कंधे पर बैठ कर घूमी
गोद में पहले कदम उठाना सीखी

मां ने कैसी कोमल देखभाल से पालापोसा
कैसा गहरा प्यार किया
कैसी कोमलता और निःस्वार्थ प्रेम से
मां ने मुझे पाला पोसा

पिता की मृत्यु पर मरसिया—(श्री पी.आर. सुब्रह्मण्यम् के वैयक्तिक संग्रह से। स्रोत—वीरवानल्लुपुर की श्रीमती शेंबेगल अम्माल।)

सब जगह ढूंढा पिताजी नहीं मिले
आज हम यतीम बने घूमते हैं
कहीं भी ढूंढें, पिताजी नहीं मिलते
आज हम खोये खोये से घूमते हैं।

और अचानक कह उठते हैं—

आपने हमें कितने प्यार से पाला पोसा
कितने दुलार से बुलाया
कितने माधुर्य से गोद में लिया
हमारी मांगों को
कितने मार्दव से पूरा किया
अगर हम कहते, 'बापू
हमें आकाश का चंदा ला दो'
आप निश्चय ही
चंद्रकिरणों पर चढ़ कर
हमारे लिए चंदा ले आते।

भक्तिगीत

हर गांव के अपने अलग भजन होते हैं और हर मंदिर के अपने परंपरागत भक्तिगीत। मेले और उत्सवों के परिच्छेद में हम देख चुके हैं कि प्रायः हर प्रदेश

और हर देवालय के साथ कोई न कोई उत्सव जुड़ा हुआ है जिनमें ये गीत बड़े भक्तिभाव से गाये जाते हैं। इन गीतों में उन-उन प्रदेशों की विशेषताओं और परंपराओं के स्पष्ट दर्शन होते हैं। अनेक उत्सवों में नृत्य और नाट्य का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस हालत में यह स्वाभाविक है कि इस अमूल्य साहित्यिक निधि में भक्तिगीतों का प्राधान्य हो। भक्तिगीतों के अलावा अनेक रहस्यमय गीत भी प्रचलित हैं जो अपनी भाषा और भावों के कारण अद्वितीय हो उठे हैं। वे 'सिद्धार पडल' (रहस्यवादी सिद्धों के काव्य) की परंपरा में रचे गये हैं। उनमें से अनेक की रचना तो बड़े दृष्टा मनीषियों द्वारा हुई है जिन्होंने अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए जनसाधारण की भाषाशैली का प्रयोग जान-बूझ कर किया था जबकि अधिकांश की रचना सिद्धों के समागम से प्रेरित सामान्य-जनों द्वारा हुई है। इन गीतों में प्रधानत: व्यक्ति की समष्टि के साथ एकरूप हो जाने की अभिलाषा की अभिव्यक्ति हुई है। इन गीतों में कुछ ऐसी पदावली का प्रयोग हुआ है जिसकी लौकिक व्याख्या संभव नहीं। वस्तुत: उन्हें अवगुंठित रखनेवाली इस रहस्यात्मकता और अलौकिकता के कारण ही इन गीतों का आकर्षण अत्यंत बढ़ गया है। वे किसी अमूर्त-अज्ञेय की चर्चा करते हैं जिसकी झलक उनकी भाषाशैली और पदावली के एक-एक शब्द से प्रस्फुटित होता है। उनका हर भाव उस पकड़ाई में न आने वाले तत्व की तलाश मे छटपटाने वाले मनुष्य के प्रयत्नों की निरर्थकता सिद्ध करता है। इस तलाश में उस अपरिमेय तत्व की कभी समाप्त न होने वाली खोज है, अदृश्य का दर्शन करने की ललक है, अनाकलनीय की मीमांसा करने की अभीप्सा है। कुछ उदाहरण देखिये :

सिद्धों के गीत

(क) एक पत्थर तराशा और उसे ईश्वर कहा
कुछ फूल चढ़ाये
प्रदक्षिणा करते हुए
कुछ गुनगुनाया
यह सब मंत्रतंत्र क्या है ?
क्या वह पूजा हुआ पत्थर बोलेगा ?
क्या उसके भीतर भगवान है ?

दाल बनाने के लिए प्रयुक्त बटलोई और करछुल
क्या इन्हें भी दाल का स्वाद मालूम होता है ?

(शिद वाक्यर पृ. 496)

(ख) हे सुंदरी !
भटकते हुए सांड को बांधना चाहिये
वासनाओं को बरजो
सांसों को रोधो
पकड़ के बाहर की टहनियों को मोड़ो
हम नहीं जानते,
यह नश्वर काया कितने दिन टिकेगी।

(कोंकण सिद्धार—43)

(इसमें गहन भावार्थ छिपा हुआ है। भटकता हुआ सांड मन का प्रतीक है और पकड़ के बाहर की टहनियां सत्य का।)

(ग) देह अपावन है, प्यारे,
काजल का सा कजरौटा
नयी काया में संचार करने का
उपाय मैं जानती नहीं।
यदि कभी यह मुक्ति मैं पा जाऊं
तो हे माता,
इस नश्वर देह को छोड़ कर
तुम्हारे चरणों में विलीन होने का प्रयत्न करूं।

(आझकुनी सिद्धार—8)

(घ) अंगूर का गुच्छा
सब से दूर की डाल पर
पकड़ के बाहर

मधु की एक बूंद
सदा अप्राप्य
इनका महत्तम आनंद
अनिर्वचनीय है
मेरे प्यारे !

निरक्षरों की प्रतिभा

लिखना-पढ़ना न जानने वाले लोग सदा अज्ञानी नहीं होते और न अभिव्यक्ति में असमर्थ। अनपढ़ लोगों ने अकसर संतों का समागम किया होता है और रामायण-महाभारत आदि महाकाव्यों और वीरगाथाओं का श्रवण किया होता है। पिता-पितामहों की अनेक पीढ़ियों द्वारा अनेक बार दोहरायी गयी अद्भुत लोककथाएं उन्होंने सुनी होती हैं और पुराण-कथाओं की पिता मे पुत्र और माता से पुत्री के कानों में पड़ने वाली पीढ़ियों पुरानी परंपराओं के वे सजीव अंग होते हैं। इन कथाओं को केवल आत्मसात् ही नहीं किया होता बल्कि इतिहास के इन वीर पुरुषों और वीरांगनाओं के सुख-दुख और राग-द्वेष के वे साथी और सहभागी होते हैं। मनोजगत् के इन नर-नारियों के साथ उनका प्रगाढ़ परिचय होता है और उनकी आशा-आकांक्षाओं और सफलता-विफलताओं के वे मानो प्रत्यक्ष साक्षी होते हैं। अपने-अपने पेशे की उनकी जानकारी तो प्रत्यक्षानुभव पर आधारित होने के कारण नितांत ठोस और बहुमुखी होती है। अतः ये ग्रामीण जब अपने किसी विचार, अनुभव या मनोभाव की अभिव्यक्ति करते हैं तो उसे अनायास ही एक कलात्मक रूप प्राप्त हो जाता है और उसमें सृजनात्मक कला की सारी नैसर्गिक क्षमताएं मौजूद रहती हैं। ये ग्राम गीत अपनी पदावली और प्रतीक विधान में साहित्य की स्वीकृति और प्रचलित विधाओं से नितांत भिन्न हो सकते हैं। तथापि उनमें मिट्टी की प्राकृत सुगंध और उर्वरता होती है और वे समाज के एक ऐसे समुदाय की शताब्दियों पुरानी भावनात्मक और बौद्धिक संस्कृति को प्रतिबिंबित करते हैं। जिनसे यह सारा ज्ञाना प्रत्यक्षानुभव द्वारा प्राप्त किया है और जो कला एवं साहित्य की महान् परंपराओं से सदा अवगत रहा है।

स्वरलिपि

लोकगीतों का संगीत पारंपरिक रागों के ढांचे में बंधा हुआ होने पर भी अत्यंत सरल होता है। उन्हें गाने में न तो शास्त्रीय संगीत की गहन जानकारी की आवश्यकता पड़ती है, न निरंतर अभ्यास की। उनका माधुर्य पारंपरिक लयकारी से युक्त होता है। एक दृष्टि से उन्हें शास्त्रीय संगीत का एक सरल एवं सहज प्रकार कहा जा सकता है; लेकिन आजकल की सुगम-संगीत कही जानेवाली फिल्मी-संगीत की लयकारी से उनकी परंपरा सर्वथा भिन्न होती है। महत्व की बात यह है कि ये धुनें और संगीत शैलियां आज तक जीवित रह सकीं; सुरक्षित रह सकीं; उनका जतन हो पाया; और उनकी परंपरा पीढ़ी-दर-पीढ़ी जारी रह सकी। और यह सब स्वरांकन की किसी नियमबद्ध पद्धति के सहारे नहीं बल्कि मौखिक शब्द की सहायता से हुआ। उनके शब्दांकन ने ही उनकी स्वरलिपियों की भूमिका अदा की। दूसरे शब्दों में कहें तो इन गीतों की शब्दावली ही उनकी स्वरलिपियों की संवाहक और संप्रेषक रही है।

तमिल के लोकगीत तमिलनाडु के पहाड़ों और नदियों के जितने ही पुराने हैं। फिर भी वे जीवन रस से इस कदर लबालब भरे हुए हैं कि वे आज तक पुराने नहीं पड़े। उनकी तुलना केवल निरंतर-विस्तारी बड़ के पेड़ के साथ की जा सकती है। मनुष्य के मन में पनपने वाले इस वट वृक्ष की जड़ें तो अतीत के धुंधलके में गड़ी हुई हैं परंतु फिर भी उसकी नित्य-नूतन और हरी-भरी शाखाएं चारों दिशाओं में फैली रहती हैं और उनमें से फूटने वाली हर जटा पोषण के लिए फिर धरती का सहारा ढूंढ़ती हैं। अतीत से भविष्य की ओर की यह एक कभी न टूटने वाली परंपरा है। इन गीतों का जन्म न मालूम कितनी शताब्दियों पहले हुआ; गुजरने वाली हर पीढ़ी के साथ उनका पुनर्जन्म होता रहा और आने वाली हर पीढ़ी में होता रहेगा। उनमें तमिल प्रजा की आंतरिक आकांक्षाओं, मनोवेदनाओं, हर्ष-शोक, राग-द्वेष, सुख-दुख और वासनाओं का ही प्रतिबिंब नहीं उमड़ा, बल्कि इस प्रदेश की सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनधारा का मानो मूल स्रोत ही प्रस्फुटित हुआ है।

स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद की प्रवृत्तियां

योरोपीय विद्वानों और उनसे संबद्ध एस. एम. नटेश शास्त्री जैसे भारतीय मनीषियों के प्रारंभिक कार्य के कारण लोकसाहित्य और लोकजीवन के अध्ययन को आजकल बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है और विश्वविद्यालयों में उन्हें अध्ययन और गवेषणा का विषय मान लिया गया है। योरप के देशों में उन्हें यह प्रतिष्ठा बहुत पहले से ही प्राप्त थी। इसका भी अपने यहां अच्छा प्रभाव पड़ा है। अब लोकगीतों के संकलन बड़ी संख्या में प्रकाशित होने लगे हैं और प्राय: सभी प्रादेशिक भाषाओं ने और विश्वविद्यालयों ने उनका महत्व स्वीकार कर लिया है।

7 लोकसंगीत और लोकनृत्य

तमिलनाडु के नृत्य और संगीत का जन्म मंदिरों में हुआ।

अत्यंत प्राचीन काल से विभिन्न वर्गों के लोगों की भजन गाने के लिए मंदिरों में नियुक्ति होती रही। एक उदाहरण दिया जा सकता है। तिरुवमतुर मंदिर में प्रात: और सायंकाल की पूजा के समय सोलह नेत्रहीन लोग तिरुपत्तिकम् नामक दो पदों का पाठ करते थे। उन्हें और उनके दो देख सकने वाले मार्गदर्शकों को मंदिर की ओर से जमीनें जागीर के रूप में दी जाती थीं। हर शासकीय इकाई में तेवरनायकम् नामक संगीतज्ञ राज्याधिकारी होते थे जिन्हें 'संगीत की सृष्टि के नेता' कहा जाता था और जो राजाओं के लिए पूजा-प्रार्थना एवं सामूहिक गान की व्यवस्था करते थे।

राजा कुलोतुंग प्रथम के काल तक आते-आते मंदिरों में भजन गाना बड़ा प्रतिष्ठित काम और किसी व्यक्ति को प्रदत्त विशेषाधिकार माना जाने लगा। कभी-कभी इस अधिकार को प्राप्त करने वाले व्यक्ति बड़े धनीमानी और ललित कलाओं के जानकार हुआ करते थे।

पारंपरिक संगीतकार

ओदुवर, स्थानिकार और कट्टलेयर नामक पारंपरिक संगीतकार मंदिरों में तेवरम् नामक भक्तिगीत गाने के छोटे-छोटे संगीतात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करते थे। मंदिरों की सामूहिक प्रार्थनाओं में वे सारंगी की संगीत पर समूहगान का नेतृत्व करते थे।

पाठकों को यह जान कर कुतूहल होगा कि तमिलनाडु के मंदिरों में सारंगी का प्रयोग अठारहवीं शताब्दी के अंत तक प्रचलित रहा। उस समय के शिलालेखों और ताम्रपत्रों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि सारंगी बजाने वाले पेशेवर

संगीतज्ञों को जागीरें दी जाती थीं। सारंगी को तमिल में विल-याझ कहते हैं जिसका अर्थ होता है 'गज से बजायी जाने वाली वीणा।'

मदुरै, तिरुनेलवेली, सुचिंद्रम और आलवार तिरुनागिरि के मंदिरों में 'संगीतमय स्तंभ' पाये जाते हैं। इन स्तंभों की स्थापना मंदिरों के अर्थ मंडपों में हुई है। यहां 'तेवरम्' गाते समय इन स्तंभों का संगीत के वाद्यों के रूप में प्रयोग किया जाता था।

दैवी कृपा

जनश्रुति के अनुसार इन संगीतज्ञों का दैवी अनुग्रह पर प्रबल विश्वास होता था। वरगुण पांड्य राजा के दरबार में गाने वाले भाणभद्रन् नामक राजगवैये की कहानी प्रसिद्ध है। उसे एमनाथन नामक किसी बाहर से आने वाले संगीतज्ञ को परास्त करना था। पांड्य राजा के आशीर्वाद से भाणभद्रन देवी मीनाक्षी के स्वामी चोक्कनाथ की शरण में गया और उनकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया। शीघ्र ही आकाशवाणी हुई कि किसी प्रकार की चिंता करने की आवश्यकता नहीं। भगवान कोक्कनाथ ने लकड़हारे का रूप धारण करके संगीतकला का ऐसा मनोहारी प्रदर्शन किया कि महाप्रतिभाशाली आगंतुक संगीतज्ञ स्तब्ध हो उठा। लकड़हारे ने अपना परिचय भाणभद्रन के शिष्य ले रूप में दिया। यह युक्ति कारगर रही और नवागांतुक संगीतकार पांड्या राजा का दरबार छोड़ कर चलता बना।

लोकसंगीत की गहनता

तमिलनाडु लोकसंगीत के तालसुरो की विविधता अनूठी है। लोकगीतों की बंदिश मंजी, सम, नवरोज, कल्याण, करहरप्रिय, टोड़ी और नादनमक्करिय जैसे प्राचीन रागो में हुई है।

लोकसंगीत में अनेक वाद्यों का प्रयोग होता है। यहां उनमें से कुछ का उल्लेख किया जाता है :

तालवाद्य—इनमें नगाड़ा सबसे अधिक प्रचलित है। यह एक अर्धगोलाकार तालवाद्य है जिसका प्रचलन मंदिरों में अधिक है। इसे सजे हुए हाथी पर रखकर

ले जाया जाता है और दो मुड़ी हुई लकड़ियों द्वारा बजाया जाता है। किसी भी महत्वपूर्ण घोषणा के पहले और बाद में अकसर नगाड़ा बजाया जाता है।

डमरम्—यह शंकु आकृति का दोनों ओर चमड़े से मढ़ा हुआ तालवद्य है। इसका बाहरी कवच लकड़ी का बना होता है। इसे बैल पर रखकर ले जाया है और एक सीधी और एक टेढ़ी लकड़ी द्वारा बजाया जाता है।

उडुक्कै (खंजड़ी) नामक वाद्य को बायें हाथ में पकड़ कर दाहिने हाथ की उंगलियों से बजाया जाता है। इसका प्रयोग प्राय: सभी ग्राम देवताओं के मंदिरों में होता है। इसे शिव का प्रतीक माना जाता है।

डौंडी (डफ) एक प्रकार की बड़ी खंजड़ी होती है। इसे लकड़ी से बजाया जाता है।

गुम्मटी (ढोलक) यह दोनों तरफ चमड़े के परदों वाला गोल पीपे के आकार का तालवाद्य है। इसे आड़ा रखकर उंगलियों और हथेलियों द्वारा बजाया जाता है।

एक्कलम—नागमोड़ी आकृति की सींगी होती है। इसका और ढोल-तुरही का साथ होता है।

पांबै—यह छोटे पीपे की आकृति के रंगे हुए तबलों की जोड़ी होती है जिसे मंदिरों के उत्सवों के समय बजाया जाता है।

फिल्मों में लोकगीत

आधुनिक फिल्मों में लोकगीतों का उपयोग बड़े प्रभावात्मक ढंग से किया जाने लगा है। जानेमाने फिल्मी कवि इन गीतों में उपयुक्त रूपांतर और परिवर्तन करके उन्हें फिल्मी कहानियों में गूंथ लेते हैं। ये फिल्में आर्थिक दृष्टि से अकसर अत्यंत सफल सिद्ध होती हैं। इसी प्रकार लोककला के नृत्यसंगीतादि प्रकारों को भी फिल्मों में महत्वपूर्ण स्थान मिलने लगा है। कभी-कभी तो फिल्मों की कथावस्तु का चुनाव ही इस प्रकार से किया जाता है कि वह इन कलाओं के समावेश में सहायक हो सके।

करुणोत्पादक दृश्यों में शोकरस के लोकगीतों के अंशों को उपयुक्त स्थान पर गाया जाता है। प्रेमी-प्रेमिका के संवादो में लोकसाहित्य में प्रयुक्त 'नी पंबु अनल, नान परुंदु अवेन; नी पुल्ल अनल, नान पासु अवेन' जैसे वाक्यों को

कुशलता से गूंथ दिया जाता है। ये संवाद इस भावना को व्यक्त करते हैं कि प्रेमियों में परस्पर प्रेम का बदला दुगुने प्रेम से और दुश्मनी का बदला कटु शत्रुता से चुकाया जाता है।

फिल्मों में प्रयुक्त लोकगीतों की रूपांतरित धुनों के उदाहरणस्वरूप निम्नोक्त गीत का उल्लेख किया जा सकता है :

ताझइयम पू मुडितु
ताडम पर्तु वझी नाइतु
सालइवझी पोरवले पोन्नम्म।

लोकगीतों का फिल्मों में प्रयोग मुख्यतः उनकी संगीतात्मकता, लयबद्धता और सामूहिक स्वरमाधुर्य के कारण किया जाता है। उनकी विषयवस्तु का भावक्षेत्र बौद्धिक के बजाय भावनात्मक अधिक होने के कारण जनसाधारण में वे अत्यधिक लोकप्रिय हो उठते हैं और उनमें बोलचाल के प्रचलित शब्दों का प्रयोग अधिक होने का कारण उन्हें एक प्रकार की स्वाभाविकता प्राप्त हो जाती है।

आदिवासी जातियों की स्वरलिपियां

जन-जातियों में नृत्य संगीत के प्रति स्वाभाविक झुकाव पाया जाता है। उन्होंने अपनी इस प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर को आज तक बाह्य प्रभावों से सुरक्षित रखा है। स्थानाभाव के कारण अपने अध्ययन को हम यहां केवल जन-जाति तक ही सीमित रखेंगे।

पुलयार जन-जाति के लोग अपने मधुर गीतों का वर्णन 'तालम्' कह कर करते हैं और उन्हें कनमायिल, कनक्कोजी आदि पक्षियों के मधुर कूजन पर आधारित मानते हैं। तालसुरों का नामकरण अपने देवताओं की नामावली के आधार पर करते हैं। करगनाची तालम्, मंगलनाद तालम् और कुंद्रनाद तालम् उनकी अपनी विशिष्ट रागनियां हैं। इन मधुर स्वरलहरियों पर सुधास्वरी, सरस्वती, शंकराभरणम्, आंदोलिका, वृंदावन सारंग आदि शास्त्रीय राग-रागनियों की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। उन्हें सुनना जीवन का एक रोमांचक अनुभव है।

उनके वाद्यवृंद को 'सिंगारम्' (शब्दार्थ: सौंदर्य) कहा जाता है। उसमें दो छोटे नादस्वरम् अथवा सत्तक्कुझल, दो मेलम् (ढोल), और कैमनी (झांझ) की एक जोड़ी का समावेश होता है। वीलकुझल (बांसुरी) और मत्तालि (मृदंग) का प्रयोग देवताओं का आह्वान करने के लिए किया जाता है। नाचते समय वे गाते भी रहते हैं। उनके संगीत का कुछ अंश अत्यंत प्राथमिक स्वरूप का है जो सिर्फ नृत्य के पार्श्व संगीत की भूमिका अदा कर सकता है। उनके नृत्य तो और भी आदिम और अविकसित होते हैं।

कुलवै का नादमाधुर्य

कुलवै की आवाज सींगी जैसी बारीक और तीखी होती है। यह ध्वनि खेती-बारी के काम में लगी हुई स्त्रियों द्वारा जीभ के चटखारे से की जाने वाली तीखी आवाज से उत्पन्न होती है। कुलवै गीतों का स्वरमाधुर्य अत्यंत मोहक होता है इनका विकास तंजावर जिले में अधिक हुआ है जहां खेती की समृद्धि के साथ-साथ संगीत की परंपराओं को भी समान रूप से संवारा गया है।

स्त्रियां घुटनों तक के दलदल में खड़ी होकर धान के पौधे रोपते-रोपते मुंह से कुलवै की आवाज करती रहती हैं। ऐसा माना जाता है कि इससे काम की गति बढ़ती है और आगंतुकों का स्वागत होता है। खेतों की मेंड पर से जाते समय किसी का ये स्त्रियां यदि सामुदायिक अभिवादन करें, तो उसे उन्हें दो-चार पैसे बख्शीश के रूप में देने पड़ते हैं।

नय्यंदि मेलम्

नय्यंदि मेलम् अथवा चिन्न मेलम् सुप्रसिद्ध नादस्वरम् का ही ग्रामीण संस्करण है। इसकी योजना सिर्फ लोकनृत्य और लोकनाट्य की संगत करते समय होती है और अशिक्षित ग्रामीण प्रेक्षकों का मनोरंजन ही इसका प्रधान उद्देश्य होता है। इस वाद्यवृंद में दो नादस्वरम्, दो ताविल, एक पंबै, एक ठुमुक्कु और एक जोड़ी मजीरों का समावेश होता है। नय्यंदि मेलम् की विशेषता यह है कि वादक भी वाद्य बजाते-बजाते नाचते रहते हैं। करगम्, कावड़ी नृत्य, कृत्रिम घोड़े का नृत्य और कुरवन एवम् कुरत्ती नामक जिप्सी नृत्यों में इस वाद्यवृंद की बड़ी मांग रहती है।

विल्लु पट्टु

यह प्राचीन तमिल प्रजा की सांस्कृतिक समृद्धि के प्रतीक रूप अब भी सुरक्षित रहने वाला लोकसंगीत का एक अनूठा, सरल और आकर्षक प्रकार है। तमिल के इन शब्दों (विल्लु पट्टु) का अर्थ होता है—'धनुष गीत'।

इसका आरंभ पंद्रहवीं शताब्दी में अरस पुलवार नामक किसी संगीतज्ञ ने किया था। धनुषगीत के लिए पार्श्वसंगीत उत्पन्न करने में प्रयुक्त वाद्यवृंद का सबसे महत्वपूर्ण अवयव होता है एक बहुत बड़ा धनुष। यह पंखिया ताड़ वृक्ष की टहनी या धातु का बना होता है। इसके दोनों सिरों को खींच कर उन्हें खूब तनी हुई मजबूत तांत से बांध दिया जाता है। धनुष के मध्यभाग को उसके बाह्यगोलाकार की ओर से एक बड़े से मिट्टी के घड़े के मुंह पर संतुलित कर दिया जाता है। घड़े को नारियल के रेशे की नरम इंडुरी पर रखा जाता है। घड़े के मुंह पर रखा हुआ, वादकों द्वारा नाजुक ढंग से संतुलित किया हुआ धनुष ऊपर की ओर दो नोकों वाले बहुत बड़े अर्धचंद्र जैसा मनोहर लगता है। धनुष की पूरी गोलाई पर ऊपर से नीचे तक कांसे के अनेक घुंघरु लटके रहते हैं।

वृंद का प्रमुख गायक या कथाकर धनुष के मध्यभाग के सामने बैठता है। उसके दोनों हाथों में एक-एक लड़की की पतली सी छड़ होती है। इन्हें वीसुकोल कहा जाता है। इनके ऊपर वाले सिरों पर (वादक जहां से उन्हें पकड़ता है, उसके पास) मजीरों की एक-एक जोड़ी बंधी रहती है। मजीरों के अंतर्गोल बाजू आमने-सामने रहते हैं और वे एक-दूसरे से सटे रहते हैं। दोनों के बीच के कोटर में पत्थर या धातु के छोटे-छोटे मनके भरे रहते हैं। गायक कलाकार गीत के भावों का निरुपण करते समय अत्यंत संवेदन शीलता से हाथों का संचालन करता है और बड़ी निपुणता से छड़ों द्वारा धनुष की तांत को उचित स्थानों पर झंकृत करता है। इससे उपयुक्त ताल की उत्पत्ति होती है जो गीत के तालस्पंदन के साथ समसामयिक होती है। तांत का कंपन धनुष पर बंधे हुए घुंघरुओं में भी स्वरों की उत्पत्ति करता है।

घड़ा बजाने वाला वादक इसी समय घड़े को दो गत्तेनुमा पट्टियों से बजाकर युगपद स्वरों की निर्मिति करता है। इन पट्टियों को केले के पेड़ को मजबूत पर लचीली झिल्ली से खास इसी मकसद से बनाया जाता है। ऊपर रखे हुए धनुष के

बोझ के कारण और घटवादक द्वारा मुहाने पर दिये जाने वाले के ठेके कारण घड़े से उत्पन्न होने वाली मधुर ध्वनि उसकी गहराइयों में से घुमड़ कर आती हुई मालूम देती है। इस ध्वनि का नादमाधुर्य मृदंगम्, ढोलक, खोल, कांचिरा या अन्य किसी भी तालवाद्य द्वारा उत्पन्न ध्वनि की अपेक्षा कहीं अधिक सुरीला और मनोहारी होता है। घटवादक दाहिने हाथ से घड़े की ग्रीवा पर ठेका देते हुए बायें हाथ से धातु के टुकड़े या सिक्के द्वारा घड़े के पेट पर भी ताल देता रहता है।

इसके अलावा उडुक्कु नामक एक और तालवाद्य होता है जिसे ढोलक की तरह आड़ा रखकर बजाया जाता है। एक अन्य वादक 'काष्ठम्' कहे जाने वाले लकड़ी के दो छोटे खपच्चीनुमा टुकड़ों से भी ताल देता रहता है। तीसरा झांझ या मजीरे बजाता रहता है। धनुषगीत का यह वाद्यवृंद जब अपने चरम आवर्तन पर होता है तो लयताल का एक सुहाना समां बंध जाता है। धनुष, घुंघरू और तालवाद्यों की वैयक्तिक और सबकी मिली हुई सामूहिक लयकारी के संकलन से एक ओजस्वी और प्राणवान संगीत की निष्पत्ति होती है जो गायक द्वारा कथित गाथाकाव्य के मिजाज और उसकी प्रतिक्षण बदलती भावावस्थाओं के सर्वथा अनुकूल होता है। जब प्रमुख गायक गाता है तब अन्य वादक अपने-अपने वाद्य बजाते रहते हैं और जब वे गाते हैं तब प्रमुख गायक वीसुकोल से धनुष के तार को छेड़ता रहता है।

कार्यक्रम के दौरान में धनुष-वाद्यसंघ के वादकों की ओजस्वी भावभंगी और अंगविक्षेप श्रोताओं में भी एक प्रकार की सहृदयतापूर्ण संवेदना प्रेरित करते हैं जिससे श्रोतागण प्रायः बेखुदी से वादकों के जैसी ही चेष्टाएं और मुद्राएं करने लगते हैं। धनुषवाद्य के कलाकार अपनी फनकारी में कुछ ऐसी संजीवनी और संवेदना उंडेलते हैं कि श्रोता समुदाय के सीधे-सादे ग्रामीणजन आनंदातिरेक से सुधबुध खो बैठते हैं। इस कार्य का आयोजन अकसर गांव के मंदिर के सामने के खुले मैदान में होता है। परंपरा से यह कार्यक्रम मंदिरों के उत्सवों के साथ जुड़ा हुआ है और सितंबर से जनवरी के बीच एक सप्ताह तक मनाया जाता है। कार्यक्रम के लिए मंच का निर्माण मंदिर के मुख्यद्वार के बाहर एक ओर को होता है और श्रोतागण मंच और देवता के सामने मुंह करके जमीन पर बैठते हैं।

प्रमुख कथाकार जैसे ही गीत की एक पंक्ति पूरी करता है कि उडुक्कु आदि वाद्य बजाने वाले वादक उसके वाक्य के अंतिम अंश को दोहराते हैं और सामूहिक

रूप से 'आमा', 'आमा' कहकर या अन्य ध्वनियों द्वारा उसके साथ अपनी सहमति प्रकट करते हैं।

धनुषगीत की गायक-वादक मंडली में अकसर आठ आदमी होते हैं। कार्यक्रम की अवधि चुने जाने वाले विषय के विस्तार पर निर्भर करती है। यदि वर्ण्य प्रसंग छोटा हो, तो उसकी समाप्ति एक ही बैठक में हो जाती है। इसके खिलाफ, वर्ण्य विषय आदि पौराणिक या वीरगाथात्मक हों, तो कार्यक्रम की अवधि बढ़ जाती है और वह कई सत्रों में पूरा होता है। रामायण या महाभारत पर आधारित कथाएं तो एक बार आरंभ होने पर तीन-चार दिन तक चलती रहती हैं और उन्हें कई सत्रों में पूरा किया जाता है। मंडली का मुखिया प्रेक्षकों के मनोविज्ञान का विदग्ध जानकर होता है और उसे यह निर्णय करने में कोई कठिनाई नहीं होती कि कार्यक्रम में मध्यांतर कब, कहां और कितना रखना चाहिए।

इन गीतों की शब्दरचना अत्यंत सरल और प्रवाहमयी होती है और उनकी शैली सदा वीरगाथात्मक एवम् गांवों की बोल-चाल की भाषा से रसी रहती है। मुहावरे-कहावतों की तो उनमें भरमार होती है। ग्रामीणों में प्रचलित मुहावरे-कहावतों ने इन गीतों के माध्यम से एक नया आयाम प्राप्त किया है और उन्हें एक नयी अर्थ व्यंजना प्राप्त हुई है। इन गीतों के धाराप्रवाह छंदों में एक तो स्वराघात पर आधारित आंतरिक लय होती है और एक आनुषंगिक सुर। इनके संमिश्रण से इन गीतों का संगीतमाधुर्य और भी बढ जाता है। गीतों की शब्दरचना का अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उनके प्रत्येक दो-चौपाई के अंत में एक स्थायी टेक होती है। मंडली का प्रधान गायक जैसे ही एक दोहे-चौपाई को गा कर पूरा करता है कि अन्य वादक वहीं से टेक को जोड़कर उसे सामूहिक रूप में गाना आरंभ कर देते हैं। इस स्थायी ध्रुवपद के बारंबार दोहराये जाने से श्रोताओं को धनुषगीत कथावस्तु को समझने में सहायता मिलती है।

इन गीतों की कथाएं किसी अतिमानवीय, पौराणिक, भक्तिपरक, ऐतिहासिक या सामाजिक विषय के इर्दगिर्द बुनी हुई होती हैं। इनका वाद्यवृंद और उससे उत्पन्न संगीत, दोनो ही अति मानवीय पार्श्वभूमि पर रची हुई कथाओं के लिए विशेष तौर पर अनुकूल होते हैं। इस हालत में यह स्वाभाविक है कि ये कथाएं अत्यंत लोकप्रिय हों। धनुषगीतों में अलौकिक तत्त्वों का सहारा मुक्तहस्त से लिया जाता है। संपूर्ण या आंशिक तौर पर अतिमानुषिक और कभी-कभी

दानवीय तत्त्वों में परिणति होनेवाली भौतिक या मानसिक अभिव्यंजनाओं की इन कथागीतों में कोई कमी नहीं होती। देवताओं या आसुरी तत्त्वों का तुष्टीकरण, नरबलि, रोंगटे खड़े कर देने वाले भीषण प्रसंग, और अन्य भी कई प्रकार की भयावह और अपार्थिव स्थितियों की इन कथाओं में भरमार रहती है। परंतु इन अतिमानवीय तत्त्वों के पीछे स्थायी भाव सदा अशिव पर शिव की विजय स्थापित करने का ही रहता है।

पझयानूर निली कथा

तिरुनेलवेली जिले में धनुष गीतों की कथाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय है। पझयानूर की कहानी। यह कथा असफल प्रेम का निरूपण करती है और प्रमुख पात्रों के कई जन्मों तक चलती रहती है। सच तो यह है कि न सिर्फ इस कथा में बल्कि इस विभाग में आने वाली अन्य सभी कहानियों में समय को अनादि अनंत और अविच्छिन्न तत्त्व मान लिया गया है। जिसे भूत भविष्य और वर्तमान के प्रभेदों में नहीं बांटा जा सकता। पझयानूर निली की कहानी इस प्रकार है—

व्यवसायी जाति का एक नवयुवक निली नामक लड़की के साथ विवाह होने के कुछ महीनों बाद ही दुर्निवार्य आकर्षणवाली किसी अन्य युवती पर मोहित हो गया और विवेकशून्य होकर उसने अपनी प्रेममयी युवती पत्नी को त्याग दिया। एक रोज वह प्रेमिका अपने प्रेमी से मिलने के लिए निली के घर गयी। निली ने घर का दरबाजा बंद करके उसे बाहर से ही लौटा दिया। इससे क्रोधित हो कर उसने निली से बदला लेने की ठानी। बाद में उसका प्रेमी उसके मकान पर आया तो उसने उसे भीतर नहीं आने दिया। कारण पूछा जाने पर उसने सारी बातें बता दीं और निली द्वारा अपमानित किये जाने की घटना ज्यों की त्यों सुना दी। उसने इसका उचित प्रतिकार करने का वचन दिया। और भीतर आने की विनती की। परंतु प्रेमिका ने फिर इनकार कर दिया और कहा कि उसके अपमान का समाधानकरक बदला केवल इस शर्त पर चुका सकता है कि वह उसे निली का जड़ाऊ मंगलसूत्र ला दे। प्रेमी इसका वादा करके अपने घर लौट गया। और अपनी पत्नी के साथ कई महीनों तक शांति पूर्वक रहा इसके बाद एक रोज उसने निली से कहा कि उसका इरादा उस शहर को छोड़कर किसी सुदूर प्रदेश में बसने

का है ताकि वह अपनी प्रेमिका के घातक प्रभाव मुक्त रह सके। निली ने इस योजना का स्वागत किया और उसके साथ जाने को रजामंद हो गयी। एक रोज रात को दोनों गांव छोड़ कर चल दिये। चलते-चलते वे किसी जंगल के बीच के एक सुनसान कुएं के पास पहुंचे। चांदनी रात थी और दूर के प्रवास से थकी हुई निली ने, जो उस समय गर्भवती थी, पति से रात वहीं गुजारने की प्रार्थना की। दोनों ने वहीं यात्राविराम किया और उस अतल कुएं की जगत के पास ही बिस्तर बिछा लिया। मदभरी रात, मोहक चांदनी, जंगली फूलों की मादक सुगंध और चारों ओर के सुनसान एकांत ने निली पर मोहिनी-सी डाल दी। स्नेह और सद्भाव के शब्दों के साथ उसने पति को बाहुपाश में जकड़ लिया। वह तो ऐसे किसी मौके की बड़ी धीरज के साथ मुद्दत से राह देख रहा था। तुरंत उसने उसका मंगलसूत्र छीन लिया और उसकी हृदय-विदारक चीखों की परवाह न करते हुए उसे उस पाताल कुएं में धकेल दिया। गांव लौटकर वह अपनी प्रेमिका से मिला। यहां पर कहानी का प्रथमार्ध समाप्त हो जाता है।

दूसरे जन्म में उस हत्यारे पति का जन्म एक व्यापारी के रूप में हुआ। एक बार वह अपने पूर्वजन्म के गांव जाने को निकला और संयोगवश वैसी ही चांदनी रात में उसी कुएं के पास विश्राम करने के लिए रुका। रात को निली की प्रेतात्मा कुएं से बाहर निकलकर उसके सामने एक अनिंद्य सुंदरी के रूप में प्रकट हुई और उस थके हुए पथिक को अपना पति घोषित करके उससे प्रेमयाचना करने लगी। इससे वह स्तंभित हो गया और एक क्षण के लिए उसके सामने एकटक देखता रहा। फिर वह भयभीत हो कर इस नतीजे पर पहुंचा कि वह सुंदर स्त्री प्रेत योनि से आयी हुई कोई मायाविनी है। जो मोहिनी रूप धारण करके उसे फांसने आयी है। अतः उसने उसके दावे को अस्वीकार कर दिया। दोनों का झगड़ा आखिर पड़ोस के गांव के पंचों तक पहुंचा। दोनों पक्षों की बात सुनने के बाद गांव के बुधजनों ने निली के पक्ष में फैसला दिया और पथिक को निली का पति घोषित कर दिया गया। उनके निवास के लिए गांव में एक मकान नियत कर दिया गया और दोनों को वहां रहने का आदेश मिला। दोनों ने मकान में प्रवेश किया। निली के चेहरे पर आनंद की आभा छायी हुई थी। भावावेग के ऐन उत्कट मौके पर अतृप्त रह जाने वाली पूर्व जन्म की सारी वासनाएं पूरे आवेग से उसके देह मन में उमड़ पड़ीं और उसने पति को आलिंगनपाश में कस

लिया। प्रेतात्मा को इसी क्षण का इंतजार था। उसने उस धोखेबाज की सारी प्राणशक्ति चूस ली। दूसरे रोज गांव के पंच वहां आये तो उन्हें पथिक की लाश मिली और स्त्री का कहीं कोई पता नहीं लगा।

इस भावावेशपूर्ण कहानी से स्रोताओं के मन में कैसा नाट्यमय तनाव उत्पन्न होता होगा इसकी कल्पना वे ही कर सकते हैं। जिन्होंने धनुषगीत मंडली की इस करुण संगीत गाथा को अपने कानों सुना हो।

अन्य कहानियां

श्मशान भूमि के प्रेत सुदलै मदन की कहानी भी बहुत लोकप्रिय है। धनुषगीतों में ऐतिहासिक गाथाओं का तो यहां तक प्राधान्य है कि इन संगीतमय कथनियों को ग्रामीण जनता को इतिहास का ज्ञान कराने वाली पाठशालाएं माना जा सकता है। इधर के वर्षों में कोटामगलम् सुब्बु ने गांधीजी की जीवन गाथा को भी धनुषगीत में बांधा है जिसने अनपढ़ ग्रामीणों के हृदय जीत लिये हैं।

मंदिरों के उत्सवों के अवसर हर प्राचीन धार्मिक कथाओं के धनुषगीत गाये जाते हैं। लोगों के इन गीतों में कितनी दिलचस्पी होती है इसका कुछ अदाजा गांवों में प्रचलित इस कहावत से लगाया जा सकता है: 'विल्लडीचन कोइलिले विलक्कर्र नेरा मिल्ले'। (मंदिर में धनुषगीत हो रहा हो, तो लोग उसमें इस कदर डूब जाते हैं कि घर में दिया-बाती जलाना भी भूल जाते हैं।)

एक और प्रसिद्ध गाथागीत है 'मारुतनायकम् पल्लै'। इसमें एक दुष्ट आदमी की करतूतों का वर्णन है जिसमें वह विविध कुचक्रों और नाना प्रलोभनों द्वारा अपने बड़े भाई की पत्नी को सत्पथ से फुसलाने का प्रयत्न करता है।

तिरुनेलवेली जिले में 'चिन्न तंबी' नामक गाथाकाव्य भी बहुत लोकप्रिय है। इसमें एक धनी जमींदार की करतूतों का वर्णन है। किसी दानव से बहुमूल्य खजाना प्राप्त करने के लिए उसने अपने किसी गरीब असामी के इकलौते पुत्र की नरबलि दी थी।

कुछ प्रमुख लक्षण

उपरोक्त विभिन्न कथावस्तुओं के अलावा विल्लु पट्टु की कला का एक और

दिलचस्प पहलू है। अशुभ काव्य द्वारा पद्यमय वाद-विवाद। इसके लिए मंडली दो भागों में विभक्त हो जाती है। वीसुकोल का प्रधान गायक, उसके साथ गाने वाले सहायक और झांझ एवं 'काष्ठम्' द्वारा ताल देने वाले वादक एक ओर रहते हैं और घटवादक, उडुक्कु वादक और उनका साथ देने वाले सहायक दूसरी ओर। दाहिनी ओर बैठ कर गाने वाले पहले गिरोह के लोगों को 'वलते पदुपवार' (दक्षिण पंथी) और बायीं ओर बैठ कर गाने वालों को 'इटते पदुपवार' (वामपंथी) कहा जाता है। पहले दक्षिणपंथी किसी विशिष्ट धुन में आशुकाव्य की कोई रचना सुनाते हैं। उसका वर्ण्य विषय भूतल की कोई भी वस्तु हो सकता है। वेदांत और धर्मशास्त्र से लगाकर दर्शन, रहस्यवाद और कर्मकांड तक। दक्षिणपंथियों के इन पद्यों में कई प्रश्न पूछे जाते हैं जिनका वामपंथी गिरोह के उसी छंद और धुन में उत्तर देते हैं। फिर बांयीं ओर के लोग काव्यरचना द्वारा कूटप्रश्न पूछते हैं और दक्षिणपंथी गिरोह के लोग उनका गाकर उत्तर देते हैं। यह परंपरा काफी देर तक चलती रहती है।

कन्याकुमारी जिले के एक गांव शेनबकरामनपुतुर की निम्नलिखित प्रहेलिकात्मक शीघ्रकाव्य रचना विल्लु पट्टु में दक्षिणपंथियों द्वारा पूछे जानेवाले प्रश्नों का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है :

पंचाक्षरी मंत्र के पांचों अक्षर
जल्दी से बतलाओ
और तुरंत बताओ हमको
हरि शब्द का अर्थ ;
धनुष-जन्म की कहानी भी
शीघ्र हमें बतलाओ
और बताओ कैसे उसको
छड़ झंकृत करती है ;
धनुष पर बजनेवाले घुंघरूओं का
स्वर भी हमें सुनाओ
और उनके कंपित हृदयों का
स्पंदन हमें समझाओ ;

शीघ्र हमारे प्रश्नों को बूझो
या धनुष को छोड़ो,···और
सर पर पांव रख कर बंधु
शीघ्र यहां से भागो।

पहली पंक्ति में पूछा गया पंचाक्षरी मंत्र है 'शिवाय नमः'। तमिल के इन पांच अक्षरो का उच्चारण हर शैव बड़ी श्रद्धाभक्ति से करता है। कन्याकुमारी जिले के ही एक अन्य गांव अरलवैमोझी में प्रचलित गीत सुप्रसिद्ध योद्धा इरवी कुट्टी पिल्लई की वीरगाथा का वर्णन करता है। यह वीरपुरुष नंजिलनाड के निवासियों के गौरव की रक्षा के लिए लड़ता हुआ मारा गया था। गीत में सरदार की सेनाओं के युद्धक्षेत्र में संचालन का ब्योरेवार वर्णन है। इस कथासूत्र के साथ आनुषंगिक रूप से और भी कई बातें जुड़ी हुई हैं। एक स्थान पर प्रश्नोत्तर करने वाले पक्षों में बहस का विषय है चांदी और कांसे के गुणधर्मों की स्पर्धा। एक पक्ष कांसे का गुणगान करता है तो दूसरा चांदी की श्रेष्ठता स्थापित करता है। चांदी और कांसे के समर्थकों के बीच की स्पर्धा और अपने-अपने पक्ष में की जाने वाली दलीलें गहरी सूझबूझ, उन्मुक्त कल्पना और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय देता हैं :

कांसे का पक्ष

हाथी की पीठ पर रखा हुआ नक्कारा
कांसे का बना हुआ है
गूंजने वाले ढोल-नगाड़े
छोटे और बड़े
सब कांसे से ही बने हैं
बिगुल, तुरही और ताशे
भी कांसे से हैं निर्मित
पठानों के अरबी घोड़ों के
कनटोप भी हैं कांसे के।

चांदी का पक्ष

रवि पिल्लइ का मुक्ता शुभ्र छत्र
चांदी का है बना हुआ
और सेवकों के पंखों की डंडियां
चांदी से हैं बनी हुईं
मूठें तलवारों की
पानदान और नासदान भी
चांदी के हैं बने हुए
और चीनी बंसीधर की खड़ी बांसुरी
चांदी से है निर्मित।

कांसे की उपयोगिता का समर्थन यदि प्रत्यायक है, तो चांदी के गुणगायकों का वर्णन भी ध्वनि की प्रवाहित संगीतमयता और तालबद्ध स्पंदन में पहले वर्णन से रंचमात्र भी कम नहीं।

लावणी

लावणी में भी संगीतमय वादविवाद होता है औ इस सीमित हद तक उसकी धनुषगीत के साथ समानता पायी जाती है। इसका प्रवचन तंजाउर जिला, तिरुचिरापल्ली जिले के सांस्कृतिक महत्व के भाग और मदुरै नगर तक ही सीमित है। इसका अयोजन अप्रैल-मई में वसत के आगमन का संदेश देने के लिए होता है।

एक पक्ष दलील करता है कि काम अथवा मन्मथ को भगवान शिव ने जला कर भस्म कर दिया था। यह एक भौतिक क्रिया थी जिसने उसका अस्तित्व ही मिटा दिया। इस पर दूसरा पक्ष तर्क करता है कि यह एक प्रतीकात्मक घटना थी। काम का दहन केवल कामवासना के क्षणिक निग्रह का प्रतीक है। काम वास्तव में कभी मरा ही नहीं; बल्कि अनगिनत लोगों के मनों में समा कर अमर हो गया है। इस मौखिक वादविवाद के तर्कवितर्कों और खंडन-मंडन के दौरान में धर्म और नीति संबंधी विचार भी प्रस्तुत किये जाते हैं। पुराणों और शास्त्रों

का हवाला तो पगपग पर दिया जाता है। दोनों दलों के लोग अपने विचार प्रकट करते समय ढोल-ताशे बजाते रहते हैं। यह कार्यक्रम रात भर चलता रहता है और गायकों का दल अपनी वाक्पटुता और विचरों की धाराप्रवाहिता के बल पर लोगों का गहरा मनोरंजन करता है। लावणी कार्यक्रम के अंत में मन्मथ की प्रतिमा का दहन किया जाता है। लावणी का स्रोत महाभारत में माना जाता है। उसका विकास तंजावूर के मराठा शासक राजा सर्फोजी के समय में हुआ था। 'कामन् पंडिगै' को लावणी का प्राचीन तमिल रूप माना जाता है। इसमें मन्मथ की प्रतिमा के सामने शोकगीत गाये जाते थे।

कुम्मी

लड़कियां खेलते समय अनेक प्रकार के गीत गाती रहती हैं। इनमें कुम्मी सर्वाधिक प्रचलित है। इसके दो प्रकार है। साधारण कुम्मी और ओयिल कुम्मी। साधारण कुम्मी के नृत्य तालबद्ध होते हैं और लडकियां विभिन्न मुद्राओं में नाचती हैं। नृत्य का ताल और संगीत की लय, दोनों दर्शकों का मनोरंजन करते हैं।

कुम्मी शब्द 'कोम्मै' से विकसित हुआ है जिसका अर्थ होता है तालबद्ध तालियां बजाते हुए और कुम्मी नृत्य के अनुकूल छंद में गाते हुए नाचना।

ओयिल कुम्मी

ओयिल अट्टम् अथवा ओयिल कुम्मी का प्रदर्शन पुरुषों के गिरोह द्वारा किया जाता है। यह नृत्य पांवों में घुंघरू बांध कर किसी पौराणिक कथा का वर्णन करते हुए होता है। साथ में देवताओं का आह्वान और यश वर्णन भी होता रहता है। हर नर्तक अपने साथियों को सूचना देता रहता है कि वे एक-दूसरे के बीच में काफी जगह छोड़ कर नाचें ताकि प्रत्येक नर्तक को हाथपांव के संचालन के लिए पर्याप्त स्थान मिलता रहे और वे एक-दूसरे के साथ शारीरिक संस्पर्श में न आयें।

कप्पल पट्टु

कप्पल पट्टु अथवा पडगुप पट्टु नाविकों का गीत है। इसे ज्वार-भाटे के भय का निवारण करने के लिए और जलयात्रा की एकरसता को तोड़ने के लिए नदियों

या सरोवरों में नावों द्वारा यात्रा करने वाले यात्रियों द्वारा सामूहिक रूप से गाया जाता है।

कोलट्टम्

यह शब्द दो अंशों से बना है। कोल—छोटी सी डंडी और अट्टम—खेल। यह तमिल नवयुवतियों द्वारा किया जाने वाला अत्यंत मनोहारी समूह नृत्य है। लड़कियों के स्कूलों के वार्षिकोत्सवों में इस नृत्य का आयोजन आजकल अनिवार्य सा हो उठा है। इसकी तुलना गुजरात के गरबा नृत्य से की जा सकती है।

इस कलापूर्ण नृत्योत्सव का सांस्कृतिक और धार्मिक, दोनों दृष्टियों से महत्व है। दंतकथा के अनुसार किसी युग में बसवासुर नामक दानव हुआ था जो किसी के काबू में नहीं आता था। आखिर कुछ लड़कियां एकत्र होकर उसकी गुफा में गयीं और उन्होंने कोलट्टम के मनोहरी नृत्यसंगीत द्वारा उसे मुग्ध कर लिया। लड़कियो के स्वाभाविक विभ्रमों और उस स्वर्गीय संगीत के सौंदर्य से असुर इतना प्रभावित हुआ कि उसने सारे दुष्कर्म त्याग दिये। इस प्रसंग को तमिलनाडु में अनेक स्थानों पर अब तक 'कोलट्ट जोत्रै' के रूप में मनाया जाता है।

बसव (बैल) जो कि शिव का वाहन और प्रतीक है, इस उत्सव का केंद्रीय आकर्षण होता है। उत्सव का आरंभ प्रतिवर्ष आश्विन (अक्तूबर-नवंबर) की अमावस्या से होता है। इस रोज दीपावली होती है। उत्सव की समाप्ति दो सप्ताह बाद पूर्णिमा के दिन होती है। लड़कियां प्रतिदिन सवेरे किसी पवित्र नदी में स्नान करती है। फिर मुट्ठी भर दूब और पानी से भरा कलश लेकर उस स्थान पर जाती हैं जहां उन्होंने पहले दिन बसव की मिट्टी की प्रतिमा की स्थापना की होती है। फिर वे भक्तिभावपूर्वक बसव को दूर्वा अर्पित करती हैं और जलकलश की उसके सामने स्थापना करके कोलट्टम नृत्य द्वारा अपनी श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करती हैं। दोपहर के बाद वे अपनी सुविधानुसार गुट बनाकर बारी-बारी से गांव के कई घरों में जाती हैं और वहां भी कोलट्टम नृत्य करती हैं। घरों के लोग उनकी हर तरह आवभगत करते हैं और उन्हें दिल खोल कर भेंट-सौगात देते हैं। बसव के विसर्जन के लिए निश्चित पूर्णिमा के दिन लड़कियां नये कपड़े पहनती हैं और बसव को सजी हुई पालकी में बिठा कर नदी या तालाब में विसर्जित कर देती हैं। नृत्य के दौरान हर लड़की के हाथों में दो-दो डंडियां

होती हैं। जिन्हें वे अपने दाहिने-बांयें की दोनों लड़कियों के हाथ की डंडियो से बजाती रहती हैं। इससे बड़ा मनोहरी ताल उत्पन्न होता है।

हरिकथा कालक्षेपम्

यह तीन या चार घंटों तक चलने वाली आशुरचित कथा कहने की कला है। इसका प्रचलन भी तंजावर के मराठा शासकों द्वारा हुआ था। इस कला के विद्वान अपने कई भाषाओं के ज्ञान, रामायण-महाभारत आदि वीर-कथा काव्यों की गहन जानकारी और वाक्पाटव के बलबूते पर बड़े से बड़े श्रोता समुदायों को वश में कर सकते हैं। कथाकार के एक हाथ में चप्पलकट्टै कही जाने वाली लकड़ी की दो छिपटियां होती हैं जिन्हें द्रुतगति से बजाकर वह कथा के प्रवाह, गति और लय का नियंत्रण करता है।

कथावस्तु अकसर रामायण-महाभारतादि महाकाव्यों से ली जाती है। मीनाक्षी कल्याणम् सीता कल्याणम् और रुक्मिणी कल्याणम्, अत्यंत लोकप्रिय कथाविषय हैं (कल्याणम्=विवाह)। संवाद के साथ-साथ अत्यंत गत्यात्मकता से उसका एकपात्री अभिनय भी चलता रहता है। गायक आवाज के उतार-चढ़ाव द्वारा विभिन्न पात्रों के कथोपकथन का निरूपण करता रहता है। रुक्मिणी हरण के बाद कृष्ण का रथ भयावह तेज गति से भागता है। उस समय रथ के पहियों की जो द्रुत घरघराहट होती है उसे संगीत और शब्दों की द्रुत लय की सहायता से ज्यों का त्यों निरूपित किया जाता है।

आजकल हरिकथा-कालक्षेपम् में पौराणिक कथाओं का स्थान धार्मिक प्रवचनों और नैतिक व्याख्यानों ने ले लिया है। इनमें बीच-बीच में वर्तमान स्थितियों पर करारा व्यंग्य और आजकल की फैशनों पर चुभती हुई छींटाकशी भी होती रहती है। पूरा समय पार्श्वसंगीत बजता रहता है। सारे प्रदर्शन में संगीत अत्यंय महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उसे यदि कथावस्तु के तानेबाने में अत्यंत कुशलतापूर्वक न गूंथा जाय, तो कलाकार को वांछित प्रभाव उत्पन्न करने में कठिनाई हो सकती है। उसकी सफलता अनेक विषयों के बहुमुखी ज्ञान के साथ-साथ संगीत, मुद्राभिनय, सुरीली आवाज, मधुर जबान, धर्म ग्रंथों, पुराणों एवं लोकसाहित्य की गहन जानकारी, वर्तमान युग की दिलचस्प बातों को कथावस्तु में पिरो लेने की क्षमता एवं भाषा पर अनवरत प्रभुत्व आदि श्रोताओं को प्रभावित कर सकने

वाले अनेकविध तत्त्वों पर निर्भर करती है।

तमिलनाडु में प्रकाशित होने वाले किसी भी दैनिक समाचार पत्र के 'आज के कार्यक्रम' स्तंभ पर एक नजर डाल लेने से ही विभिन्न मंदिरों के प्रांगणों में उस रोज शामको होनेवाले कार्यक्रमों की जानकारी मिल जाती है। प्रतिदिन रामायण, महाभारत, पेरिया, पुराणम् या कांड पुराणम पर आधारित कोई न कोई प्रवचन अवश्य होता है। इन व्याख्यानों में लोग बड़ी संख्या में नियमित रूप से उपस्थित रहते हैं।

ये प्रवचन अशिक्षित जनसाधारण के लिए विद्यालयों की भूमिका अदा करते हैं। हरिकथा के विद्वान कलाकार संत-महात्माओं के जीवन के रहस्यमय अभिप्राय की व्याख्या करते हैं और श्रोताओं के मन में इस भावना का दृढ़ बीजारोपण करते हैं कि भक्ति का मार्ग किसी भी प्रकार के सामाजिक, सांपत्तिक या जातपांत के भेदभाव के बिना सर्वसाधारण के लिए खुला हुआ राजमार्ग है।

कावडी नृत्य

भगवान शिव के पुत्र मुरुग अथवा सुब्रह्मण्यम् का निरूपण अकसर हाथ में भाला लिये हुए एक अत्यंत सुस्वरूप और साकर्षक नवयुवक के रूप में किया जाता है। उनका वाहन है बहुरंगा मयूर। कभी-कभी उन्हें दो संगनियां वल्ली और दैवनै के साथ निरुपित किया जाता है। उन्होंने कई युद्धों में देवताओं की सेनाओं का नेतृत्व किया था और असुरों की समस्त दानवीय शक्तियों का विनाश कर दिया था। इसीलिए उनका निवास पदैवीडु नामक छह युद्धशिविरों में माना गया है। मदुरै जिले की पलनी और तिरुप्पर कुंदरम् नामक दो पहाड़ियों का समावेश इन छह पवित्र स्थानों में होता है। पुराणकथाओं में इन पहाड़ियों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है कि इदुंबन नामक राक्षस उन्हें कंधे पर रखे हुए बांस के दोनों ओर बहंगी की तरह लटकाकर यहां लाया था बाद में यह दानव भगवान सुब्रह्मण्यम का उपासक हो गया था। अब उसकी गणना भगवान मुरुग के प्रधान भक्तों में होती है। यहां तक कि शिव के नंदी की तरह इदुंबन की पूजा किये बिना की गयी सुब्रह्मण्यम् की पूजा व्यर्थ मानी जाती है। पलनी पहाड़ी की चढ़ाई के आधे रास्ते पर उसका मंदिर है और सुब्रह्मण्यम् की पूजा के लिए जाने वाले भक्तों से उसे अग्रपूजा का सम्मान मिलता है। भक्तगणों द्वारा कंधे पर उठाकर

लायी हुई कावडी (बहंगी) इदुंबन द्वारा कंधे पर उठाकर लायी गयी भगवान कार्तिकेय के निवासस्थान की दो पहाड़ियों का प्रतीक मानी जाती है।

कावडी के अनेक प्रकार होते हैं। इनमें दूध और गुलाबजल से भरे कलशों वाली कावडी प्रधान है। लकड़ी की अर्धगोलाकार कावडी के बीच वाली धुरा को कंधे पर टिकाया जाता है। भक्तगण पीले रंग के वस्त्र और फूलमालाएं धारण करके अनेक प्रणों, का निर्वाह करते हुए अनेक प्रकार के कष्ट झेलते हुए लंबी यात्रा में अनेक हाट-बाजारों में से नाचते हुए, पहाड़ियों के शिविर पर पहुंचते हैं। रास्ते भर ढोल-नगाड़ों, तुरही-ताशों और घंटे-घड़ियालों का सम्मोहक संगीत उनका साथ देता रहता है।

इसे नृत्य के लास्य प्रकार से सर्वथा भिन्न तांडव कोटि का नृत्य माना जा सकता है। ओजपूर्ण द्रुत गतियों के साथ शास्त्र सम्मत ढंग से किया जाने पर यह दर्शकों से भी एक प्रकार के उल्लास का निर्माण करता है जिससे प्रेरित होकर वे उसकी तालबद्धता के साथ कदम मिलाने को मजबूर हो जाते हैं।

भक्ति का निरतिशय आवेश कुछ भक्तों को अपने होठों को विकृत करने के लिए प्रेरित करता है। अकसर निचले होंठ छेद कर उनमें तांबे या पीतल की बाली अटका दी जाती है। अकसर इसका हेतु बोलने पर पाबंदी लगाने का होता है। कावडी नर्तक कठोर संयम का पालन करते हैं और काम-क्रोध एवं मत्सर-अहंकार आदि रिपुओं से छुटकारा पाने का प्रयत्न करते है। वे अकसर उनके साथ चलने वाले प्रशंसक भक्तों द्वारा गाये गये कावडी च्चिड़ु गीतों की धुन पर नृत्य करते रहते हैं। इन दैवी गीतों को समूह का कोई संगीतज्ञ भक्त मोहक धुनों में बांधता है और पूरा समूह उन्हें दोहराता रहता है। भावविभोर नर्तक उन्हें सुन कर मंत्रमुग्ध सा हो उठता है। कभी-कभी अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए नर्तक कावडी को कंधों पर से ललाट, नाक, भौंह आदि पर उठा लेते हैं और उसे आगे-पीछे झुलाते रहते हैं। अनेक प्रकार के लयबद्ध संचालन और अंगविक्षेप करते हुए हाथों की सहायता के बिना कावडी का संतुलन बनाये रखने में उच्च कोटि की कला का प्रदर्शन होता है।

कावडीच्चिड़ु तमिल लोकगीतों का एक विशिष्ट प्रकार है। साहित्यिक और तकनीकी दृष्टि से उसका परिपूर्ण विकास हो चुका है। विशिष्ट प्रकार की शब्दरचना के सहारे उसे विभिन्न छंदों ओर धुनों में बांधा जा सकता है। शब्द

रचना अत्यंत सरल होने के कारण उसकी संगीत धुनें अत्यंत सुरीली और लयपूर्ण होती है जो श्रोताओं को मुग्ध कर लेती हैं। इन धुनों से मस्त होकर कावडी वाहक सारे शारीरिक कष्टों को भूल जाता है। लंबी पदयात्राएं करने वाले यात्रियों द्वारा क्लांति परिहार के लिए गाया जाने के कारण इन गीतों को 'वझिनादै-चिड्' भी कहा जाता है।

कावडी चिड् केवल लंबी पदयात्रा करनेवाले यात्रियों द्वारा ही नहीं बल्कि मंदिरों मे भी गाये जाते है। कई मंदिरों मे उन्हें विभिन्न रागों में बांधकर नवरात्रि के अंतिम दिन गाया जाता है। तिरुचेंदुर और पलनी में देवता की रथयात्रा का आरंभ होने से पहले नादस्वरम् की संगत में चिड् गीत गाये जाते हैं। उनमें अक्सर भगवान मुरुग के वल्ली के साथ के प्रणय प्रसगों की गाथा होती है। जन साधारण को इन वर्णनों को सुनकर बहुत आनंद प्राप्त होता है।

कावडी चिड् के सब मिलाकर कोई पच्चीस प्रकार हैं। अन्नामलै रेड्डियार द्वारा रचित गीत सबसे अधिक प्रचलित हैं।

कारगम नृत्य

यह मरिअम्मा की उपासना के साथ विकसित लोकनृत्य है। इसके दो प्रकार प्रचलित हैं। धार्मिक और व्यावसायिक।

धार्मिक प्रकार को शक्ति-कारगम् कहा जाता है। एक छोटे से कलश में पानी भरकर उसके मुंह को नारियल रखकर बंद कर दिया जाता है। कलश को फूल मालाओं से सजाया जाता हैं और उसके ऊपर एक नीबू रख दिया जाता है। मंदिर का पुजारी या उसका प्रतिनिधि बड़ी श्रद्धाभक्ति और भावपूर्ण अनुराग से उसे सिर पर उठाता है। इसे उसका वंश परंपरागत अधिकार माना जाता है।

कारगम के व्यावसायिक प्रकार को अट्टक कारगम् कहा जाता है। इस कला का आवश्यक अभ्यास और नैपुण्य होने वाला कोई भी व्यक्ति कहीं भी लोगों के मनोरंजन के लिए इसका आयोजन कर सकता है। यह तमिलनाडु का एक अनिवार्य रूप से प्रदर्शनीय कार्यक्रम है। प्रतिवर्ष गणतंत्र दिवस पर दिल्ली में होनेवाली परेड में तमिलनाडु की ओर से इसकी झांकी अवश्य प्रस्तुत की जाती है।

अट्टक कारगम् का अर्थ होता है पानी भरे कलश का इंडुरो की सहायता के बिना सिर पर संतुलन बनाये रखना। इस कार्यक्रम के साथ पम्पड़ी, उरुमी,

ताविल, नादस्वरम्, ठुमुक्कु आदि विशिष्ट वाद्य बजाये जाते हैं। तमिल संगीत-प्रणाली में इनमें से प्रत्येक का विशिष्ट स्थान है। कारगम् नर्तक चुस्त कपड़े पहनते हैं और सैनिकों जैसे दिखाई देते हैं। वे चिलप्पदिकारम् में उल्लिखित कुडक-कूटु नर्तकों की याद दिलाते हैं।

कारगम या कुंभम् का अर्थ होता है परिष्कार के लिए प्रयुक्त पवित्र जल से भरा हुआ कलश। कर्मकांड की किसी भी विधि के दरमियान जल के अधिपति वरुण का, सातों समुद्रों का और सातों पवित्र नदियों का आह्वान किया जाता है। कारम् (कारगम्) कलश में इन सारे पवित्र स्थानों का पावन जल एकत्रित रहता है। जिसका विमोचन अंतिम प्रक्षालन के समय होता है जब उससे एकत्रित भक्त समुदाय का अभिषेक या संप्रोक्षण किया जाता है।

इस अनुष्ठान की ऐतिहासिक पार्श्वभूमि बिलकुल स्पष्ट है। किसी भी कृषिजीवी और पशुपालक प्रजा का, जो अपनी समृद्धि के लिए पूर्णतः पानी पर निर्भर करती हो, जल के प्रति भक्तिभाव होना अत्यंत स्वाभाविक है। प्राचीन तमिल प्रजा इसी वर्ग की थी। अतः उसमें वर्षा की अधिष्ठात्री मरिअम्मन की और गंगा मैया एवं कावेरी अम्मन जैसी बारहों मास बहने वाली नदियों की पूजा रूढ़ हो गयी। कारगम् इन्हीं जीवनदायिनी लोकमाताओं के गौरव का उत्सव है। प्राचीन युग में इसका आयोजन गांव की सुंदरियां करती थीं; परंतु अब स्त्री और पुरुष इस नृत्य में भाग लेते हैं।

तिरुनेलवेली जिले में कारगम् को 'अम्मन कोंडाडी' भी कहा जाता है। इसका अर्थ होता है 'देवियों का अशीर्वाद प्राप्त करने की कला'।

कारगम् नर्तक अपनी देह को पवित्र भस्म और चंदन से विलेपित करते हैं और चुस्त, ऊंचा जामा पहनते हैं। सिर पर वे कच्चे चावलों से भरे हुए घड़े को संतुलित रखते हैं। घड़े के ऊपर बांस की खपच्चियों का फूलमाओं से सजा शंकु आकृति का घेरा होता है। अपनी यात्रा का आरंभ वे गांव के चौराहे से या अन्य किसी पवित्र स्थान से करते हैं और फिर जुलूस के रूप में गंतव्य मंदिर तक जाते हैं। द्रुत पदविन्यास के साथ नृत्य करते हुए वे हाथों में तलवार या बल्लम घुमाते रहते हैं। दो वादक ढोल और लंबी तुरही बजाते रहते हैं। धीमी लय से आरंभ होने वाला नृत्य शीघ्र ही प्रमत्त हलचल में परिणत हो जाता है और नर्तक अपनी सुधबुध खो बैठता है। वह कूदता-फांदता है, लड़खड़ाता है और ठोकरें भी

खाता है; पर किसी न किसी प्रकार, हाथों से सहारा दिये बिना सिर पर के कलश का संतुलन बनाये रखता है। लोग इसका श्रेय देवता की सूक्ष्म उपस्थिति को देते हैं जो उस समय नर्तक के शरीर में प्रविष्ट होकर उसे काबू में रखती है। पार्श्वसंगीत नय्यंदी मेलम् द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है।

इस नृत्य की परंपरा बहुत पुरानी मालूम देती है। एक परवर्ती उपनिषद् में एक श्लोक है जिसका भावार्थ इस प्रकार है : 'जिस प्रकार नर्तक लय ताल की जटिल गतियों के साथ नाचते हुए भी अपना ध्यान कलश पर केंद्रित रखता है। और उसे सर पर से लुढ़कने या गिरने नहीं देता, उसी प्रकार जीवन के समस्त कार्यकलाप के बीच हमें मन का आंतरिक संतुलन बनाये रखना चाहिये।

पुर पट्टु

पुर पट्टु अथवा कपोतगीत का प्रचलन तमिलनाडु में ग्यारहवीं शताब्दी से पाया जाता है। ये विशुद्ध प्रणय गीत होते हैं। प्रेम मदमाती कोई प्रमदा पशु पक्षियों को या बादल, पवन या हल जैसी किसी वस्तु को संबोधित करके अपने प्रेमोद्गार व्यक्त करती है और अपनी विरह कातर दशा का संदेशा अपने प्रियतम तक पहुंचा देने की उनसे प्रार्थना करती है।

पुरवी अट्म्

'इसे पोईक्कल कुतिरै' भी कहा जाता है। यह नकली घोड़ों का नृत्य होता है। यह प्राचीन चोल युग में विकसित कला है। इसका विकास चिलप्पदिकारकम् में उल्लिखित परक्कल अट्म् (लकड़ी का पांव लगाकर किया जानेवाला नृत्य) से हुआ है। मराठा शासकों के राज्यकाल में इसे पूर्णता प्राप्त हुई और तंजाउर को आज भी कृत्रिम अश्व नृत्य के कलाकारों का गढ़ माना जाता है। वर्तमान युग में परिष्कृत और परिशोधित होकर उसका आधुनिकीकरण हो गया है। लोकसंगीत के सीधे-सादे तालसुरों में बांधने के बजाय कलाकार इसे कभी-कभी भरत नाट्यम् या कत्थक का रूप भी दे देते हैं।

कठपुतली का यह कद्दावर घोड़ा पटसन, लकड़ी, गत्ता, कागज और कांच की सहायता से बनाया जाता है और काफी कीमती होता है। आज की (1971) कीमतों के अनुसार उसका मूल्य कोई छह हजार रुपये बैठता है। घोड़ों का यह

नृत्य स्त्री और पुरुष दोनों द्वारा मिलकर किया जाता है।

इस नृत्य का प्रधान आकर्षण है गत्ते और लुगदी से बना हुआ घोड़ा। नर्तक इसे अपने शरीर पर पहन-सा लेता है। वह उसकी पीठ मे बने हुए बड़े सुराख में खड़ा हो जाता है जिससे ऐसा मालूम देने लगता है मानो वह उसपर सवार हो। ऊंचाई बढ़ाने के लिए नर्तक के पांवों के नीचे लकड़ी की बैसाखियां बांध दी जाती हैं। इनका सही-सही प्रयोग महीनों के अभ्यास के बाद ही जमता है। इन बैसाखियों का एक उपयोग यह भी होता है कि नर्तक की सांप-बिच्छुओं से रक्षा हो जाती है।

अकसर यह नृत्य एक नर्तक और एक नर्तकी की जोड़ी द्वारा किया जाता है। ये दोनों राजा-रानी के प्रतीक होते हैं। कभी-कभी वे सरकस के नटों की-सी कलाबाजियां खाने लगते हैं जिससे दर्शकों का घटों तक मनोरंजन होता है।

कृत्रिम घोड़ों का नृत्य नयी दिल्ली की गणतंत्र दिवस की परेड में भी बड़ा लोकप्रिय हो उठा है। इसके प्रदर्शन के लिए तमिलनाडु से प्रतिवर्ष लोक कलाकार भेजे जाते हैं।

बोम्मलट्टम अथवा पवैक्कुत्

यह कठपुतलियों का नृत्य है जिसका प्रयोग धार्मिक कथाओं के प्रचार में होता है। तिरुक्कुरल में इसका उल्लेख 'मरप्पवै' कह कर हुआ है। बाद के युगों में इसने तेलुगु लोक नाट्य के बहुत से लक्षण आत्मसात कर लिये। गांवों के भोलेभाले लोग मानते हैं कि उनके गांवों में कठपुतली का नृत्य होना कल्याणकारी होता है और उसके सहारे अमंगलकारी तत्त्वों एवं महामारियों को हटाकर समृद्धि हासिल की जा सकती है। कठपुतली नृत्य की मुख्य कथाएं रामायण, महाभारत और भागवत की घटनाओं पर आधारित रहती हैं।

इस नृत्य का संचालन परदे के पीछे खड़े हो कर ऊपर से लटकायी हुई लोहे की छड़ों और उंगलियों में बंधी हुई डोरियों की सहायता से होता है। मंच का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि बीच के कोई चार मीटर ऊंचे अंतराल में सिर्फ कठपुतिलियां ही दिखाई दें। पुतलियों का संचालन दर्शकों की आंखों से ओझल, परदे के पीछे खड़े हुए कुशल और अनुभवी कलाकारों द्वारा अत्यंत निपुणता से होता है। पुतलियां कलाकारों की उंगलियों से काली डोर द्वारा बंधी

रहती हैं जो गहरे रंग की पार्श्वभूमि के कारण दिखाई नहीं देतीं।

रात को दस बजे शुरू होने वाला कार्यक्रम अकसर दूसरे रोज सुबह चार-पांच बजे समाप्त होता है। यह सिलसिला सप्ताह भर या दस दिन तक चलता रहता है। मंच के दोनों ओर रेंडी के तेल के बड़े-बड़े दीपक जला दिये जाते हैं। यवनिका के रूप में करीब तीन मीटर ऊंचाई का काला परदा होता है। कठपुतलियां इसी परदे के सामने नाचती हैं।

चंद्रामती और नाचने वाली अन्य कठपुतलियां जब परदे के सामने आ जाती हैं तो परदे के पीछे वाले संचालकों को भी अनेक प्रकार के अंगविक्षेप करते हुए करीब-करीब नाचना पड़ता है। उनकी दसों उंगलियों और हाथ-पांवों के लिए पर्याप्त काम रहता है। चंद्रामती जब अपने हार को छिन्न-भिन्न करके श्मशान में विलाप करती है, तब का दृश्य तो वाकई हृदय हिला देने वाला होता है जिसका सदा से बड़ा आकर्षण रहा है।

कठपुतली नृत्य देवी लक्ष्मी द्वारा असुरों को मोहित करके उनका विनाश करने के लिए किये गये ग्यारह नृत्यों में से एक का अनुकरण माना जाता है। जीवन के उच्चतम मूल्यों की प्रस्थापना करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। हरिश्चंद्र की कथा पर आधारित नृत्य इस सिद्धांत का प्रचार करता है कि हमें सत्य के प्रति एकनिष्ठ रहना चाहिए और अपने प्राणों का सारे दुःख संकटों को झेल कर भी पालन करना चाहिये।

चर्मपुतली नृत्य

इसका प्रचलन भी तंजाउर में महाराष्ट्रीय प्रभाव से हुआ था। तमिलनाडु में अब इसका आयोजन कभी-कभी ही होता है। ये आदमकद पुतलियां भेड़-बकरी की पतली झिल्लीनुमा चमड़ी से बनायी जाती हैं। इस प्रकार को विशिष्ट प्रकार से कमाया जाता है जिसने वह पारभासक (translucent) हो जाता है। उन्हें काट कर इस प्रकार जोड़ा जाता है कि हाथपांवों का हलन-चलन हो सके। फिर उन्हें गहरे सूखे रंगों से रंग कर स्त्री-पुरुष, देवी-देवता, पशु-पक्षियों या असुर-राक्षसों की मुखाकृतियां दी जाती हैं। इनका संचालन नीचे बंधी हुई तनियों से होता है। उनसे अंगविक्षेप, मुद्राभिनय और नृत्य आदि करवाना बड़ी कष्टसाध्य कला है।

कुरवंजी

कुरवंजी तमिल प्रजा का विशिष्ट नृत्य नाट्य है। एक मनोरंजन के रूप में उसका स्थान शास्त्रीय कलाओं और लोककलाओं के बीच में पड़ता है।

तमिल में सैंकड़ों कुरवंजी विद्यमान हैं जिनमें से कुछ का प्रकाशन अभी हाल में ही हुआ है। अधिकांश अभी तक हस्तलिखित रूप में हैं। एक का प्रकाशन तो स्वरलिपियों वाले गीतों सहित हुआ है। कई कुरवंजियों का विद्वानों द्वारा पुनर्गठन हुआ है और उन्हें मद्रास नगर में रंगमंच पर भी प्रस्तुत किया गया है। कुरवंजी के लोकप्रिय करने में श्रीमती रुक्मिणी देवी द्वारा संचालित कलाक्षेत्र ने सराहनीय कार्य किया है। तमिल ईसाई संघम् का योगदान भी उल्लेखनीय है। इस कला का आरंभिक प्रश्रयदाता चोलवंश का राजराजा नामक शासक था। उसने तंजाउर के बड़े मंदिर में उत्सवों के दरमियान कुरवंजी का प्रदर्शन करने के लिए विशाल रंगमंच बनवाया। उसे कुरवंजी मेडइ (मंच) कहा जाता है।

प्रत्येक कुरवंजी नृत्य नाटकों में नर्तकी नायिका उस प्रदेश के अधिष्ठाता देवता या शासक के प्रेम में मतवाली हो उठती है। वह प्रेम के देवता से अपनी मनोकामना पूरी होने का वर मांगती है। इस दौरान में वह उक्त स्थानीय देवता की रथयात्रा, उस प्रदेश की प्राकृतिक समृद्धि, उसकी उर्वरता आदि का वर्णन करती रहती है। हथेली देखकर भविष्यकथन करना भी कुरवंजी का आवश्यक अंग होता है। मुख्य नर्तकी के उपरांत जिप्सी बालाएं, गायक-वादक और समूह नृत्य करने वाली नर्तकियों की उपस्थिति करवंजी की शोभा को और भी बढ़ा देती हैं। नायिका अपने प्रेमी के साथ मिलन करवा कर अपनी विरह व्यथा को दूर करने की विनती दासियों और सखियों से करती रहती है।

कुछ दशाब्दियों पूर्व तक कुरवंजी नृत्यनाट्य का आयोजन मंदिरों में नियमित रूप से होता था। कलाकार निरंतर अभ्यास अपने आपको चुस्त और तैयार रखते थे। परंतु बाद में मंदिरो में देवदासियों द्वारा किये जाने वाले नृत्यों पर कानूनी पाबंदी लग जाने के कारण कुरवंजियों का नाट्याभिनय बंद हो गया था। अब फिर एक बार प्राचीन सांस्कृतिक कार्यक्रमों में दिलचस्पी ली जाने लगी है और कुरवंजी को फिर से पुनर्जीवन प्राप्त हो रहा है। कुरट्टियों द्वारा गायी जाने वाली वे ग्रामीण धुनें, जिनमें तमिल प्रदेश की उर्वरता और समृद्धि एवं उसके

देवी देवताओं के पर्वतीय निवासस्थानों की महत्ता का गौरवगान किया जाता है, एक प्रकार की निश्छल सादगी से परिपूर्ण हैं। तिरुक्कुत्राल कुरवंजी जैसी रचनाएं अपनी काव्यात्मकता के कारण प्रसिद्ध हैं तो विरलीमलै कुरवंजी अपनी संगीतमयता के लिए। अझागर कुरवंजी और तिरुमलै अंदावर कुरवंजी में साहित्य और संगीत के बीच सूक्ष्म संतुलन पाया जाता है। सब मिला कर कुरवंजियों का शास्त्रशुद्ध पाठ तो सुरक्षित रह पाया है पर नृत्य-नाट्य की पद्धतियां और संगीत की धुनें उतनी सुरक्षित नहीं रह पायीं।

तिरुक कुत्रालक कुरवंजी में वर्णन है कि एक बार एक पहाड़ी सुंदरी को किसी धनी परिवार की क्वांरी कन्या का हाथ देखकर भविष्य कथन करने के लिए बुलाया गया। कन्या स्थानीय देवता के प्रेम में मतवाली हो चुकी थी। पर्वतीय जब बहुमूल्य भेंट सौगातों से लदी हुई घर पहुंची तो उसके पति के मन में शंका उत्पन्न हुई। उसने खूब झगड़ा करके उसे घर से निकाल दिया पर अंत में दोनों में समझौता हो गया। इस सीधी सादी कथा के गिर्द सुंदर नृत्य-नाट्य का सृजन हुआ है जो पीढ़ियों से मंदिरों के प्रांगणों में खेला जाता रहा है।

सेंदिल कुरवंजी का नृत्यनाट्य तिरुचेंदुर के अधिष्ठाता देवता को ले कर रचा गया है। नायिका मदन मोहिनी अपनी सखियों के साथ आनद से समय व्यतीत कर रही थी। उसने एक बार भगवान अरुमुग का जुलूस निकलता देखा और वह उनके प्रेम में विह्वल हो उठी। उसने अपनी सखियों से पूछा कि जुलूस में निकलने वाला व्यक्ति कौन है। उत्तर मिला कि वह तो साक्षात् भगवान सेंदिल मुरुगन हैं। मदन मोहिनी अपनी सखियों को संबोधित करके जो दोहे सुनाती है उनमें उसकी विरहव्यथा का खासा चित्रण हुआ है। उसकी एक सहेली भगवान मुरुग को उसका संदेश पहुंचा देती है। इसके बाद कुंदमलै से आने वाली जिप्सी स्त्री रंगमंच पर आती है। वह वासलवालम् और देशवालम् के मनोमुग्धकारी गीतों द्वारा तमिल प्रदेश की समृद्धि का वर्णन करती है। फिर वह मदन मोहिनी का हाथ देखकर भविष्यवाणी करती है कि उसकी मनोकामना पूर्ण होगी। मदन मोहिनी को स्वप्न में भगवान मुरुग का साक्षात्कार होता है और उसे ऐसा लगता है मानो वह उसके साथ विवाह बंधन में बंध गयी हो। खुश होकर वह कुरती (जिप्सी सुंदरी) को बहुमूल्य उपहारों से लाद देती है।

अब कुरत्ती का पति सिंगन उसे ढूंढता हुआ आता है। यह पूरा प्रवेश हासपरिहास के प्रसंगों से परिपूर्ण है। मदन मोहिनी से प्राप्त बहुमूल्य उपहारों को देखकर सिंगन का सारा गुस्सा काफूर हो जाता है। इसके बाद आशीर्वचनात्मक गीत होकहर तमाशा समाप्त हो जाता है।

अरयार नटनम्

यह लोकनृत्य का एक प्रकार है जिसे दिसंबर-जनवरी में श्रीरंगम् और अन्य वैष्णव मंदिरों में प्रदर्शित किया जाता है। इसमें एक मुख्य नर्तक के कई वादक होते हैं जो मिल कर तिरवैमोझी नामक पवित्र स्तोत्रों का पाठ करते हैं।

इस श्रेणी के गायकों को अरयार (मंत्रपाठक) कहा जाता है। वे मंदिरों में स्थायी सेवक होते हैं। उन्हें कई प्रकार की सुविधाएं, भत्ते और दस्तूरियां मिलती हैं। स्तोत्रपाठ करते समय वे एक विशिष्ट प्रकार की वर्दी पहनते हैं जिससे उनके पदसूचक चिह्न के रूप में पहना हुआ किरीटम् (शंकु आकृति का मुकुट) मुख्य होता है। गाते समय वे कांसे के मजीरों की जोड़ी का प्रयोग करते हैं। उनमें से एक गायक गीत के भावों के अनुसार अंगविक्षेप करता रहता है। गीतों के बीच में वे कोडट्टम नामक स्तोत्रों द्वारा अधिष्ठता देवता का गोरवगान भी करते हैं। अरयार नर्तक अपने नृत्यों में एक सुनिश्चित पर रहस्यमय प्रणाली का प्रयोग करते हैं। इसके अंगविक्षेप और मुद्राभिनय परंपरा से चले आये हैं। वे अकसर कृष्ण की बाललीलाओं का निरुपण करते हैं।

पोडीकाभी अट्टम

यह पांडीचेरी के समुद्रीतटवर्ती गांवों के मछेरों का उनके प्रिय देवता मुरुग के उत्सव दरमियान किये जाने वाला लोकप्रिय नृत्य है। अपनी पारंपरिक वेषभूषा में सज आठ से सोलह पुरुष इसमें भाग लेते है। संगत ढोल-नगाड़ों की होती है। संगीत प्रस्तुत करने का कार्य अकसर स्त्रियां करती हैं।

भागवत मेला

तमिलनाडु के भरत नाट्यम् की परंपरा समय की कसौटी पर खरी उतरी है और आज उसे भारत के शास्त्रीय नृत्यों में सुसंस्कारित नृत्यकला की

परमावधि माना जाता है। उसके शिल्प-कौशल का रूपांतर कर के तमिलनाडु में अनेक लोकनृत्यों का विकास हुआ है। नट्टुन मेला का लोकप्रिय सादिर नाट्य नृत्य इसी का उदाहरण है। प्राचीन युग में इसका रूप गीतात्मक एकांकी नृत्य का था जिसे अकसर देवदासियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। इस प्रथा ने ही इस मान्यता को जन्म दिया कि भरत-नाट्यम् में पुरुषों को कोई स्थान नहीं है। भागवत मेला जो किसी ज़माने में पूरे तमिलनाडु में लोकप्रिय रहा था, अब केवल एक गांव में सिमट कर रह गया है। वह है तंजाउर जिले का मेलाट्टुर ग्राम। मई-जून में होने वाले वहां के नरसिंह जयंति उत्सव के दरमियान भागवत मेला होता है। मंदिर के सामने सड़क पर पुआल के छप्पर वाला विशाल मंडप और सामने छोटा-सा मंच बनाया जाता है। सारे नृत्य-नाट्य मंदिर के बाह्यगृह में स्थापित देवप्रतिमा की साक्षी में और उसी को समर्पित करके प्रस्तुत किये जाते हैं।

भागवत मेला का नृत्य-नाट्य अत्यंत धीमी गति वाला आकर्षक होता है। साथ में सुरीला गेयसंगीत और तालबद्ध वाद्य संगीत बजता रहता है। उच्चकोटि के शब्दविन्यासयुक्त संवाद, सांकेतिक पर संयत अभिनय और लाक्षणिक घटनाक्रम इसके व्यवच्छेदक लक्षण होते हैं। युद्ध और मारकाट के हिंसात्मक प्रसंगों का प्रत्यक्ष निरूपण नहीं किया जाता। उनका केवल वर्णन भर कर दिया जाता है। इसमें भाग लेने वाला हर कलाकार भरत-नाट्यम में प्रवीण होता है।

कार्यक्रम का आरंभ कोनंगी (विदूषक) के प्रयोग से होता है। वह थोड़ी देर तक नृत्य करता है और दर्शकों से कार्यक्रम को शांतिपूर्वक देखने की विनती करता है। फिर संगीतकारों का वृंद टोडाय मंगलम् (आह्वन गीत गाता है। इसके बाद प्रस्तुत किये जाने वाले का संक्षिप्त परिचय करवा कर उसकी भूमिका रची जाती है। फिर गणेशजी प्रवेश कर के नाटक को आशीर्वाद देते हैं। इसके लिए अकसर किसी छोटे लड़के को गणेशजी का सूंड मुखौटा पहना दिया जाता है। वह कुछ देर तक पार्श्वसंगीत लय पर नृत्य करता है। इसके बाद हर कलाकार और नाटक का परिचय कराया जाता है। इतनी लंबीचौड़ी पूर्वभूमिका के बाद कहीं नाटक का आरंभ होता है।

शंख वाद्यम्

शंख सदा से जनसाधारण द्वारा समादृत वाद्य रहा है। शंख के साथ चांदी की वंशी जोड़कर संगीत के सुर अपनाये जाते हैं। वंशी फूंक मार कर बजाये जाने वाले मुखवाद्य का काम करती है, पर उसमें स्वर नियंत्रण के लिए छिद्र नहीं होते। वादक वाद्य से फूंकी जाने वाली सांस की मात्रा और दबाव का कुशलता से नियंत्रण कर के इच्छित स्वर उत्पन्न करता है। इस प्रकार उत्पन्न की हुई ध्वनि शहनाई और मुखवीणा की मिलीजुली आवाज के सदृश होती है।

पलनी में शंखावाद्य बजाने वाले वंश परंपरागत वादकों के परिसर पाये जाते है। इन्हें पांडरम् कहा जाता है। इनकी अपनी कुछ परंपरागत संगीत धुनें होती हैं जिन्हें वे तालवाद्यों की संगत के साथ शंखवाद्य पर बजाते हैं।

शंखवाद्य बजाने की नियमित संगीत गोष्ठियां भी हैं। इनमें प्रयुक्त शंख को धवल शंख कहा जाता है। शंख के मुख के साथ कोई पांच इंच लंबी चांदी की नलिका जुड़ी रहती है। इसका वादन फूंकी जाने वाली सांस के कुशलतापूर्ण नियंत्रण द्वारा होता है।

शंख का संगीतवाद्य के रूप में उपयोग खेतों में भी होता है। लोगों का ऐसा विश्वास होता है कि इससे धरती की उर्वरता बढ़ती है। अब तो कृषि वैज्ञानिक भी इस तथ्य को मानने लगे हैं। ऐंकरुनुरु और अन्य कई ग्रंथों में इस बात का उल्लेख हुआ है कि तमिलनाडु के जमींदार जमीन की जुताई से पहले वलमपुरी शंख बजवाते थे जो धरती की उत्पादकता में बहुत सहायक होता था। बड़े मंदिरों की मालिकी की जमीनों में इस प्रथा का पालन आज भी किया जाता है।

नवसंधि

इसका अर्थ होता है नौ दिशाएं। यह वाद्यसंगीत के साथ किये जाने वाला नृत्य है। इसका आयोजन तिरुचेंदुर मंदिर के वार्षिकोत्सव के प्रारंभ में किये जाने वाले ध्वजारोहण के समय होता है। तमिलनाडु के अन्य कई मंदिरों में भी वार्षिकोत्सव का आरंभ करते समय नृत्य की स्वतंत्र परंपराएं पायी जाती हैं। उदाहरणार्थ एक स्थान पर देवता के पालकी-वाहकों के नृत्य की परंपरा है। ये

सब लोकनाट्य की परंपरा के ही प्रभेद हैं जिनमें संगीत और नृत्य का समुचित संयोजन किया जाता है।

लोकनृत्य की अन्य परंपराएं

अब हम लोकनृत्यों और जनसाधारण में प्रचलित नृत्यनाट्य की अन्य परंपराओं की चर्चा करेंगे। ग्रामीण जनसमुदाय को आकर्षित करने के लिए इनमें से कई का आजकल फिल्मों में प्रयोग होने लगा है। इसके परिणाम स्वरूप ग्रामीण दर्शक समुदाय तमिलनाडु के फिल्म उद्योग की अपूर्व और आशातीत वृद्धि की बुनियाद बन गया है।

कुरवैक कूतु

नृत्य के इस प्रकार में सात लड़कियां एक-दूसरी का हाथ पकड़ कर वृत्त बनाती हैं। चिलप्पदिकारम् में इसका उल्लेख एचियार कुरवै (गोपबालाओं का नृत्य) नाम से हुआ है।

इस नृत्य की संगीत योजना में एक विशिष्ट अभिप्राय छिपा रहता है। वृत्त बनाकर नाचने वाली सात लड़कियां सुरावली के सात स्वरों का प्रतिनिधित्व करती हैं। यहां तक कि उन्हें क्रमशः सरगम के सात सुरों के तमिल नाम कुरल, तत्तम, कैक्किलै (सा, रे, ग, म) आदि से पुकारा जाता है।

इन अल्प प्रचलित नृत्य के अवशेष अब सिर्फ अचोपोंग नामक लोक नृत्य में दिखाई देते हैं। इससे सात (या कम अधिक) लड़कियां वृत्त बना कर खड़ी रहती हैं और लयपूर्ण गति एवं तालबद्ध तालियों के साथ गीत गाती हैं। महाकवि भारती ने इस नृत्य की अत्यधिक प्रशंसा की है। उन्होंने गीत और तालियों द्वारा ही नहीं, नर्तकियों की चूड़ियों की झनकार से उत्पन्न होने वाले स्वरमाधुर्य के भी गुण गाये हैं।

कझैक्कूतु

यह बांस पर किये जाने वाला नृत्य है। इसका एक प्राचीन चित्रण श्री विल्लिपुत्तुर के श्री अंदाल मंदिर की दीवारों पर अंकित संगतराशी की नक्काशी में पाया जाता है। नर्तक कोई दो मीटर ऊंची बांस की जोड़ी पर संतुलन बनाये

रखता है और ढोल पर नाचता है जिसे उसकी पत्नी बजाती है।

कनिअन अट्टम्

यह दो विदूषकों द्वारा गाया जाने वाला वर्णनात्मक लोकगीत होता है। इनमें से एक स्त्री और एक पुरुष होता है। दोनों चलते जाते हैं और बातें करते हुए गाते जाते हैं। आजकल इस एकांकी नृत्य नाट्य का स्थानीय देवी-देवताओं के मंदिरों में भी ह्रास हो रहा है जहां किसी जमाने में वह पूरे गौरव के साथ प्रचलित था।

नृत्य की विरासत

तमिलनाडु में प्रचलित नृत्य और नृत्यनाट्य का स्वरूप परंपरा से धर्ममूलक रहा है। नटराज के रूप में भगवान शिव नृत्यकला के आद्य प्रणेता रहे हैं। उनके नृत्य को आनंद तांडव कहा जाता है जिसकी अभिव्यक्ति द्वारा योगियों के योगी पृथ्वी और स्वर्ग को जोड़ सकते हैं और मनुष्य के चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं। नटराज की प्रतिमा शाश्वत गति की अभिव्यक्ति करती है। एक ऐसी गति जो चिर चंचल होने पर भी शांति प्रदान करती है। चिदंबरम् का शिवालय नृत्यकला के उद्गम स्थान के रूप में पूरे तमिलनाडु में सम्मानित है।

इस सुविशाल देवालय के एक गोपुरम् की भीतरी दीवारों पर नृत्य-मुद्राएं अंकित हैं। मुद्राओं का अंकन सूक्ष्म ब्योरे के साथ अत्यंत स्पष्ट रूप से हुआ है। ये शिल्प मूर्तियां नृत्य के विभिन्न करणों को अंकित करती हैं। उनकी रचना एक दूसरे के ऊपर कुछ इस प्रकार से हुई है कि दूर से देखने पर वे दीवार से प्रलंबित तीन आयाम युक्त स्तंभों जैसी मालूम देती हैं।

बीते हुए युगों में तमिलनाडु के विशाल मंदिर भोर से रात तक नृत्य संगीत से गूंजते रहते थे। भगवान को संगीत के स्वरों से ही जगाया जाता था और रात को उनके हिंडोले को झुलाते हुए संगीतमय लोरियों द्वारा ही उन्हें सुलाया जाता था। इन दो सिरों के बीच में दिन भर नृत्य संगीत की महफिलें जमती रहती थी।

राजराजा चोल ने मंदिरों में कुशल और प्रशिक्षित नर्तकों की नियुक्ति करवायी थी। इनमें भी नर्तकियों की नियुक्ति की ओर अधिक ध्यान दिया जाता

था। मंदिरों की इन नर्तकियों में नृत्यकला वंश परंपरा से चली आती थी और उनकी लड़कियों को तो वह मां के दूध के साथ विरासत में मिलती जाती थी। इन्हें देवदासी कहा जाता था और बचपन में ही इन्हें मंदिर के देवता को समर्पित कर दिया जाता था। इन्हें शास्त्रीय नृत्य-संगीत की शिक्षा नट्टुवनार नामक अभिजात नृत्याचार्यों द्वारा दी जाती थी। समर्पण विधि मंदिर के पुजारियों द्वारा की जाती थी। देवदासी के गले में ताली (मंगलसूत्र) बांधकर उसे देवता के साथ विवाहित घोषित कर दिया जाता था। नृत्य-संगीत के सात साल के कठोर प्रशिक्षण के बाद उसे अरनकेरम नामक समारोह में प्रथम बार देवता के सामने नृत्य करने का मौका दिया जाता था। इस मौके पर राजा और संगीतगुरु, दोनों उपस्थित रहते थे। विशेष प्रावीण्य प्राप्त करने वाली नर्तकियों को विविध पदवियां दी जाती थीं।

तंजाउर के विशाल मंदिर में उपासना के नृत्यसंगीत के लिए चार सौ देवदासियां बसी हुई थीं। नृत्य-संगीत के अलावा मंदिर की पाकशाला के लिए चावल चुनना, फर्श और दीवारों को गोबर-मिट्टी से लीप-पोत कर साफ रखना, और पूजा के लिए फूल और पवित्र भस्म आदि के करंडक सजा कर ले जाना भी उनके दैनिक कार्यों में शुमार था। मंदिरों और महलों की सजावट का काम भी उन्हीं के जिम्मे होता था। महलों में वे वेतन भोगी सेविकाएं होती थीं और राजा की वैयक्तिक सेवाएं करती थीं, रानी की दासियों के रूप में तत्पर रहती थीं और महल के अन्य छोटे-मोटे काम भी करती थीं। इसे हीनकर्म नही माना जाता था। ऊंचे-ऊंचे महान परिवारों की उच्च प्रशिक्षण प्राप्त, कार्य कुशल, एवं सुसंस्कृत लड़कियां भी अपने आपको मंदिरों की सेवा में आजीवन समर्पित कर देने में धन्यता का अनुभव करती थीं। साथ ही यह भी सही है कि कई लड़कियों के अभिभावक उन्हें धन के बदले में मंदिरों को बेच देते थे।

एक लोककथा के अनुसार तंजाउर में राजराजा चोल द्वारा निर्मित विशाल देवालय के निर्माण की प्रेरणा एक देवदासी ने ही प्रस्तुत की थी। वह एक अत्यंत सुंदर और प्रवीण नर्तकी थी और केवल देवता के समक्ष ही नाचती थी। उसका पिता महान शिल्पी था। उसने राजा से अपनी कन्या की सहायता करने की प्रार्थना की। राजा ने उसके लिए विशाल मंदिर बनवाया जिसमें देवता के समक्ष पहली बार नृत्य उसी देवदासी ने किया।

मंदिरों में नर्तकियों के रूप में देवदासियों की नियुक्ति होने के कारण तमिलनाडु की नृत्यकला को अनेक मिथ्या अपवादों और भ्रांतियों का शिकार होना पड़ा है। उसे जराजीर्ण, ह्रासोन्मुख, अशिष्ट, अनैतिक, अश्लील और न जाने क्या-क्या रहा गया है। कुछ समाजशास्त्रियों ने तो देवदासी प्रथा को गणिकावृत्ति का ही एक प्रकार करार दिया है। नाच-विरोधी आंदोलन और समाज सुधार की प्रवृत्तियों ने उस पर कानूनी पाबंदी भी लगवा दी थी। संसार का ऐसा कोई लांछन नहीं जो उसके मत्थे न मढ़ा गया हो। यहां तक कि देवदासियों द्वारा प्रस्तुत भरतनाट्यम के सातिर नामक एक पात्री प्रयोग को भी अपरिष्कृत मानकर हिकारत की नजर से देखा जाने लगा था। स्वातंत्र्य प्राप्ति के समय यही हालत थी। युगों-युगों से शास्त्रीय नृत्य की परंपरा को प्राणप्रण से जीवित रखने वाली इस प्रथा पर विनाश के बादल मंडराने लगे थे और देवदासी-प्रथा के साथ-साथ शास्त्रीय नृत्य की परंपरा के भी विस्मृति के गर्भ में लुप्त हो जाने का खतरा उपस्थित हो गया था।

परंतु स्वतंत्र भारत में स्थिति तेजी से पलटी है। अब समान्य मध्यवित्त परिवारों, कलाक्षेत्र जैसी सुप्रसिद्ध नृत्य-संस्थाओं, राज्यों एवं केंद्र की संगीत-नाटक अकादमियों और अन्य संस्थाओं द्वारा नये कलाकारों को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जाने लगा है। नृत्यकला का निश्चित रूप से पुनरुत्थान हो रहा है; समाज की इस ओर से आंखें खुली हैं और इस सांस्कृतिक धरोहर के समृद्ध भंडारों और उसके महत्व की ओर अब लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा है।

सामाजिक पूर्वाग्रहों के कारण नृत्य-संगीत के आचार्यों के बहुत वंशजों ने अपने पेशे को हीन और लज्जास्पद कर्म मानकर त्याग दिया था और आजीविका के अन्य साधन ढूंढ़ निकाले थे। सिर्फ कुछ इने गिने परिवार ही अपनी पारंपरिक विरासत से चिपके रहे। अपनी धुन के पक्के इन दृष्टाओं में पंडनैनल्लुर के स्वर्गीय श्री मीनाक्षी सुंदरम् पिल्लै और उनके परिवार का स्थान अद्वितीय है। पिल्लै जी नृत्यशास्त्र के पारंगत प्रणेता और तत्संबंधी जानकारी के अक्षय भंडार थे। उन्होंने प्रदीर्घ प्रशिक्षण और कठोर साधना द्वारा विश्वविख्यात नर्तक-नर्तकियों और नृत्याचारों की लंबी शृंखला का निर्माण किया है। उनके इस महत्कार्य को देश कभी नहीं भूलेगा। हर्ष का विषय है कि इस पेशे के प्रति पूर्वाग्रह अब तेजी से समाप्त हो रहे हैं। अब तो उपरोक्त नृत्यगुरुओं में से कइयों

को शासन द्वारा प्रोत्साहन दिया गया है और आर्थिक सहायता, मान-सम्मान, पद-पदवियां एवं ऋण स्वीकार के द्वारा उनकी सेवाओं को स्वीकृति प्रदान की गयी है।

आजकल नृत्यकला का सर्वांगीण पुनरुत्थान हो रहा है। और उसमें लोगों की रुचि बढ़ती जा रही है। कई प्रसिद्ध नर्तक-नर्तकियों की सफलता ने युवा पीढ़ी के मन में महत्त्वाकांक्षा के बीज बोये हैं। उनके अभिभावक भी अब इस कला की साधना में किये जाने वाले धन, समय और शक्ति के व्यय को बुरी बात नहीं समझते। कार्यक्रमों की गुणवत्ता का स्तर निरंतर ऊंचा उठता जा रहा है और उनके प्रदर्शनों में दर्शकों की उपस्थिति की संख्या भी अनवरत बढ़ती जा रही है। सुशिक्षित मध्यवित्त तबकों में तो अब नृत्यकला को को एक कष्टसाध्य कला के रूप में स्वीकृति मिल चुकी है। उनमें निपुणता प्राप्त करने वालों को प्रोत्साहन दिया जाता है और उससे खुद भी कुछ अनुभव और शिक्षा प्राप्त करने की प्रवृत्ति शहरी समुदायों में बढती जा रही है। हर वर्ष कई नये कलाकार प्रकाश में आते हैं जिनमें से कुछ बड़े होनहार सिद्ध होकर अंतर्राष्ट्रीय कीर्ति प्राप्त करते हैं तो तो कुछ आजीवन उसमें थोड़ी बहुत शौकिया दिलचस्पी बनाये रखते हैं।

इस स्थिति का सारा श्रेय उन नृत्यगुरुओं को है जिन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शास्त्रीय नृत्य की परंपरा को जीवित रखा।

8 लोकनाट्य और लोकमनोरंजन

तमिलनाडु के जनसाधारण में नाटक की अपनी अलग सुविकसित परंपरा है और मनोरंजन के और भी कई साधन और कलाएं प्रचिलित हैं। इनकी परंपरा को बड़े जतन से संजोया गया है और इसी कारण से उनमें से कइयों को पूर्णता प्राप्त हो सकी है।

नाटक

तमिलनाडु में लोक-रंगमंच की परंपरा बहुत पुरानी है। राजराजा प्रथम के काल में ही लोकनाट्य की रचनाएं मंच पर खेली जाने लगी थीं। इससे पहले के युग में नृत्यनाटिकाओं में अकसर श्रीकृष्ण या अन्य किसी पौराणिक महापुरुष के जीवन प्रसंगों का नृत्याभिनय किया जाता था। साथ-साथ कई प्रकार के नृत्यनाट्यों का मंदिरों में भी प्रचलन रहा।

अधिकांश मंदिरों के प्रांगण में ही रंगमंच हुआ करता था। छोटे-से-छोटे मंच की व्यवस्था अवश्य होती थी जिस पर लोकमनोरंजन के लिए विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते थे। अकसर ये कार्यक्रम मंदिरों के वार्षिकोत्सवों के दौरान में होते थे उनकी रचना खासतौर पर सामान्यजनों का मनोरंजन करने की दृष्टि से ही की जाती थी। उनकी कथावस्तु का चुनाव लोगों के मन में राजा के प्रति निष्ठा और स्वाभविक, नाट्यकला के प्रति प्रेम, और धर्म के प्रति श्रद्धा का विकास करने के दृष्टि से किया जाता था।

राजराजा प्रथम के शासनकाल में रचित 'राजराजा नाटकम्' उस प्रतापी नरेश की जीवनगाथा का निरूपण करने वाला नाटक है जिसमें उसकी सामरिक विजयों और उसके द्वारा किये गये तंजाउर के भव्य मंदिर के निर्माण का वर्णन किया गया है। उसमें अभिनय करनेवाले अभिनेताओं में से कई श्रेष्ठ कलाकारों

की उत्तम धान उपजाने वाली जलसिंचित भूमियों की जागीर और अनेक उपाधियां प्रदान की गयी थीं।

तेरुक्कुतु

तेरुक्कुतु कहलाने वाले आजकल के लोकनाट्य में नृत्य, संगीत और लंबे-लंबे भाषणों का प्राधान्य रहता है। वाद्यों में हारमोनियम, मृदंगम् और बांसुरी का समावेश होता है। बारीक और तीखी आवाज में गाये जानेवाले तेरुक्कुतु के गीत अक्सर लोकप्रिय फिल्मों में से ज्यों के त्यों लिए हुए होते है। श्रोताओ द्वारा कई बार आग्रह किये जाने पर पूरा गीत फिर से दोहराया जाता है।

तेरुक्कुतु नाटक रात को दस बजे शुरू होकर प्रायः भोर तक चलते रहते हैं। इसने एक कहावत को जन्म दिया है—'कुतड़ी किलक्के पारप्पन, कूलिकरन मेरके पारप्पन।' अर्थ यह कि मजदूरों को सूरज डूबे तक मेहनत करनी पड़ती है जब कि अभिनेताओं को सूरज निकलते तक पसीना बहाना पड़ता है।

तेरुक्कुत का प्रयोग या तो मंदिरों के वार्षिकोत्सवों में होता है या वर्षा का आह्वान करने के लिए। कभी-कभी गांववालों की दलबंदियों का अंत करने के लिए भी इसका आयोजन होता है। गांववालों में जब आपसी मनमुटाव बहुत बढ़ जाता है तो सद्भाव की पुनर्स्थापना के लिए वे तेरुक्कुतु की योजना बनाते हैं। तुरंत सब लोग आपसी मतभेदों को भूलकर उसकी तैयारी में लग जाते हैं। गांव की चौपाल या किसी मंदिर के आगे का प्रांगण खुली रंगभूमि का काम देता है। जहां स्थाई तौर पर छोटा-मोटा मंच बना लिया जाता है। प्रवेश शुल्क कुछ नहीं होता और खर्च को व्यवस्था ग्रामिणों से चंदा उगाह कर हो जाती है। आजकल कभी-कभी परंपरागत पद्धतियों को छोड़कर तेरुक्कुतु में पार्श्वदृश्य, परदे और भड़कीली पोशाकों का प्रयोग होने लगा है; परंतु इन परिवर्तनों ने इस लोककला की सादगी और संजीदगी को भ्रष्ट करने के सिवा और कोई उद्देश्य हासिल नहीं किया।

तेरुक्कुतु के प्रचलित विषय हैं। वल्लि-तिरुमनम्, पवलक्कोडि, अर्जुन की तपस्या, नल्लतंगल, मदुरैविरन्, पद्मासुरन्, कथावरायण, रामायण और हरिश्चंद्र मयनाकंदम् आदि कहानियां। नाट्य-महोत्सव की अवधि एक ही रोज की हो,

तो हरिश्चंद्र नाटक नहीं खेला जाता क्योंकि महोत्सव का समापन कारुण्यपूर्ण त्रासदी से करना अच्छा नही माना जाता।

मावली नाटकम्

यह तंजाउर जिले के वेदारंयम् मंदिर से संबद्ध नृत्य-नाट्य है। सन 1938 के बाद इसकी परंपरा समाप्त प्रायः हो गयी है। यह नृत्य एक विराटकाय चूहे की कहानी के गिर्द रचा गया है जिसने देवालय में गर्भगृह में निरंतर प्रज्ज्वलित रहने वाली पवित्र अग्नि को बुझने से बचाकर देवता का आशीर्वाद प्राप्त किया था।

नोंदी नाटकम्

यह एक लंगड़े आदमी की कहानी पर आधारित लोक नाट्य है। एक बार एक आदमी ने किसी गणिका के चक्कर में पड़कर अपनी धन संपत्ति ही नहीं बल्कि स्वास्थ्य भी गंवा दिया। फिर किसी चोरी के मामले में पकड़ा जाने के कारण उस युग की प्रथा के अनुसार उसके हाथ-पांव काट दिये गये। वह लंगड़ा लूला हो कर इधर-उधर की ठोकरें खाता रहा। बाद में वह भगवान सुब्रह्मण्यम का भक्त हो गया और हाथ पांव से वंचित होने के बावजूद उसने लंबी यात्राएं करके और मार्ग में आनेवाले संकटों का मुकाबला करके सुब्रह्मण्यम के सारे पवित्र धामों की यात्रा की। उसकी भक्ति की उत्कटता और भगवान की कृपा से उसे हाथ-पांव की पुनर्प्राप्ति हुई। चिंडु छंद रचित इस व्यंग्यात्मक नाटक का अंत लंगड़े भक्त को धनसंपत्ति और शारीरिक स्वास्थ्य की पुनर्प्राप्ति होने में होता है।

पागल वेशम्

इसका अर्थ होता है 'दिन की पोशाक'। यह नृत्याभिनय में पारंगत और वेष परिवर्तन की कला में निपुण किसी अनुभवी और प्रवीण अभिनेता द्वारा किया जाता है। आखिर तक वह अपनी पहचान किसी को नहीं होने देता।

दिन-दहाड़े वह तरह-तरह के वेश बनाकर घूमता रहता है। कहीं भिखारी, कही शिक्षक, तो कहीं ज्योतिषी के रूप में प्रकट होता है। उसकी पत्नी उसके साथ रहती है और दोनों आपस में झगड़ने का स्वांग करते रहते हैं। राह चलते

लोग उन्हें समझाने का प्रयत्न करते हैं पर उनका झगड़ा कभी समाप्त नहीं होता फिर पति-पत्नी को त्याग देता है और उसके भरण-पोषण का खर्च देने से भी इनकार करता है। देखने वाले दया से अभिभूत हो जाते हैं। तुरंत झोली घुमायी जाती है और निर्दयी पति द्वारा परित्यक्त उस असहाय अबला की सहायता के लिए चंदा इकट्ठा किया जाता है यहां तक पहुंचने के बाद अभिनेता अपना असली परिचय प्रकट कर देता है और लोग आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

इरुलारों के नाटक

इरुलार नीलगिरि पहाड़ियों की एक अशिक्षित और और अर्धसभ्य कृषक जाति है। मंदिरों के उत्सवों के दरमियान वे महाकाव्यों की कहानियों पर आधारित नाटक प्रस्तुत करते हैं। किसी मकान का बरामदा मंच का काम दे दे जाता है। नाटक में कोई परदा या पार्श्वदृश्य नहीं होता और प्रकाश-व्यवस्था के लिए दो-एक लालटैनें काफी होती हैं। अभिनेता अपनी-अपनी भूमिका की तालीम किसी नाट्यशिक्षक से प्राप्त करते हैं और दिनों तक अभ्यास और रिहर्सल करते रहते हैं। महाभारत की सर्वाधिक लोकप्रिय कथा है। अर्जुन की तपस्या जिसे भंग करने का किसी सुंदरी ने प्रयत्न किया था। उस प्रवंचक मोहिनी के सौंदर्य का विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन बड़ी कामुक भाषा में किया जाता है। इरुलार जनसमूह, विशेष तौर पर स्त्रियां इसे बहुत अधिक पसंद करती हैं।

मोडी

यह एक प्रकार का प्रहसन है। एक नर्तक बालू के ढेर में एक अंडा छिपा देता है और उसके गिर्द सात लकीरें खींच देता है। अंडे को ढूंढने का प्रयत्न करने वाले दूसरे नर्तक को मोडी कहा जाता है। पहला नर्तक उसे कोड़े मार-मार कर उसके प्रयत्न में बाधा डालता है। विदूषक दोनों के काम में दखल देता रहता है और गीत गा कर हास्यपूर्ण वातावरण उत्पन्न करता है।

लोकमनोरंजन के अन्य साधन

गोदना

गोदने को पचै कुतुतल कहा जाता है। गोदने का काम पेशेवर जिप्सी करते हैं।

बांहें, हथेलियां, ललाट आदि अंगों पर देवी-देवता, सांप-बिच्छू और अन्य अनेक प्रकार की आकृतियां गोदी जाती हैं। गुदवाने वाले व्यक्ति द्वारा अपना या अपने प्रेमी-प्रेमिका का नाम लिखवाना भी बहुत लोकप्रिय है।

गोदने का रसायन तैयार करना उलझन-भरा काम है। पहले हल्दी के साथ अकथिक कीरई (शीशम की पत्तियों) को सिल पर पीसकर लेई सी बनाई जाती है। उसे पतले कपड़े पर फैलाकर और कपड़े को लपेट कर बाती बना ली जाती है। बाती को जला कर उसका काजल पार लिया जाता है। इस काजल को सादे काजल और तंबाकू की राख के साथ सेंकोट्टाइप्पल (बबूल की पत्तियों) के रस में घोल कर काले रंग का द्रव तैयार कर लिया जाता है। गोदने की आकृति की काले रंग की बिंदियां इस रंजक से बनायी जाती हैं जबकि नीली बिंदियों के लिए नील और लाल के लिए सिंदूर का प्रयोग होता है।

गोदने के यंत्र के रूप में धागे से एक साथ बंधीं हुई सिलाई की तीन सुइयों का प्रयोग किया जाता है।

गोदने की प्रक्रिया में पहले पसंद की हुई आकृति को उपरोक्त विशिष्ट प्रकार से तैयार किये हुए घोल में एक मोटी सी तूलिका डुबो कर चमड़ी पर अंकित कर लिया जाता है। फिर उसे सुइयों से गोद कर चमड़ी में प्रविष्ट कर दिया जाता है। फिर उस हिस्से को ठंडे पानी से धो कर साफ कर दिया जाता है। स्थायी परिणाम के लिए ताजा गुदे हुए छिद्रों पर रंजक का फाया एक बार फिर फेर दिया जाता है। दर्द को काबू में रखने के लिए दो बूंद गोले का तेल चुपड़ दिया जाता है। अंत में गोदने पर हल्दी मल दी जाती है। इससे गोदने का रंग चमकीला हो जाता है और सूजन भी नहीं आती।

कोलम्

रांगोली की कला को तमिलनाडु में कोलम् कहा जाता है हर लड़की इस कला में प्रवीण होना चाहती है। रांगोली में या तो भूमिति की विभिन्न आकृतियां होती हैं या फूल पत्तों की नक्काशी। यह पेचीदा आकृतियां तर्जनी और अंगूठे की चुटकी में सेलखड़ी का बुरादा लेकर बनायी जाती हैं।

रांगोली का चित्रण रोज सुबह मकान के प्रवेश द्वार के सामने की जमीन पर किया जाता है। उत्सवों के दिन तो पूरी गली रांगोली की आकृतियों से भरी

रहती है। रांगोली का चित्रण भोजन के लिए बैठने की और थाल परोसने की चौकियों के इर्द गिर्द और विवाह के समय हवन-पूजा की वेदी पर भी किया जाता है।

सड़कों के कलाकार

भिखारियों और अपाहिजों द्वारा कभी-कभी सड़क पर खड़िया या कोयले से देवी-देवताओं के कलापूर्ण चित्र बनाये जाते हैं। चित्रांकित व्यक्तियों के अंगो-पांगों का अनुपात, रंगों की संगति एवं ब्योरे की बारीकी खासी निपुणता का परिचय देती हैं। ये चित्र बरबस आने-जाने वालों का ध्यान आकर्षित करते है और वे कुछ क्षणों के रुकने को मजबूर हो जाते हैं। इस बीच वे काम में लगे हुए कलाकार का निरीक्षण करते है और दो-चार पैसों से उसकी आर्थिक सहायता भी करते हैं।

लोकप्रिय खेल

गांवों में अत्यंत प्राचीन काल से कुछ खेल खेले जाते रहे हैं। यहां उनमें से कुछ का संक्षिप्त वर्णन किया जाता है—

सिलंबम (पटेबाजी) तमिलनाडु के लोगों को यह खेल प्राचीन युगों के शौर्य और दाक्षिण्य की झलक दिखा जाता है। यह इस प्रदेश में प्रचलित प्राचीन लड़ाकू सरगर्मियों को व्यक्त करने वाला खेल है। शरीर के लिए पर्याप्त व्यायाम उपलब्ध कर देने के उपरांत यह खेल शत्रु के आक्रमण से अपनी रक्षा करने का मार्ग भी सिखाता है। इसमें भाग लेने वाले हर खिलाड़ी के हाथ में एक लंबी लाठी या कोई तीन मीटर लंबाई का मजबूत बांस होता है। उसे विभिन्न प्रकार से घुमा-घुमा कर वह दूसरों पर वार करता है और प्रतिपक्षी उसके हर वार को नाकाम करने की कोशिश करता है। लेकिन सिलंबम की कला केवल इस प्रकार लाठी घुमाने भर की पटुता नहीं है। उसमें उच्चकोटि के पदन्यास के उपरांत लाठी का संतुलन संभालते हुए उसे भांजने के झोंका, हिलकोरा, तराश, आघात, प्रहार, चोट, पैंतरा इत्यादि दांवों की गहन जानकारी आवश्यक होती है। तमाशे के रूप में उसकी रोमांचकता, स्पर्धा के स्तर पर उसकी उत्तेजकता और आत्मरक्षा के

जुझारू साधन के रूप में उसकी अत्यावश्यकता को इस खेल के तीन प्रधान गुण माना जा सकता है।

चाडुकुडु (कबड्डी) : यह खेल दो दलों के वीच खेला जाता है। एक दल का एक खिलाड़ी किसी कहावत के कुछ शब्दों को लगातार एक सांस में दोहराता हुआ प्रतिपक्ष के घेरे में जाता है। यदि वह उस घेरे में किसी को छू कर विपक्षियों की पकडाई में आये बिना और सांस के सातत्य को तोड़े बिना अपने दायरे में लौट आता है, तो छुआ हुआ खिलाड़ी आउट हो जाता है। इसके खिलाफ विपक्ष के खिलाड़ी उसे पकड़ लें और वह सांस तोड़े बिना अपने दायरे में लौट आने में असमर्थ रहे, तो वह खुद आउट हो जाता है। इस प्रकार बारी-बारी से दोनों पक्षों के खिलाड़ी आक्रमण करते हैं और जिस पक्ष के सारे खिलाड़ी पहले आउट हो जायं, वह हार जाता है। यह खेल वास्तव में पदचांपल्य के साथ-साथ लंबे समय तक सांस को रोके रखने की स्पर्धा सिद्ध होता है।

पच्चइ कुतिरै (मेंढक-छलांग) : इस खेल में एक लड़का झुक कर हाथों से पांवों को छूता हुआ खड़ा रहता है। यह हुआ कुतिरै (घोड़ा)। अन्य लड़के भागते हुए आते हैं और उसकी पीठ पर हथेलियां टिका कर और पावों को चौड़ा कर उसके ऊपर से कूद जाते हैं। झुकने वाला लड़का क्रमश: पीठ की ऊंचाई को बढ़ाता जाता है जिससे कूदना अधिकाधिक मुश्किल होता जाता है। यदि कोई लड़का कुतिरै के ऊपर से कदते समय अपने पांवों से या हाथों को छोड़ कर शरीर के किसी भी अंग से कुतिरै को स्पर्श करता है, तो वह आउट हो जाता है और फिर उसे अन्य सब लड़कों के लिए घोड़ा बनना पड़ता है।

इस खेल का एक और प्रकार भी प्रचलित है। इसमें एक लड़का दूसरे की पीठ पर सवारी करता है। 'घोड़ा' चलता रहता है और 'सवार' को अपने हाथ में की गेंद को किसी विशिष्ट घेरे में फेंकना होता है। यदि वह निशाना चूक जाय, तो उसे नीचे उतर कर घोड़ा बनना पड़ता है।

कोल्लितट्ठु (गिल्लीडंडा) : यह लकड़ी के दो टुकड़ों द्वारा खेला जाने वाला एक प्रकार का क्रिकेटनुमा खेल है। इनमें से एक कोई डेढ़ हाथ लंबा गोल डंडा होता है

और दूसरा कोई चार इंच का छोटा टुकड़ा। इस टुकड़े के दोनों सिरे गावदुम आकृति में तराशे हुए होते हैं। गिल्ली को जमीन पर रख कर उसे डंडे की चोट से उछाला जाता है। फिर उछली हुई गिल्ली को डंडे से पीट कर दूर तक में फेंका जाता है। विपक्ष के लोग पिटी हुई गिल्ली को लपकने की कोशिश करते हैं। गिल्ली लपकी जाने पर खिलाड़ी आउट हो जाता है। यह खेल कुछ हद तक खतरनाक है क्योंकि पिटी हुई गिल्ली के आंख में लगने की संभावना रहती है।

नीला पुची (चांदनी का खेल) : दो दलों के खिलाड़ी भाग-भाग कर एक दूसरे को पकड़ने की कोशिश करते हैं। एक दल के खिलाड़ी केवल चांदनी में प्रवेश करने पर ही पकड़े जा सकते हैं जबकि दूसरे दल के केवल अंधेरे में।

नोंदी (लंगड़ी) : यह छोटे बच्चों का खेल है। जमीन पर एक दायरा खींच दिया जाता है। खिलाड़ी पांच-पांच या छह-छह के दो दलों में बंट जाते हैं। पहले दल के खिलाड़ी दायरे के भीतर रहते हैं। दूसरे दल में से एक खिलाड़ी एक पांव पर कूदता हुआ उन्हें छूने की कोशिश करता है। उसके द्वारा छुए खिलाड़ी आउट हो जाते हैं। इसके विरुद्ध, वही यदि थक कर दूसरा पांव जमीन पर टेक दे, तो वह खुद आउट हो जाता है। कभी-कभी विपक्षी खिलाड़ी लंगड़ी करने वाले को थकाने के लिए उसके पांव पर मिट्टी फेंक-फेंक कर मारते हैं।

अन्य खेल : इसके अलावा अन्य भी कई प्रकार के खेल हैं जो दो फसलों के बीच के समय में ग्रामीणों के लिए आमोद-प्रमोद का साधन जुटाते हैं। इनमें तायम (शतरंज जैसा एक खेल जो शतरंज की काली-सफेद बिसात पर गोटियों से खेला जाता है), पल्लंगुझी (इमली के चियें या अन्य किसी प्रकार के बीजों से लकड़ी की चौदह खानों वाली बिसात पर खेला जाने वाला खेल), आंख मिचौनी, तिरी बोम्मक्कै—औतया रेट्टय्या (सम या विषम गिनती पर उछाली जाने वाली गेंद या फल को लपकने का खेल), किट्टी (इसे लकड़ी के टुकड़ों के दो ढेरों की सहायता से खेला जाता है), पतगबाजी (केवल जाड़े के सूखे मौसम में), बारिश के दिनों में गलियों बहने वाली नालियों में कागज की नावें बना कर छोड़ना, सीनडी (एक प्रकार की कुश्ती), वरमानअम् (नाड़ियों को वश में रखने की स्पर्धा) आदि मुख्य हैं।

खेलते समय गाये जाने वाले लोकगीत

कुछ खेलों के दरमियान लोकगीत भी गाये जाते हैं। इसका सर्वाधिक लोकप्रिय प्रकार निम्नोक्त खेल है : इसमें एक खिलाड़ी 'कोंबरै, कोंबरै' (सींग होते हैं, सींग होते हैं) कहता जाता है और बाकी बच्चे उस विधान को दोहराते जाते हैं। 'माडुम कोंबरै', 'आडुम कोंबरै' इत्यादि कह कर वह गाय, भैंस, बैल आदि सींग वाले पशुओं की सूची बनाता जाता है और बच्चे दोहराते जाते हैं। परंतु बीच-बीच में वह 'हाथी को सींग होते हैं,' 'घोड़े को सींग होते हैं', या 'आदमी को सींग होते हैं' जैसे विधान भी करता रहता है। जो बच्चे बिना सोचे-समझे इन गलत विधानों को भी दोहरा देते हैं, वे आउट हो जाते हैं।

लोक कलाएं

लोक कलाओं और दस्तकारी का सबसे-सबसे सुंदर उदाहरण कांचीपुरम् के रेशमी साड़ियों के गृहोद्योग में मिलता है यह काम मुख्यतः सौराष्ट और मुदलियर जाति के लोगों द्वारा किया जाता है।

कच्चे रेशम को कातने से लगा कर तैयार माल को अंतिम रूप देने तक की पूरी प्रक्रिया हाथों से की जाती है। कच्चे रेशम की पूनियों को बांस की तकली पर बटना, बटे हुए रेशम की लच्छियां बनाना, पीलापन और गोंद के अंश को दूर करने के लिए लच्छियों को धोना, फिर उन्हें मरोड़ कर ऐंठना (यह क्रिया 'अलुप्पि डुतल' कहलाती है), और अंत में बांस के टुकड़ों के हाथ करघे पर उसे बुनना—आदि सारी क्रियाएं किसी भी प्रकार के यंत्रों की सहायता के बिना केवल हाथों से की जाती हैं। इसे हस्तोद्योग का अधिकतम विकसित रूप माना जा सकता है जिसमें परिवार के स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी हाथ बंटाते हैं। कच्चे माल के रूप में विशुद्ध शहतूती रेशम और सुनहरी तार की जरी का प्रयोग होता है। बुनाई की पद्धतियां परंपरागत हैं पर रंगसंगति और डिजाइनों में निरंतर परिवर्तन होता रहता है।

इस प्रमुख कुटीरोद्योग के अलावा दस्तकारी के और भी कई प्रकार प्रचलित हैं। तमिलनाडु के साधारण जन को अपनी क्षमता और निपुणता पर न्यायोचित रूप से गर्व है।

दस्तकारी के उद्योगों में खिलौने बनाना, कांसे की जगप्रसिद्ध मूर्तियां बनाना, पीतल या तांबे की चद्दर पर चांदी का मुलम्मा चढ़ाना, उन पत्तरों पर सुंदर मूर्तियों या फूलपत्तियों की नक्काशी करना (जैसे कि तंजावर के मंदिरों में हुआ है), धातु के चित्र विचित्र दीपक और दीपस्तंभ बनाना, मंदिरों के लिए ध्वजा-पताकाएं बनाना, कलापूर्ण चटाइयां और मन को लुभाने वाले गलीचे बुनना इत्यादि मुख्य हैं। चेट्टीनाडु में प्रचलित दीवारों पर पक्का पलस्तर करने की प्रणाली राजगिरि की कला का अद्वितीय उदाहरण है। उसमें कभी दरारें नहीं पड़तीं, दीवारें शीशे की तरह चमकती रहती हैं, और उन्हें रंगने या चूने से पोतने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

कुंभकारी

कुम्हारगिरी तमिलनाडु की अत्यंत प्राचीन और लोकजीवन में प्रतिष्ठापित कला रही है। मनमदुरै के काली और लाल मिट्टी के घड़े एवं कारिगिरि के पालिश किये हुए मिट्टी के बर्तन अपनी सुंदरता, आकृति एवं रंग के लिए दूर-दूर तक मशहूर हैं। उनकी सुघड़ता की कई अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में भी बहुत सराहना हुई है।

कुम्हार की कुशल उंगलियां मिट्टी के पिंड को चाक पर चढ़ाकर उसमें से अनगिनत सुंदर वस्तुएं बना सकती हैं। खिलौने आदि कई वस्तुएं मिट्टी को सांचे में ढालकर बनायी जाती हैं। कुछ को अवें में पकाया जाता है जबकि कुछ को कच्चा ही रंग दिया जाता है। हर गांव के सिवान में दिखाई देने वाली गांव के रक्षक देवता अय्यनार की विशाल, रंगी हुई मूर्तियां, जो देखते ही विदेशियों का मन मोह लेती हैं, अकसर इसी प्रक्रिया से बनी हुई होती हैं। विदेशियों की मांग पूरी करने के लिए अय्यनार की पकायी हुई मिट्टी की छोटे आकार की मूर्तियां बनायी जाती हैं। फिर भी मिट्टी के काम में एक असुविधा तो है ही। ये मूर्तियां टिकाऊ नहीं होतीं। वे इतनी नाजुक होती हैं कि अत्यंत सावधानी से पैक करने पर भी उन्हें लंबी दूरी तक भेजना संभव नहीं होता। अत्यंत सावधानी से किया हुआ मजबूत पैकिंग ही कारगर हो सकता है। लेकिन इस हालत में उसका खर्च मूर्ति की कीमत से भी बढ़ जाने की संभावना रहती है।

कागज की लुगदी का काम

मिट्टी के काम की भंगुरता के कारण कलाकारों का ध्यान अब कागज की लुगदी की ओर अधिक जाने लगा है। जब भी कोई बड़े आकार की वस्तु बनानी होती है, लुगदी का ही प्रयोग होता है। सांचे में ढालने की प्रक्रिया दोनों में एक सी होती है। लुगदी के काम में वस्तुओं में सफाई अधिक आती है, नाकनक्श तीखे बन सकते हैं और वस्तुओं को मनचाहे वास्तविक रंगों से रंगा जा सकता है। उन्हें ग्रेनाइट पत्थर या धातु की आभा भी दी जा सकती है। वजन में हलकी होने से पैकिंग और परिवहन की कोई समस्या खड़ी नहीं होती। इन्हीं सब कारणों से कागज की लुगदी ने विविध प्रकार की वस्तुओं के उपादान का स्थान ले लिया है। लुगदी का बनाया हुआ अलसेशियन कुत्ता इतना हूबहू और सजीव दिखाई देता है कि दूकानों की बाहरी अलमारियों में रखा जाने पर दूसरे कुत्ते उसे देखकर भौंकने लगते हैं। खरीदार को आकर्षित करने वाले तत्त्व हैं उसका हूबहू मिलता हुआ रंग, उसकी लपलपाती हुई लाल जीभ, झपकती हुई आंखें और वास्तविक भौहें। लुगदी की अन्य सुंदर मूर्तियां हैं नृत्यांगना, पार्थसारथी कृष्ण (गीतोपदेशम्), मीनाक्षी कल्याणम् (शिव-पार्वती विवाह) इत्यादि। लालित्य और खूबसूरती में इनकी जोड़ मिलना मुश्किल है।

इससे भी ज्यादा तीखे तराशे हुए नाकनक्श अभीष्ट हों, तो प्लास्टर ऑफ पेरिस उत्तम रहता है। इसकी बनी हुई शुभ्रधवल मीरा तो प्लास्टर में ढले हुए स्वप्न सी दिखाई देती है। उतनी ही लोकप्रिय प्रतिमाएं हैं नटराज और शिव-पार्वती की। प्लास्टर ऑफ पेरिस के काम में जो मार्दव, स्निग्धता और सफाई संभव है उसकी मिट्टी या लुगदी के काम में कल्पना भी नहीं की जा सकती।

लकड़ी के खिलौने

लकड़ी के खिलौनों के विभिन्न प्रकारों की आजकल जो दूकानों में बाढ़-सी आ गयी है उसकी कुछ साल पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इनमें के अधिकांश छोटी-मोटी खरादों पर चढ़ा कर बनाये जाते हैं। इस काम के लिए मुलायम और लोचदार लकड़ी का प्रयोग होता है। भीतर स्प्रिंग या छोटी-मोटी मशीन लगा देने की नयी रीति के कारण खिलौने वास्तविक और सजीव मालूम

देते हैं। आजकल खिलौनों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के कलापूर्ण शिक्षोपयोगी उपकरणों का भी समावेश होता है जो बच्चों का गिनती, आकृति, रंग, रेखाचित्र और ज्यामितिक आयामों के साथ प्राथमिक परिचय करा देते हैं। ये प्रायः लकड़ी के ही बने हुए होते हैं।

लेकिन जहां तक सुंदरता का सवाल है, कपड़े से बनायी हुई गुड़ियों का मुकाबला कोई खिलौना नहीं कर सकता। ये गुड़ियाएं स्त्री-पुरुष के स्वभाव वैशिष्ट्य का उत्तम निरूपण करती हैं। इनका भीतरी ढांचा कागज या लुगदी का बना होता है। इनका सबसे महत्वपूर्ण अंग होता है चेहरा, जिसे बनाना कुशल कारीगर का काम है। इसमें अत्यंत वैशिष्ट्यपूर्ण कौशल की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि पूरे खिलौने का जीवंतपन चेहरे के भावों पर निर्भर करता है। चेहरों को पहले सांचे में ढ़ाल लिया जाता है और ब्योरे का चित्रण तूलिका की सहायता से हाथों द्वारा किया जाता है ताकि सजीवता का आभास उत्पन्न हो सके। गुड़ियों को विभिन्न प्रदेशों की लाक्षणिक पोशाकें पहनायी जाती हैं। उनकी केशभूषा तो इतने विभिन्न प्रकारों से की जाती है कि तैयार गुड़ियों की दो-तीन कतारें सामने रख ली जायं, तो देश में उस समय प्रचलित केशभूषा के सारे नमूने देखने को मिल जायं इसकी संभावना रहती है। दरअसल गुड़ियों का वास्तविक आकर्षण चेहरे के भाव, केशभूषा, वेशभूषा और गतिमुद्रा और चालढाल पर निर्भर करता है। किसी भी देश के निवासियों की लाक्षणिक प्रतिकृतियां एकत्रित करनी हों, तो कपड़े की गुड़ियों से बढ़कर कोई माध्यम नहीं। उन्हें कांच के छोटे-छोटे बक्सों में जड़ कर रखा जाय, तो उनकी मोहकता भी बढ़ जाती है और उनके धूल आदि से गंदा होने की संभावना भी नहीं रहती

काष्ठ शिल्प

लकड़ी को कोरने की कला तमिलनाडु का एक अन्य सुविकसित हस्तोद्योग है। मंदिरों के सुविशाल दरवाजों पर अंकित बारीक और जटिल नक्काशियां इस फन के जानकार कारीगरों की योग्यता का प्रमाण पेश करती हैं। ये नक्काशियां अत्यंत बारीक और जटिल आकृतियों से युक्त होती हैं। परवर्ती युगों में इस कला के जानकारों को चेट्टीनाडु में बड़ा प्रोत्साहन मिला था क्योंकि वहां के धनाढ्य चेट्टियों की पूरी जाति में अपने निवासस्थानों को इस कला द्वारा

सुशोभित करने का रिवाज-सा चल पड़ा था।

कलापूर्ण ढंग से तराशे हुए और बारीक नक्काशी से युक्त लकड़ी के दरवाजे और छतों के स्तंभ पूरे तमिलनाडु में मंदिरों के उपरांत धनाढ्य लोगों के घरों में भी देखने को मिल जाते हैं। अनलंकृत सादगीपूर्ण ढंग से बनी शीशम की लकड़ी की छोटी-छोटी तिपाइयां भी तमिलनाडु में बहुत लोकप्रिय हैं और घर-घर में पायी जाती हैं। उनमें एकमात्र सजावट यह होती है कि उनके पाये हाथी के गंडस्थल से आरंभ होकर नीचे सूंड की आकृति के होते हैं और हाथियों के मुंह में से दो शुभ्र हाथीदांत निकले रहते हैं। मंदिरों के रथ तो काष्ठ शिल्प के उच्चतम उदाहरण होते हैं। वे तो अपनी कलात्मकता और मोहकता के लिए देश भर में प्रसिद्ध रहे हैं।

तमिलनाडु की एक और जगप्रसिद्ध दस्तकारी है पट्टमडै (चटाइयां) बुनने की कला। इनका ताना 80 से 140 तक की सूक्ष्मता के रेशमी या सूती धागे का होता है। और बाना सूखी हुई कोरइ घास का। उत्तम कोटि की चटाइयों की बुनाई तो इतनी बारीक और मुलायम होती है कि उन्हें तहा कर रूमाल की तरह जेब में या हाथ में रखा जा सकता है।

धातु का काम

यह एक और क्षेत्र है जिसमें तमिलनाडु के कारीगरों को कमाल हासिल है। कुतुविल्लकु के सुप्रसिद्ध धातुकाम से लगा कर नटराज और गणेश की मूर्तियों तक यह कला एक अद्वितीय सौंदर्यमयता से ओतप्रोत रही है। मंदिरों की संस्कृति की अतिप्राचीन परंपरा के साथ संबद्ध दीपकों के ही सैंकड़ों नमूने देखे जा सकते हैं। कांस्य मूर्तियों के लिए तो तमिलनाडु चोल युग से लगा कर आज तक संसार भर में प्रसिद्ध रहा है।

तराशने की कला के सुंदरतम अंकन के उदाहरण धातुओं के अलावा पत्थर की प्रतिमाओं और स्तंभों में भी देखे जा सकते हैं। संगतराशी के कलाकार आसानी से और प्रचुर संख्या में उपलब्ध होने के फलस्वरूप ही आज तमिलनाडु की पूरी क्षितिजरेखा मंदिरों से गगनचुंबी गोपुरों से मंडित दिखाई देती है। मंदिरों में पनपने वाली कला और शिल्प की परंपरा ने ही हजारों प्रतिभासंपन्न कलाकारों की क्षमता और संस्कृति को आजतक जीवित रखा है और देश की

मिट्टी से उपजी हुई इस सृजनात्मक प्रतिभा की विरासत को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा है। आज तमिलनाडु के मंदिरों में संगतराशी और प्रस्तरशिल्प कला के जितने प्रकार बिखरे पड़े है उनका समुचित अध्ययन करने के लिए पर्वतोपम धैर्य के उपरांत शिल्पशास्त्रों का गहन ज्ञान, पत्थर की विभिन्न किस्मों की गहरी जानकारी और स्थापत्य एवं मूर्तिकला की विभिन्न शैलियों के साथ प्रगाढ परिचय होना नितांत आवश्यक है।

अन्य लोक कलाएं

हस्तकारी के और भी कई एक से एक सुंदर प्रकार प्रचलित हैं जिनमें केले के पेड़ के गाभे पर की जाने वाली नक्काशी, शंखसीपियों एवं सींग का काम और फूलमालाएं एवं अनाज के दानों या चंदन की छीलन-कतरन की कालाएं बनाना मुख्य हैं। मंदिरों के उत्सवों के समय बनाये जाने वाले पंडालों और उनकी छाजनों की कलापूर्ण सजावट में तंजाउर के कारीगरों ने बहुत नाम कमाया है।

इन हस्तोद्योगों पर आधारित रह कर जीवन-निर्वाह करने वाले कलाकारों की संख्या बहुत बड़ी है। अब वे अपने उत्पादन की प्रणालियों में आधुनिक प्रक्रियाओं का समावेश करने लगे हैं और कलात्मकता के साथ उपयोगिता को जोड़ने का प्रयत्न भी हो रहा है। जन-साधारण द्वारा मनाये जाने वाले विभिन्न उत्सव ही इन कलाओं को जीवित रख रहे हैं। यद्यपि अब उनके संरक्षण में सरकार भी गहरी दिलचस्पी लेने लगी है।

संक्षेप में, तमिलनाडु में लोककलाओं की परंपरा बहुत पुरानी और अविच्छिन्न रही है। आज हम सब का यह कर्तव्य है कि उसका संवर्धन करने में सहयोग दें।

परिशिष्ट

मौखिक साहित्य के कुछ उदाहरण

गीत

हेम बरुआ कृत 'भारत के लोकगीत' (**अंगरेजी**) **से** : (इंडियन काउंसिल ऑफ कल्चरल रिलेशंस द्वारा 1952 में प्रकाशित)

(क) यह तमिल का पक्षीगीत है। यह 'अक्कटि पक्षी का गीत' के नाम से प्रसिद्ध है और अकसर गडरियों द्वारा गाया जाता है :

अक्कटि पंछी, ओ, अक्कटि पंछी !
कहां रखते हो अंडे अपने ?
गहरे वन में चट्टानों पर
छोटे छोटे कंकड़ बिछाकर
हम अंडे देते हैं।
मैंने अंडे सेये, सिर्फ तीन बच्चे पाये
बड़के के लिए दाना जुटाने को
तीन 'कडम' का अंतर काटना पड़ा
मंझले के लिए दाना चुगने में
चार 'कडम' का फासला तय करना पड़ा
नन्हे के लिए चुग्गा ढूंढते हुए
लंबी दूरियां तय करनी पड़ीं।
धोबी का निर्दय लड़का
अपना जाल फैलाये
बैठा था शिकार की तलाश में

जाल में मेरे पांव फंस गये
पंख फड़फड़ा कर मैं बिलबिलाया
आंसुओं की गंगा-जमना
चार 'कडम' की दूरी तक बही
पर चिड़ीमार को दया नहीं आयी।

(ख) निम्नोक्त तमिल गीत एक भावमय और जोशीला गेयपद है। इसका अनुवाद दिया जाता है :

वर्षा जोर से होगी, माता,
सारा देश हराभरा हो जायेगा
ऐसी वर्षा होगी।
सुई की तरह चमकता हुआ
गांव हरा हो जायेगा
ऐसी वर्षा होगी।
कौड़ी की तरह दमकता हुआ
जंगल हरा हो जायेगा
ऐसी वर्षा होगी।
धरती जलमय हो जायेगी
गांव पानी से छलक उठेगा
ऐसी वर्षा होगी।
आवर्तन पर आवर्तन हो कर
जग भर वर्षा होगी, माता,
नीले नभ से धन बरसेगा
ऐसी वर्षा होगी।
वर्षा जोर से होगी, माता !

कहानियां

मदुरै की देवी मीनाक्षी को पांड्य राज्यकुल की राजकुमारी माना गया है।

इस संबंधी आख्यायिका इस प्रकार है :

मीनाक्षी का जन्म पांड्य शासक मलयध्वजन और उसकी रानी कांचन मालै की पुत्री के रूप में हुआ था। वे संतान प्राप्ति के लिए निन्न्यानबे यज्ञ कर चुके थे। सौवें की तैयारी हो रही थी कि इंद्र ने इंद्रासन छिन जाने के भय से उसे स्थगित कर देने की प्रार्थना की। राजा ने देवराज की बात मान ली और इसके बदले में अपनी संतान-कामना पूरी करवा ली। देवताओं के वरदान से देवी मीनाक्षी ने उसके यहां पुत्री के रूप में जन्म लिया। प्रस्तुत ग्रंथ में और भी अनेक कथाओं का कई स्थानों पर उल्लेख हो चुका है।

पहेलिया

1. एल्लइ इल्लत वयलिले
   एन्न मुडियत अडुकल।
   (सीमाहीन खेत में अनगिनत भेड़ें=आकाश के तारे।)
2. कनक्किल्लत पिल्लइ कलैक
   काझुतैक कुरिच चुमक्कुम तइ
   अंतत तइ एंतत तइ ?
   (अपने अनगिनत बच्चों को गले के हार की तरह पहनने वाली माता कौन है ? उत्तर : नारियल का वृक्ष।)
3. चिन्नक कुकैकुल्ले शिवप्पुत तुनि-अतु
   एन्नरामुम इरम एलितिल उलरातु।
   (छोटी सी डिबिया में लाल रंग की सदा गीली रहने वाली कपड़े की धज्जी=जीभ।)
4. इंकु उंडु, अंकु इल्लै
   अंकु उंडु, इंकु इल्लै
   इंकुम् उंडु, अंकुम् उंडु
   अंकुम् इल्लै, इंकुम् इल्लै

   यहां हैं, पर वहां नहीं
   वहां है, पर यहां नहीं

यहां भी है, वहां भी है
यहां भी नहीं, वहां भी नहीं।

इस प्रहेलिका का अर्थ इस प्रकार है :

स्वार्थी और अधर्मी लोगों को इस संसार में सुखशांति मिल सकती है; पर उस लोक में नहीं। दया-धर्म से प्रेरित लोगों को इस संसार में कष्ट सहन करने पड़ते हैं, पर परलोक में उन्हें शांति मिलती है। उदारचेता, लोकहितैषी और संपत्तिवान पुरुष दोनों लोकों में निश्चित रहते हैं और दुष्ट एवं पापी लोगों को यहां या वहां, कहीं भी मनःशांति नहीं मिलती।

5. एन तायो कडल, तन्तैयो सुरियन
एन्नै विरूंबी एरकत वीडु इल्लै
नान यार?
(मेरे मातापिता हैं समुद्र और सूर्य। मैं कौन हूं? उत्तर : नमक।)

6. उलक्कु फिलम ओरेत उप्पटि?
(एक कमरी पूरे जग को ढांके=आकाश।)

7. डाक्टर वंतार उसि पोट्टर पानम
वंकमल पोनार, अतु एन्ने?
(डाक्टर साहब आये और सुई लगायी; पर फीस कुछ भी नहीं मांगी=बिच्छू।)

8. वेल्लैक करनुक्कुक करप्पु तोप्पि।
(गोरे साहब की काली टोपी=दियासलाई।)

9. अरुवम इल्लत मनितन उलकम
एल्लम सुत्तीकिरन आवन यार?
(बिना चेहरे का प्राणी जगभर चक्कर काटे। कौन है वह? उत्तर : हवा।)

10. एलनै पेर एरिनालुम् ओडामल तंकुम कुतिरै एतु?
(बिना अपने स्थान से हिले चाहे जितने लोगों को ले उड़ने वाला घोड़ा =गुब्बारा।)

11. काशि इलिरंतु कलकत्ता वरै असैयमल पोवातु एतु?
(काशी से कलकत्ते तक बिना हिले जाने वाली चीज क्या है? उत्तर : ग्रैंड ट्रंक रोड।)

12. कइ इंरडैयौम अडवैक्कुम
    कंतल एल्लम कुट्टि वैक्कुम ।
    (हाथों को कंपाती है, पर टुकड़ों को जोड़ती है=सिलाई की सुई ।)
13. नाडक्क मुडियातु अनल
    नाकरमल इरक्कतु, अतु एन्न ?
    (वह चल नहीं सकती, पर गतिहीन नहीं है। क्या है वह ? उत्तर : घड़ी ।)
14. पर्तल परक्कुम, चिरितल चिरिक्कुम ;
    कुतिनल चिल्लकुम, अतु एन्न ?
    (उसको देखो, वह देखेगा ;
    आप हंसो, तो वह भी हंसेगा ;
    (उसको मारो, टूट जायगा। क्या है वह ? उत्तर : दर्पण ।)

बच्चों की बुझौवलें

1. दो बोरे धान से कितने चावल मिलते हैं ?—एक बोरा ।
   बीस पसेरी धान से कितने चावल मिलते हैं ?—दस पसेरी ।
   पांच सौ दाने धान से कितने चावल मिलते हैं ?—ढाई सौ दाने ।
   अंतिम उत्तर गलत है। सही उत्तर है : पांच सौ दाने; क्योंकि धान के हर दाने में एक-एक चावल होता है ।
2. कड़ी धूप में एक कमीज सूखने में दो मिनट लगते हैं। मैंने तीन कमीजें सुखायीं। सूखने में कितना समय लगेगा ?
   सही उत्तर : दो मिनट (छह मिनट नहीं) ।
3. कन्याकुमारी जिले के बच्चों में प्रचलित बुझौवल :
   कक्षा नायक : कोंपरै, कोंपरै ? (सींग वाले जानवर कौन-कौन से हैं ?)
   बच्चे : कोंपरै, कोंपरै ।
   कक्षा नायक : गाय सींग वाला पशु है ।
   बच्चे : गाय सींग वाला पशु है ।
   कक्षा नायक : बैल सींग वाला पशु है ।
   बच्चे : बैल सींग वाला पशु है ।

कक्षा नायक : बकरा सींग वाला पशु है।

बच्चे : बकरा सींग वाला पशु है।

कक्षा नायक : हाथी सींग वाला पशु है।

कुछ बच्चे इस विधान को भी दोहरा देते हैं। मगर हाथी के क्योंकि सींग नहीं होते, कक्षा नायक के इस गलत विधान को बिना सोचे-समझे दोहरा देने वाले बच्चे स्पर्धा में से अलग हो जाते हैं। इसके बाद फिर से सींग वाले कई पशुओं के नाम लेने के बाद कक्षा नायक बीच में कह उठता है—

'घोड़ा सींग वाला पशु है।'

इस विधान को दोहराने वाले बच्चे भी अलग हो जाते हैं। इसी प्रकार स्पर्धा चलती रहती है और बच्चे अलग होते जाते हैं। अंत में बचने वाले बालक को विजेता घोषित किया जाता है। बच्चों के साधारण बोध और व्यवहार ज्ञान की परीक्षा करने के लिए इसी प्रकार की स्पर्धाएं पक्षियों और अन्य प्राणियों को लेकर भी होती हैं।

कहावतें

1. लोककलाओं संबंधी

(क) अडत-तेरियात तेवाडियल तेरुक्कोनल एनरलम्।
(नाच न जानें आंगन टेढ़ा।)

(ख) ओरु नाल कूतुक्कु मीसइयैच चिरैक्कालम्?
(नाटक में सिर्फ एक बार स्त्री भूमिका करने के लिए क्या मूछें मुंडवा लेना उचित है?)

(ग) कझैक कुतु अडिनालम्, कसुक्कु कीले तन वारवेंडुम।
(रोप-ट्रिक जैसा जादू का खेल भले ही आसमान पर चढ़कर होता हो, पर पैसे बटोरने के लिए जादूगर को धरती पर आना पड़ता है।)

2. ओषधि संबंधी

(क) मरूंतुम वीरंदुम मून नाल।
(लगातार दावतें उड़ाने के लिए और दवाई खाने के लिए तीन दिन काफी होते हैं।)

(ख) सुक्कुक्कु मेले मरूंतुम इल्लै ;
सुब्रह्मण्यरुक्कु मेले दैवमम् इल्लै ।
(सोंठ से बढ़कर दवा नहीं, सुब्रह्मण्यम् से बढ़कर देवता नहीं ।)

3. दानव-असुर संबंधी :

मरुंदवन कन्नुक्कु इरुंदतेल्लम पेइ ।
(भयभीत आदमी को हर जगह दानव दिखाई देते हैं ।)

4. वर्षा संबंधी :

(क) मलैच चेव्वनम् मझैइक्कु अरिकुरी,
कालैच चेव्वनम् कझुतै पुरलम् ।
(शाम का इंद्रधनुष वर्षा की सूचना देता है, भोर का इंद्रधनुष सूखे की ।)

(ख) कार्तिगै पीरै कांड कराल कैमुडी कोंडु कारै एरु ।
(कार्तिगै के वर्षा मास में चंद्र स्पष्ट दिखाई दे, तो खेतों का सारा आयोजन निष्फल सिद्ध होगा ।)

5. विविध :

(क) मयिरुल्ल चीमट्टि अल्लियुम मुदियालम,
अवुतुम् विडालम् ।
(लंबे बालों वाली स्त्री जूड़ा किसी भी ढंग से बांध सकती है । भावार्थ—संपन्न लोगों को कोई भी कार्य करने के कई पर्याय उपलब्ध रहते हैं ।)

(ख) चीलै इल्लै एन्नु चिन्नतल वीतुक्कुम पोनाम,
अवल इचंपयैक कट्टि कोंडु एतिरे वंतालम्
(दरिद्र स्त्री बहन के घर कपड़े मांगने गयी, तो बहन को चिथड़े पहने देखा । भावार्थ—अंधा अंधे को राह नहीं दिखा सकता ।)

(ग) कप्पल कविलंडलुम कन्नतिले कैवैक्कूते ।
(अपना जहाज डूब जाने जैसी विकट आपत्ति का सामना भी सीना तान कर मुसकराते हुए करना चाहिए । भावार्थ—हमेशा प्रसन्नचित्त और सुख-दुख में स्थितप्रज्ञ रहना चाहिए ।)

(घ) पोंड्डु अयिरम्, पुलि अयिरम् ।

(छलनी में हजार छेद होते हैं, तो इमली के वृक्ष पर हजारों इमलियां एक साथ लटकती हैं। भावार्थ—हानि के बहाने बहुत हैं, तो लाभ के मार्ग भी हजार हैं।)

(ङ) वल्लमैक्कुम वेल्लट्टुक्कुम जनमप्पगै ।

(खेती और बकरों का जन्मजात बैर होता है।)

लोकनाट्य से उद्धृत अंश :

नवविवाहित दंपती के बीच बिदाई का संवाद

प्रसंग इस प्रकार है—पति बैलगाड़ी जोडकर कोइंबतोर जाने के लिए निकला है। नवविवाहिता पत्नी उसे विदा करते हुए अपनी वैयक्तिक आवश्यकता की वस्तुओं की फहरिश्त गिनाती है। पति वादा करता है कि वह सूची के अनुसार चीजें तो खरीदेगा ही, साथ ही ढेर सारे फूल और अन्य कई वस्तुएं भी लायेगा जो उसे (पत्नी को) बहुत पसंद हैं।

पति : कारि मयिलैक्कलै पोन्नु पून्कुयिले
कट्टिन्नेड्डि वंडियिले पोन्नु पून्कुयिले
पतै किड्डुकिड्डुंग पोन्नु पून्कुयिले
पोयिवरम् कोइंबतोर पोन्नु पून्कुयिले ।

पत्नी : सोकमाक पोयिवांगो पोन्नु मचने
शिवप्पु शीलै वंकिवांगो पोन्नु मचने
वझिक्कु तुनै कूटि पोंग पोन्नु मचने
मरुक्कोलुंतु वंकिवांगो पोन्नु मचने ।

पति : पट्टुप पुडवै वंकि वरेन पोन्नु पून्कुयिले
कट्टिट पाचतल नल्ल इरुक्कुम पोन्नु पून्कुयिले
रोज़प पुवम वंकि वरेन पोन्नु पून्कुयिले
रोंब उनक्कु नल्ल इरुक्कुम पोन्नु पून्कुयिले ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

अन्ना कामु : एट्टिल एज्ञुतक कवितैकल।
(तिरुनेलवेली साउथ इंडिया शैव सिद्धांत वर्क्स पब्लिशिंग सोसायटी लि., मद्रास।)

अन्ना कामु : मेन मलै मक्कल।

अय्यासामी, आर. : कुलंडै नोडोदिप पडलकल।

अरुणाचल गौंडर, के. : पलयकोट्टैप पट्टायक्करर नट्टुप पटलम् पूर्व पट्टायमम।
(एस. आर. सुब्रह्मण्य पिल्लै, तिरुनेलवेली।)

अरुणाचलम्, एम. : कट्ट्रिले मितांत कवितै।

अरुणाचलम्, एम. : कुम्मिप पट्टु।

अरुणाचलम्, एम. : पल्लुप पट्टु।

अलगप्पा, आरु : टलट्टुप पडलकल।
(पारि निलयम, मद्रास।)

इंटरनैशनल एसोसिएशन ऑफ तमिल रिसर्च, मद्रास : क्वालालंपुर तमिल परिषद का विवरण, खंड २.
(i) फोक मोटिफ इन चिलप्पदिकारम्।
लेखक : प्रोफेसर वनममलै।
(ii) ए स्टडी ऑफ हिस्टोरिकल ब्लड्स ऑफ तमिलनाडु। लेखक : प्रोफेसर वनममलै।

कलाक्षेत्र आर्ट फेस्टीवल सूवनीर्स : क्लॉसिकल एंड फोक डांसिज़ ऑफ इंडिया।
(मार्ग पब्लिकेशंस, बंबई; 1963)

गणेश, सॉ : कैयेडु।

ग्रोवर, चार्ल्स ई. : द फोक सॉन्ग्ज़ ऑफ सदर्न इंडिया।
(हिगिन बॉथंस, मद्रास; 1871)

जगन्नाथन, कि. वा. (संपादक) : मालै अरुवि : मिस्टर पर्सी मक्वीन आइ. सी. एस. द्वारा संग्रहीत लोकगीत। (सरस्वती महल, तंजावर।)

तमिलन्नल : तलट्टुप पडलकल।
(सेल्वी पतिप्पाकम्, कारैकुडि।)

तमिल ईसाई संघम् : 'तेवर पण्ण' अनुसंधाने की प्रकाशित रचनाएं।

धन्वंतरी भगवान : तिरुवै मालरंतु अरुलिय वैद्य गुरु नूल 200।
(ई. आर. एम. गुरुसामी कोनार, मदुरै, के लिए टी. कुप्पुस्वामी नायडु द्वारा संपादित।)

नरसिंहन् वी. के., वेंकटाचारी ए. जी., और चारी वी. के. एन. (संपादक मंडल) : द लंग्वेजिस आॅफ इंडिया : ए कैलिडोस्कोपिक सर्वे। (अवर इंडिया डाइरेक्टरीज़ एंड पब्लिकेशंस, प्रा. लि., मद्रास 18।)

पूर्णिमा सगोत्रैगल (संग्राहक) : तमिल नट्टु विडुकथैकल।
(राजम् पब्लिकेशंस, मद्रास 1; 1963)

बलरामैया, वी. : उन्कल वीट्टिल सिद्धार मरुंदु।

मीनाक्षी सुंदरम्, टी.पी. : तमिल एंड अदर कल्चर्स : एक्सटीरियर रिलेशंस आॅफ तमिल।
(मदुरै यूनिवर्सिटी; 1970)

राजगोपालाचारी, सी. : अव्वैयार।
(संग्राहक : ए. के. चेट्टियार, मद्रास; 1968)

राजाराम, टी. : तमिलिल अम्मानैप पडलकल।
(जयकुमारी स्टोर्स, नागरकॉइल; 1970)

रामनाथन्, एस. : ए सर्वे आॅफ ट्रेडीशंस आॅफ म्यूज़िक, डांस एंड ड्रामा इन द मद्रास स्टेट। खंड : 2।
(बुलेटिन आॅफ द इंस्टीट्यूट आॅफ ट्रेडीशनल कल्चर्स, यूनिवर्सिटी आॅफ मद्रास, मद्रास 5; 1960)

रामसुब्रह्मण्यम्, वी. : मेटेमसायकॉसिस।
(बुलेटिन आॅफ द इस्टीट्यूट आॅफ ट्रेडीशनल कल्चर्स, यूनिवर्सिटी आॅफ मद्रास।

वनममलै, एन, : कट्टूप पोम्मन कथैप पडलकल।

वनममलै, एन. : तमिलार नट्टुप पडलकल।

वनममलै, एन. : तमिलार नट्टुप पमरार पडलकल।

वनममलै, एन. : वीनातिवीनम् कथै।

वनममलै, एन. : स्टडीज़ इन तमिल फोक लिटरेचर। (पांचों न्यू सेंचरी बुक हाउस, मद्रास 2. द्वारा प्रकाशित।)

वरदराजन, एम. : द इंफ्लुएंस ऑफ फोकलोर ऑन तमिल लिटरेचर। (ॲनल्स ऑफ ओरिएंटल रिसर्च, XIII, प्रथम खंड, यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास; 1970।)

वल्लिअप्पा, ए. एल. : पामर मक्कलिन परंपरैप पडलकल। (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1970)

वीरसामी, वी. : सन इन शंखम्। (जर्नल ऑफ द डिपार्टमेंट ऑफ तमिल, प्रथम खंड, यूनिवर्सिटी ऑफ केरल, त्रिवेंद्रम, मार्च, 1970।)

श्यामला, एन. : फोक म्यूज़िक एंड डांस ऑफ तमिलनाडु। (यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास, 1960।)

श्यामला, एन. : सर्वे एंड रिसर्च ऑन फोक म्यूज़िक, डांस एंड ड्रामा ऑफ तमिलनाडु। (मद्रास राज्य संगीत नाटक संघम् के संघटित रिपोर्ट, जनवरी, 1962।)

संतानम्, के. (संपादक) : एन एंथॉलॉजी ऑफ इंडियन लिटरेचर। (गांधी पीस फाउंडेशन, नयी दिल्ली। प्रकाशक : भारतीय विद्या भवन, बंबई; 1969)

सुब्रह्मण्य पिल्लै, जी. : ट्री वरशिप एंड ऑफियोलेटरी। (अन्नामलै यूनिवर्सिटी; 1948)

सुब्रह्मण्यम्, डॉ. वी. आई. और अन्य : फोर पेपर्स ऑन लिटरेचर एंड लिंग्विस्टिक्स। (मीनाक्षी पुतक निलैयम, मदुरै; 1968)

सेतु पिल्लै, आर. पी. और अन्य (संग्राहक) : तेन मोझिकलिल पझमोझिकल। (चामराज पिराकुरम्, मद्रास 3 द्वारा सदर्न लंग्वेजिज़ बुक ट्रस्ट के लिए प्रकाशित)

सोमसुंदरम्, मी. पा. : फोक सांग्ज़ इन तमिल (रेडियो वार्ता)।

सोनालय : चेट्टिनाडम् तमिलम्। (पारि निलयम, मद्रास।)

हमीद, के. पी. एस. : बो सांग : ए फोक आर्ट ऑफ साउथ त्रावनकोर। ('तमिल कल्चर', मद्रास, खंड 5 संख्या 3 में लेख; जुलाई, 1956)

शब्द सूची

अग्नि नक्षत्र : गरमियों में आने वाला एक पखवाड़े का कालखंड। पंचागों में इसका उल्लेख वर्ष के ऊष्णतम समय के रूप में किया जाता है। इन दिनों में गरमी की प्रखरता को कम करने के लिए भगवान की प्रार्थना की जाती है।

अग्रहारम् : मंदिरों के सबसे भीतरी प्रांगणों में ब्राह्मणों के निवास के लिए निश्चित बस्तियां।

अरसनि : विवाह-मंडप के गिर्द रखे जाने वाले सजे हुए मंगल-सूचक कलश।

अरिसि पोरी : छौंके हुए चावल।

अरुद्र : चंद्र का छटा नक्षत्र-समूह (तिरुवधिरै मुहूर्त)।

अरुंधति : सप्तर्षि मंडल के पास का एक छोटा तारा। वसिष्ठ की पत्नी जो अपने पातिव्रत्य और एकनिष्ठा को लेकर पौराणिक साहित्य में प्रसिद्ध रहीं।

अरैमुडि : अंजीर के पत्ते की आकृति की चांदी की पत्ती जो लड़कियों के गुप्तांग को ढकने के लिए उनकी कमर से बंधे डोरे की सहायता से लटकायी जाती है।

अर्चना : किसी उपासक के नाम से की जाने वाली देवता की विशिष्ट पूजा। इसमें भक्त के जन्मनक्षत्र का उल्लेख किया जाता है और संस्कृत या तमिल में मंत्रोच्चारण होता है।

अलरी : लाल कनेर।

आलवार : महान संतों और जननायकों के रूप में प्रसिद्ध वैष्णवों के सुप्रसिद्ध बारह भक्त।

ईरझी मुंडु : हाथ करघे का बुना गमछा जिसके ताने और बाने में दो-दो सूत होते हैं।

उंडियाल : मंदिरों में रखा जाने वाला दानपात्र (हुंडी पात्र)।

ऊर कट्टु : सामाजिक अपराध करने वालों का समाज के पंचों द्वारा किया जाने वाला सामाजिक बहिष्कार और उन पर लगाया जाने वाला दंड विधान।

कमंडलम् : संन्यासियों का जलपात्र। पौराणिक साहित्य में महर्षि अगस्त्य का कमंडलु जिसमें से कावेरी आदि कई नदियों का उद्गम माना जाता है।

करुमति : मुर्दे के अग्निदाह या दफ़नविधि के बाद का क्रियाकर्म।

करुमनि (करुगुमनि) : काले मनकों का मंगलसूत्र।

कल्लिकुडम् उडैतल : अंत्येष्टि क्रिया की एक विधि जिसमें पानी से भरा हुआ कोरा घड़ा मृतक के सामने फोड़ा जाता है।

कुत्तु विलक्कु : सजावट का पीतल का बना दीपक जिसे उत्सवादि मंगल प्रसंगों पर जलाया जाता है।

कुरवै : समारोहों के दरमियान कुछ विशिष्ट जाति की स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला आगंतुकों का हर्षपूर्ण स्वागत।

कुलदेव्यम् : कुल देवता।

कैप्पिडितल : विवाह मंडप में वर द्वारा वधू का विधिवत् पाणिग्रहण।

चतुर्वेदी मंगलम् : चोल राजाओं द्वारा चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों को जागीर के रूप में दिये हुए गांव।

चैत्र पूर्णिमा : तमिल वर्ष के प्रथम मास चैत्र (अप्रैल-मई) की पूर्णिमा।

ज्योतिर्लिंग : भगवान शिव का ज्योति के रूप में प्रकटीकरण। भारत में रामेश्वर, सोमेश्वर आदि बारह ज्योतिर्लिंग हैं।

तीर्थम्	: तीर्थों का पवित्र जल; पवित्र जलाशय; देवता का चरणामृत।
तेर	: देवता की सवारी के या अन्य धार्मिक कार्यों में प्रयुक्त रथ।
तेवरम्	: शैवों के भक्ति रसात्मक स्तोत्र। सुप्रसिद्ध भक्तत्रयी अप्पार सुंदरार और संबंदारतेवरम् के प्रधान गायक थे।
त्तायतु	: धातु का बना हुआ पोला तावीज जिसमें कोई तांत्रिक रक्षा कवच रखा होता है।
देवदासी	: मंदिरों में देवता की सेवा में अर्पित नर्तकी।
नट्टुवनार	: नृत्य शिक्षक।
नयनमार	: शैवों के पूज्य त्रेसठ संत।
नलुग्गु	: नवविवाहित जोड़ों की बुरी नजर से बचाने के टोने।
नवग्रहांगल	: हिंदू ज्योतिषशास्त्र के नौ ग्रह
पंचलोहम्	: पंचधातु; सोना, चांदी, तांबा, लोहा और सीसा।
पण्ण	: संगीत की स्वरलिपियां।
परिसम	: कन्याविक्रय की प्रथा रूढ़ होनेवाले समाजों में वर पक्ष द्वारा चुकायी जानेवाली कन्या की कीमत।
पिडरी	: विकराल देवी
पूक्कट्टुतल	: प्रस्तावित विवाह या अन्य किसी महत्वपूर्ण कार्यव्यापार को दैवी अनुमोदन प्राप्त है या नहीं यह जानने के लिये किया जानेवाला एक अंधविश्वास पर आधारित अनुष्ठान।
पूर्णकुंभम्	: पानी भरे चांदी के कलशों से धर्मगुरुओं का औपचारिक सम्मान करने का आयोजन।
पोट्टु	: देव दासियों द्वारा पहना जाने वाला मंगलसूत्र।
पोरुत्तम परत्तल	: विवाह से पहले वर और कन्या की जन्मपत्रियों का मिलान करके यह निश्चय करना कि प्रस्तावित विवाह दोनों के लिये अनुकूल रहेगा या नहीं।
प्रबंधम्	: आलवारों के भक्ति गीतों का संग्रह।

प्रसादम्	: देवताओं को लगाया जानेवाला पके हुए चावल आदि का भोग जिसे बाद में भक्तों को बांट दिया जाता है।
प्रहारम्	: मंदिर का प्रांगण या चहारदीवारी से घिरा अहाता
बलि पीठम्	: धार्मिक बलि आदि चढ़ाने की वेदी।
ब्रह्मोत्सव	: मंदिर का वार्षिक महोत्सव।
मारु वीडु पुगुतल	: गृहप्रवेश। अकसर इन शब्दों का प्रयोग विवाह के तीसरे या सातवें रोज नैहर लौट आने वाली नवविवाहिता लड़कियों के संदर्भ में होता है।
मुझुक्कु वीडु	: पुराण मतवादी परिवारों में रजोधर्म के दौरान में लड़कियों के रहने का शयनकक्ष।
मूल विग्रहम्	: मंदिरों की स्थावर देव प्रतिमा। रथयात्रा के समय इसका जुलूस नहीं निकाला जाता।
मूलैप्परि	: मिट्टी के सकोरों में बीज बोकर उगाये जानेवाले नाजुक अंकुर जिन्हें विवाह मंडप के गिर्द सजाया जाता है।
यंत्र	: ताम्रपट्टों पर अंकित तांत्रिक अभिचार के रहस्यमय तावीज।
येवल	: किसी पर जारण-मारण का प्रयोग करने के लिये मैली विद्या द्वारा दुष्ट तत्त्वों का आह्वन।
राहुकालम्	: प्रतिदिन आठवें ग्रह राहु के प्रभाव काल में पड़ने वाला अर्ध यम (डेढ़ घंटे) का समय
ववलंपुरी शंख	: दक्षिण मुखी शंख। यह शंख दुष्प्राप्य होता है और बहुत पवित्र माना जाता है।
वलै कप्पु	: गर्भवती (सीमंतिनी) युवती को सोने-चांदी और कांच की चूड़ियां पहनाने का समारोह।
वल्ली	: एक प्रकार का कंद।
विग्रहम्	: मंदिरों के उत्सवों के दरमियान जुलूस में निकाली जानेवाली देव प्रतिमाएं। ये पत्थर के सिवा अन्य किसी वस्तु (धातु या लकड़ी) की बनी होती हैं।
विमानम्	: देवताओं के स्वयंचालित रथ या वायुयान।

वैक्कु अरसि पोड्डुतल : मृत देह को जलाने या दफनाने से पहले उपस्थितों द्वारा उसके मुंह में एक-एक कौर चावल रखने की प्रथा।

शताभिषेकम् : जन्म के बाद 1008वीं बार पूर्णिमा का चंद्र देखने पर मनाया जाने वाला संस्कार। हिसाब से यह 83-84 वें वर्ष में पड़ता है। पर आजकल यह उत्सव उम्र के 80 वर्ष पूर्ण होते ही मना लिया जाता है।

शनि : सातवां ग्रह शनि। इसका प्रभाव प्रायः घातक माना जाता है।

शंडी : पैंठ। निश्चत अवधि के बाद (प्रायः प्रति सप्ताह) भरा जाने वाला ग्रामीण बाजार।

सदा : प्राचीन युग की सांस्कृतिक परिषदें जिनमें विद्वानों, कलाकारों, कवियों आदि को सम्मानित किया जाता था।

संतान कुंडम् : घिसे हुए चंदन से भरा पात्र जिसे नागोर के उत्सव में मुस्लिम भक्त गण जुलूस के रूप में संत हमीद कादिर वली के मजार पर ले जाते हैं।

सप्त स्थानोत्सव : तिरुवैयरु के पास मनाया जाने वाला दक्षिण गंगा कावेरी का महोत्सव जिसमें भारत की सातों पवित्र नदियां उस स्थान पर एकत्रित हुई मानी जाती हैं।

सिद्धार : प्राचीन युग के सिद्ध योगी जो ओषधि विज्ञान और रसायनशास्त्र के महान ज्ञाता और भविष्यद्रष्टा माने जाते थे।

सिमंतम् : गर्भधारण के सातवें या आठवें मास में मनाया जाने वाला उत्सव। ऐसा माना जाता है कि इससे गर्भवती को आत्मविश्वास प्राप्त होकर प्रसूति सुलभ और सुरक्षित होती है।

सुंदल : उबाले हुए मसालेदार चने या मटर।

स्थलपुरारणम् : किसी पवित्र स्थान, स्मारक या देवालय का महात्म्य स्थापित करने वाला पौराणिक आख्यान या वास्तविक इतिहास।

स्थलवृक्षम् : किसी मंदिर-विशेष के साथ अविच्छेद्य रूप से जुड़ा हुआ वृक्ष जिसकी महिमा लोकगीतों और लोककथाओं में गायी गयी हो।

होमम् : पवित्र अग्नि में जौ, तिल, घी आदि के मिश्रण की आहुतियां दे कर किया जाने वाला यज्ञ।

जुपिटर आफसेट प्रैस, 10/3 बी, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित।